विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका
UGC Approved Journal - UGC Care Review
ISSN NUMBER : 2455-9717
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
वर्ष : 8, अंक : 29
अप्रैल-जून 2023
मूल्य 50 रुपये

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका

पार

नरेश सक्सेना

पुल पार करने से
पुल पार होता है
नदी पार नहीं होती

नदी पार नहीं होती नदी में धँसे बिना

नदी में धँसे बिना
पुल का अर्थ भी समझ में नहीं आता
नदी में धँसे बिना
पुल पार करने से
पुल पार नहीं होता
सिर्फ़ लोहा-लंगड़ पार होता है

कुछ भी नहीं होता पार
नदी में धँसे बिना
न पुल पार होता है
न नदी पार होती है।

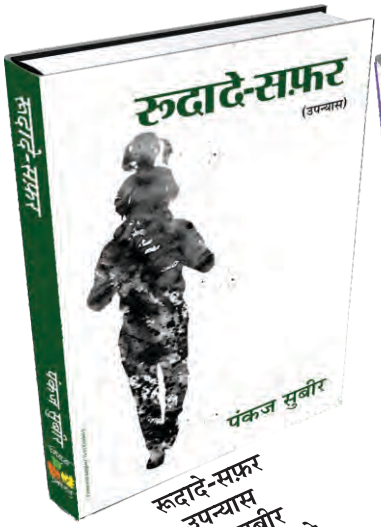

रुदादे-सफ़र
उपन्यास
पंकज सुबीर
मूल्य : 300 रुपये

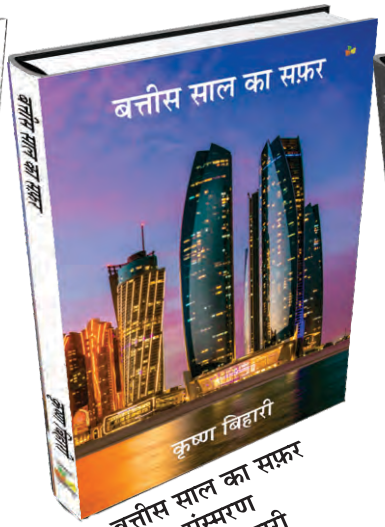

बत्तीस साल का सफ़र
संस्मरण
कृष्ण बिहारी
मूल्य : 350 रुपये

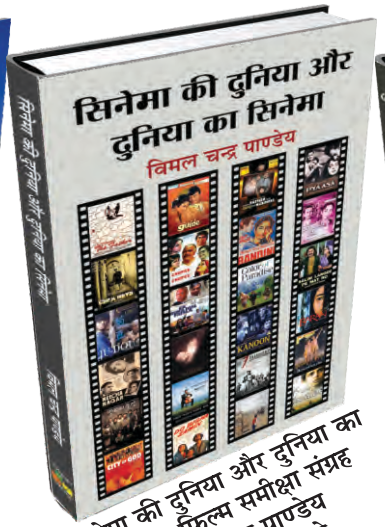

सिनेमा की दुनिया और दुनिया का सिनेमा
सिनेमा- फ़िल्म समीक्षा संग्रह
विमल चन्द्र पाण्डेय
मूल्य : 200 रुपये

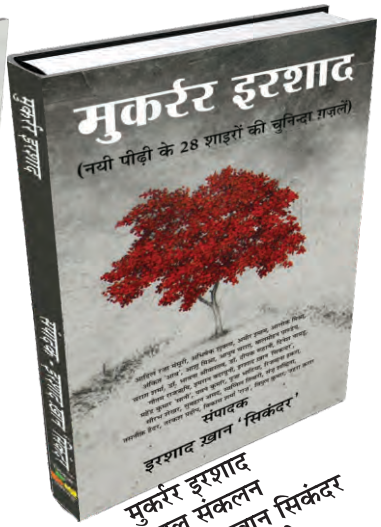

मुकर्रर इरशाद
ग़ज़ल संकलन
संपादन- इरशाद ख़ान सिकंदर
मूल्य : 250 रुपये

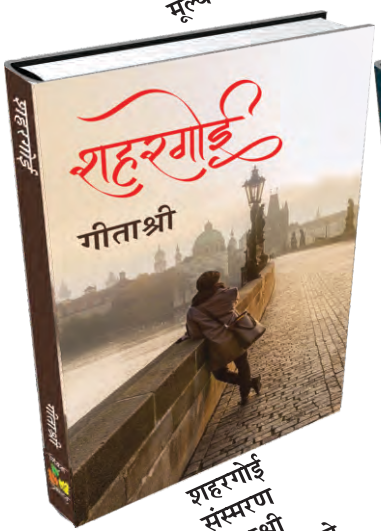

शहरगोई
संस्मरण
गीताश्री
मूल्य : 300 रुपये

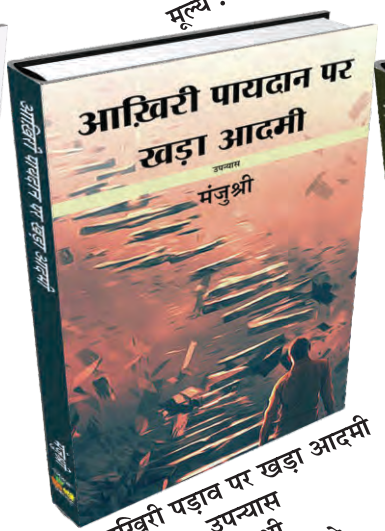

आख़िरी पड़ाव पर खड़ा आदमी
उपन्यास
मंजुश्री
मूल्य : 250 रुपये

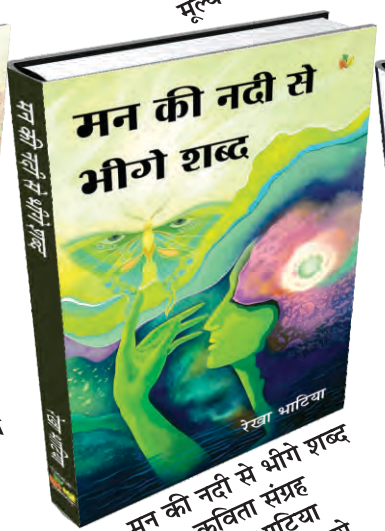

मन की नदी से भीगे शब्द
कविता संग्रह
रेखा भाटिया
मूल्य : 300 रुपये

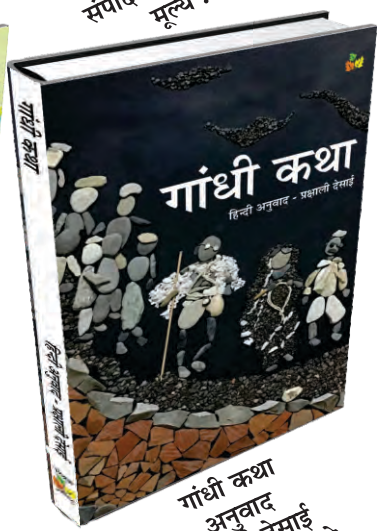

गांधी कथा
अनुवाद
प्रक्षाली देसाई
मूल्य : 200 रुपये

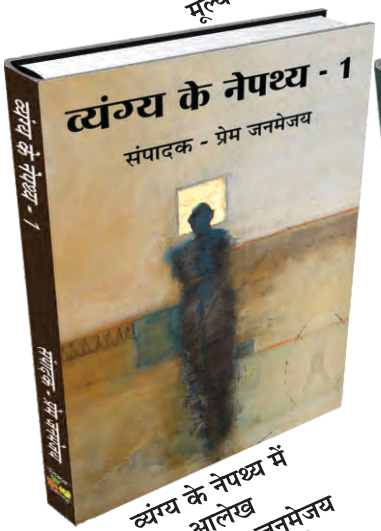

व्यंग्य के नेपथ्य में
आलेख
संपादन - प्रेम जनमेजय
मूल्य : 250 रुपये

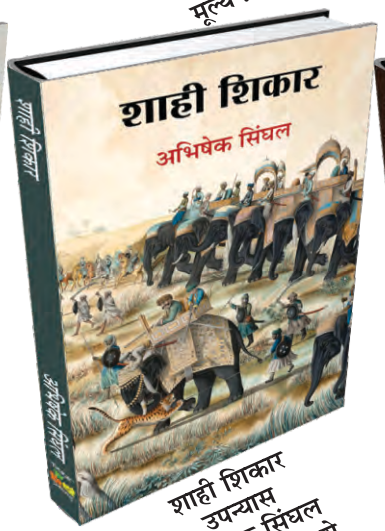

शाही शिकार
उपन्यास
अभिषेक सिंघल
मूल्य : 140 रुपये

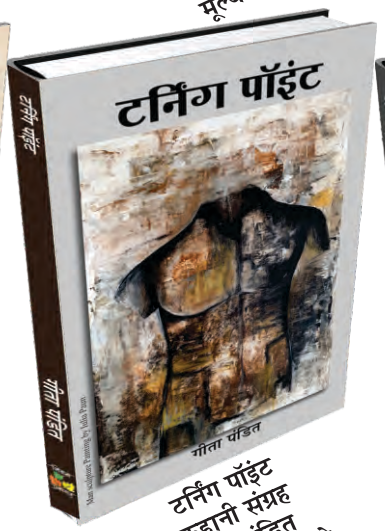

टर्निंग पॉइंट
कहानी संग्रह
गीता पंडित
मूल्य : 175 रुपये

फ्रेम दर फ्रेम ज़िंदगी
कहानी संग्रह
शिल्पा शर्मा
मूल्य : 200 रुपये

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
+91-8819806162
https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

संरक्षक एवं सलाहकार संपादक
सुधा ओम ढींगरा

संपादक
पंकज सुबीर

कार्यकारी संपादक एवं क़ानूनी सलाहकार
शहरयार (एडवोकेट)

सह संपादक
शैलेन्द्र शरण, आकाश माथुर

डिज़ायनिंग
सनी गोस्वामी, सुनील पेरवाल, शिवम गोस्वामी

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय
पी. सी. लैब, शॉप नं. 2-7
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001
दूरभाष : +91-7562405545
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल- shivnasahityiki@gmail.com

ऑनलाइन 'शिवना साहित्यिकी'
http://www.vibhom.com/shivnasahityiki.html
फेसबुक पर 'शिवना साहित्यिकी'
https://www.facebook.com/shivnasahityiki

एक प्रति : 50 रुपये, (विदेशों हेतु 5 डॉलर $5)
सदस्यता शुल्क
3000 रुपये (पाँच वर्ष), 6000 रुपये (दस वर्ष)
11000 रुपये (आजीवन सदस्यता)
बैंक खाते का विवरण-
Name: Shivna Sahityiki
Bank Name: Bank Of Baroda,
Branch: Sehore (M.P.)
Account Number: 30010200000313
IFSC Code: BARB0SEHORE

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

शिवना प्रकाशन

शिवना साहित्यिकी

शोध, समीक्षा तथा आलोचना की अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका
वर्ष : 8, अंक : 29, त्रैमासिक : अप्रैल-जून 2023
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा अनुमोदित पत्रिका
(UGC Approved Journal - UGC Care Review)
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929
ISSN : 2455-9717

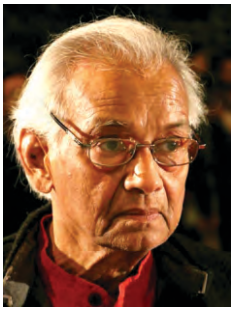

आवरण कविता
नरेश सक्सेना

आवरण चित्र
पंकज सुबीर

इस अंक में

आवरण कविता / नरेश सक्सेना
संपादकीय / शहरयार / 3
व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 4
शोध आलोचना
कौन देस को वासी वेणु की डायरी
भावना गौड़ 'समीक्षा' / सूर्यबाला / 5
राजनटनी
डॉ. शुभा श्रीवास्तव / गीताश्री / 8
इन दिनों जो मैंने पढ़ा
मत्स्यगंधा
सुधा ओम ढींगरा / गीताश्री / 11
केंद्र में पुस्तक
रूदादे-सफ़र
डॉ. रमाकांत शर्मा, अनीता सक्सेना, दीपक गिरकर
पंकज सुबीर / 12
पुस्तक समीक्षा
आधी सदी का सफ़रनामा
डॉ. मलय पानेरी / कमर मेवाड़ी / 16
इक्कीसवीं शती का हिन्दी उपन्यास
और प्रवासी महिला उपन्यासकार
विजय कुमार तिवारी / संपादक : डॉ. मधु संधु / 19
सृजन का अंतर्पाठ
डॉ. शोभा जैन / बी. एल. आच्छा / 22
जितनी हँसी तुम्हारे होठों पर
देवेश पथ सारिया / जितेंद्र श्रीवास्तव / 25
दो ग़ज ज़मीन
अंबरीश त्रिपाठी / हरि भटनागर / 26
बूढ़ा पीपल
डॉ. नीलोत्पल रमेश / राजेश दुबे / 28
पत्थलगड़ी और अन्य कहानियाँ
नीरज नीर / कमलेश / 30
बुद्धिजीवी सम्मेलन
दीपक गिरकर / पंकज सुबीर / 32
मैंने तुम्हें माफ किया
शिवांगी / डॉ. रमाकांत शर्मा / 34
अधूरा घर
डॉ. हंसा दीप / गोविंद सेन / 36
हरे कक्ष में दिन भर
रमेश खत्री / प्रबोध कुमार गोविल / 38
पारिजात
प्रियंवदा पाण्डेय / पंकज त्रिवेदी / 40
भीड़ और भेड़िये
दीपक गिरकर / धर्मपाल जैन / 42
गांधी की लाठी में कोंपलें
शैलेन्द्र शरण / जवाहर चौधरी / 44
चिनगारी की विरासत
अरुण सातले / नर्मदा प्रसाद उपाध्याय / 46
21 श्रेष्ठ नारी मन की कहानियाँ
डॉ. कुमारी उर्वशी / डॉ. अनिता रश्मि / 48
बंद कोठरी का दरवाज़ा
रमेश शर्मा / रश्मि शर्मा / 50
कहाँ है मेरा आकाश?
प्रो. नव संगीत सिंह /नीलम पारीक / 52
70 + की महिलाएँ
डॉ. अनूप सिंह / सुधा गोयल / 53
अभी बहुत कुछ बचा है
ब्रजेश कानूनगो / दुर्गाप्रसाद झाला / 54
ऑफ़ द कैमरा
राजेश बादल / ब्रजेश राजपूत / 83
कर्बला दर कर्बला
ब्रजेश राजपूत / गौरीनाथ / 85
शोध आलेख
समकालीन उपन्यासों में चित्रित ग्रामीण समाज
डॉ. सुप्रिया सिंह / 55
आदिवासी हिन्दी उपन्यासों में सांस्कृतिक जीवन
अखिलेश कुमार यादव / 58
प्रतिरोध की संस्कृति और सांस्कृतिक मूल्य
'महाभियोग' उपन्यास के संदर्भ में
डॉ. आशीष / 61
राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के माध्यम से
भारतीय भाषा, कला एवं संस्कृति संवर्धन
डॉ. बिंदुबहन अनंतराय मेहता / 64
आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की साहित्य साधना
डॉ. सुनीता कुमारी / 67
आदिवासी विस्थापन: कारण और समाधान
सबिता पॉल / 70
बाल साहित्य के सरोकार
मेहनाज़ बेगम / 73
प्रवासी हिंदी कथा साहित्य में युग यथार्थ
और पारिवारिक जीवन के बदलते स्वरूप
मंजू देवी / 76
रीतिकालीन कविता में भक्तिकालीन अंकुर
सोनम कुमारी / 80
जाम्भोजी की सबदवाणी में आदर्श जीवन -विधि
प्रवीण कुमार रामावत / 82
स्त्री विमर्श : एक आधुनिक परिदृश्य
वैष्णव विनिताकुमारी वी. / 84
वैश्वीकरण के संदर्भ में स्त्री जीवन की दास्तान-
'अन्या से अनन्या'
सेलीष्या जोसफ / 86
राकेश वत्स की कहानियों का अनुशीलन
मोनी / 89
21वीं सदी के कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध का यौनिक संदर्भ
प्रियंका श्रीवास्तव / 91
पद्मा शर्मा की कहानियों में सामाजिक सरोकार
कृष्ण कुमार थापक / 94

संपादकीय

जंगल में मोर नाचा किसने देखा

शहरयार
शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब,
सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट
बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र.
466001,
मोबाइल- 9806162184
ईमेल- shaharyarcj@gmail.com

कला की लगभग सारी विधाओं में कलाकार के स्वयं अपनी कला या कलाकृति के प्रचार-प्रसार को ग़लत नहीं माना जाता है। क्योंकि उस कलाकार ने सृजन किया होता है, इसलिए वह चाहता है कि उसकी कलाकृति या कला हर गुण-ग्राहक तक पहुँचे। लोग जानें कि उसने यह नया सृजन किया है। एक कहावत है 'जंगल में मोर नाचा किसने देखा', इस कहावत से ही प्रेरणा लेकर यह प्रचार प्रारंभ हुआ होगा। कहावत के मर्म को अगर जानें तो एकदम सही बात कही गई है, कि जब तक गुण-ग्राहक ही नहीं होगा, या उस तक आपकी कला की सूचना ही नहीं पहुँचेगी, तब तक बात वही होगी कि जंगल में किसी मोर ने बहुत सुंदर नृत्य तो किया, किंतु उसे देखने वाला कोई नहीं था। लेकिन जब बात हिन्दी लेखकों की आती है, उनकी प्रकाशित किताबों की आती है, तो कुछ लोग नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं, जब लेखक अपनी किताब का प्रचार करता हुआ दिखाई देता है। दुनिया के दूसरे देशों में ऐसा नहीं है, वहाँ तो बाक़ायदा लेखक अपनी नई किताब का प्रचार-प्रसार करते हैं और इसके लिए यात्राएँ भी करते हैं। वहाँ इस बात को बुरा नहीं माना जाता है। हिन्दी साहित्य में मगर इस प्रकार के प्रचार को कुछ लोग ग़लत मानते हैं। उनका ऐसा मानना है कि लेखक स्वयं क्यों अपनी किताब के प्रचार में लगा है, यह काम प्रकाशक को करना चाहिए, पाठक को करना चाहिए। मगर इस प्रकार का विचार रखने वाले यह नहीं सोचते कि जब भी कोई चीज़ नई आती है, तब उसके बारे में उन लोगों को सूचना तो मिलनी ही चाहिए, जो उसमें दिलचस्पी रखते हैं। हर कलाकार का अपना एक प्रशंसक वर्ग होता है, जो उसके सृजन को पसंद करता है। यह वर्ग उस कलाकार की नई कृति के बारे में जानना चाहता है, उसे ख़रीदना चाहता है और उससे होकर गुज़रना चाहता है। इसलिए जब लेखक अपनी तरफ़ से अपनी नई कृति के बारे में चर्चा करता है, उसका प्रचार करता है, तो यह बात उस प्रशंसक वर्ग तक पहुँच जाती है। कृति आने के पाँच-छह माह बाद यह सूचना अच्छी तरह से हर तरफ़ पहुँच चुकी होती है। इसके बाद यदि उस कृति में आगे दौड़ने की संभावना होती है, गुण होते हैं, तो वह उसके बाद अपने-आप दौड़ने लगती है। यदि गुण नहीं होते हैं, तो उसके बाद कृति अपने आप बैठ जाती है। इसे हम इस प्रकार से भी समझ सकते हैं कि जब बच्चा जन्म लेता है तो माता-पिता उसे चलने में मदद करते हैं, फिर उसके बाद वह ख़ुद ही चलने लगता है। हिन्दी में तो इसके बाद बहुत सी प्रक्रियाएँ होती हैं, जैसे समीक्षा, आलोचना, शोध, जिनसे बाद की प्रक्रिया में कृति को गुज़रना होता है। मतलब यह कि सबसे पहले पाठक से रू-ब-रू होती है कोई भी कृति। यह पाठक दो प्रकार का होता है, पहला तो हिन्दी साहित्य का पाठक और दूसरा उस लेखक विशेष का पाठक। कृति आने के बाद प्रारंभ के कुछ दिनों तक इन्हीं पाठकों की अदालत में रहती है। उसके बाद फिर समीक्षक, आलोचक और शोधार्थियों का नंबर आता है। ऐसे में किसी भी लेखक के लिए स्वयं अपनी कृति का प्रचार करना, अपने पाठकों तक अपनी नई कृति की सूचना पहुँचाने के लिए आवश्यक होता है। सोशल मीडिया के प्रचार माध्यमों पर लेखक के साथ उसका पाठक वर्ग जुड़ा रहता है, जिन तक आसानी से यह सूचना पहुँच जाती है। समीक्षा, आलोचना और शोध की हिन्दी साहित्य में क्या स्थिति है, यह बात किसी से छुपी हुई नहीं है। वहाँ रचना की समीक्षा, आलोचना या शोध नहीं होता, वहाँ लेखक के नाम के हिसाब से यह सब होता है। शोध की दुनिया तो सबसे निराली है, जो अभी भी भक्तिकाल, रीतिकाल से आगे नहीं बढ़ पा रही है। ऐसे में लेखक यदि इन प्रक्रियाओं के अनुसार अपनी कृति को गुज़ारेगा तो अंत में निराशा के अलावा कुछ उसके हाथ नहीं आएगा। तो बेहतर यही है कि लेखक अपनी नई रचना को प्रचार-प्रसार स्वयं करे। अपने दिमाग़ में कहावत को अच्छे से बिठा ले कि 'जंगल में मोर नाचा किसने देखा..।' **आपका ही**

शहरयार

व्यंग्य चित्र-

काजल कुमार
kajalkumar@comic.com

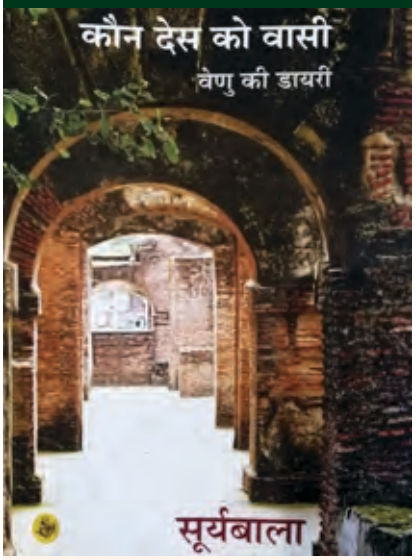

(उपन्यास)

कौन देस को वासी वेणु की डायरी

समीक्षक : भावना गौड़ 'समीक्षा'

लेखक : सूर्यबाला

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

भावना गौड़ "समीक्षा"
G/193, डीएलएफ,न्यू टाउन हाइट्स,
सेक्टर 91, गुड़गाँव,
हरियाणा 122505
मोबाइल- 83689 23909
ईमेल- bhavana.gaur.888@gmail. com

कुछ दशकों पहले तक विदेशों में रहना सिर्फ अमीरों का शौक समझा जाता था, मध्यमवर्गीय भारतीय अपनी ही दुनिया में मस्त रहते थे, लेकिन संचार क्रांति ने आम युवाओं को भी दुनिया मुठ्ठी में कर लेने का सपना दिखाया है। अब वे न सिर्फ विदेशों में रहने का सपना सँजोते हैं, बल्कि उन सपनों को पूरा करने में जी-जान भी लगा देते हैं। हर वर्ष हमारे देश से लाखों युवा बेहतर जीवनस्तर की तलाश में विदेशों में रहने जाते हैं। इसका एक बड़ा कारण डॉलरों की मोटी कमाई और उनसे पूरे होने वाले समूचे परिवार के अवचेतन में पलते अनगिनत सपने भी होते हैं, लेकिन कहते हैं ना कि दूर के ढोल सुहावने होते हैं, जब एक मध्यम परिवार का युवक वहाँ रहने जाता है तो वहाँ के सर्वथा भिन्न वातावरण में खुद को ढालने के लिए उसे किस जद्दोजहद से गुजरना पड़ता है, कैसी-कैसी परिस्थितियों और विवशताओं से गुजरते हुए वह धीरे-धीरे वहाँ पर सामंजस्य बिठा पाता है और कैसे वहाँ की आबोहवा में रहते हुए वहीं का होकर रह जाना चाहता है, वहाँ कई बरस गुजारने के बाद अपनी संस्कृति और वहाँ की संस्कृति में उसे क्या बेहतर नज़र आता है, इन सभी स्थितियों का पूर्णत: निष्पक्ष विश्लेषण 2019 में उत्तर प्रदेश, हिंदी संस्थान के सबसे बड़े सम्मान "भारत भारती पुरस्कार" से सम्मानित डॉ. सूर्यबाला जी ने अपने उपन्यास "कौन देस को वासी- वेणु की डायरी" में किया है।

जीवन से जुड़े विषयों के अलग-अलग संदर्भों को सम्मोहक रूप से खुद में सहेजे हुए यह उपन्यास जीवन के विविध स्वरूपों की उदात्त व्याख्या करता है। इस उपन्यास के द्वारा लेखिका की जीवन संबंधों के प्रति विस्तृत सोच दृष्टिगोचर होती है। लेखिका की सोच का दायरा न तो पुरातनपंथी है और न ही अत्याधुनिकता के नाम पर उच्छृंखलता की पैरवी करने वाला। यह उपन्यास परंपरा और आधुनिकता का ऐसा मणि-कांचन समावेश है कि हर पीढ़ी के पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

नौ खंडों में विभक्त इस वृहद् उपन्यास में सूर्यबाला जी ने दोनों देशों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए यह निष्कर्ष निकाला है कि हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति, जो "वसुधैव कुटुम्बकम" के सिद्धांत पर आधारित थी और "सर्वे भवन्तु सुखिन:" में विश्वास रखती थी, आज पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में आकर प्रदूषित होने लगी है। "जो सारी दुनिया जानती है उसे हम-तुम पूरी तरह गँवा चुके हैं अब, समझे? अब तो बस बात-बात में मुट्ठियाँ तान कर अपनी पावन परंपराओं की हेकड़ी जताना आता है हमें।"

"कौन देस को वासी, वेणु की डायरी", उपन्यास के शीर्षक में "वेणु की डायरी" पढ़कर लगता है कि यह किसी व्यक्ति विशेष के विदेश प्रवास के दौरान अनुभूत घटनाओं और प्राप्त जानकारियों का कथारूप होगा, किंतु इसमें वेणु के साथ-साथ उसकी माँ के विचारों का सिलसिला भी समकक्ष चलता रहता है, अत: इसे "वेणु और उसकी माँ की डायरी" समझकर पढ़ा जाए, तो उपन्यास और भी रोचक हो जाता है। सूर्यबाला जी ने दो पीढ़ियों के अंतराल को अलग-अलग दृष्टिकोणों से लिखते हुए अपनी कलम में भी उसी काल और परिवेश के रंग भरकर दोनों पक्षों के पूर्णत: भिन्न पहलुओं को निष्पक्ष रूप से व्यक्त करते हुए पाठकों को चमत्कृत कर दिया है। वेणु की पत्नी और उसकी माँ के वार्तालाप भी पूर्वाग्रह से मुक्त और पूरी तरह तर्कसंगत तथ्यों से भरपूर हैं।

यह उपन्यास आपको अमेरिकी चकाचौंध की सपनीली दुनिया अपनी आँखों में बसाए हर "वेणु" और उसके परिवार से मिलवाएगा। यह आम कहानियों जैसा पढ़ कर भूल जाने वाला उपन्यास नहीं है, बल्कि भारतीयों को अपनी संस्कृति पर गर्व करने का आह्वान करते हुए एक

ग्रंथ के समान है। उपन्यास के कुछ अंश इतनी गहराई लिए हुए हैं कि पढ़ने के बाद काफी देर तक मन-मस्तिष्क में गूँजते रहते हैं। वाक्यों के साथ साथ कोष्ठकों में प्रयुक्त वाक्यांश, अर्थ को विस्तार देते हैं। ऐसी अनूठी लेखन-शैली पाठकों को अपनी कल्पनाशीलता के आधार पर वाक्यों में निहित गूढ़ अर्थ समझने के विस्तृत आयाम देती है। इस उपन्यास में भारतीय विचारधारा और संस्कृति से प्रेरित एक पारिवारिक कथा को प्रवासी भारतीय की जीवन शैली के साथ-साथ गूँथा गया है। पूरे उपन्यास में लेखिका ने उसी भाषा का प्रयोग किया है, जो आज की पीढ़ी की भाषा बन चुकी है, अर्थात हिन्दी के वाक्यों में अंग्रेज़ी का यथोचित समावेश। यह उपन्यास इसलिए भी विशिष्ट है, क्योंकि हिन्दी व्यंग्य लेखन की सशक्त हस्ताक्षर सूर्यबाला जी ने इस उपन्यास में तीखे कटाक्षों से खूब प्रहार किए हैं, जिसका पिछले उपन्यासों में प्राय: अभाव नज़र आता था।

"ठाठ हैं विदेश में रहते भगवानों के भी। यहाँ रहते तो इन्हीं लो-मिडिल क्लास स्थितियों में हमेशा घाटे में ही रहने वाले बजट के साथ भगवानों को भी एडजस्ट करना पड़ता। सिर्फ अर्थ की तंगी नहीं, साफ-सफाई को लेकर भी तमाम सारी ग़लत आदतों के शिकार--भक्त से लेकर भगवान तक...!"

विदेश में स्वदेशी वस्तुओं के मोह और संग्रह पर कटाक्ष करता हुआ एक वाक्य--

"यह मात्र अपनी संस्कृति पर गौरव का भाव है या अपनी धरती छोड़कर यहाँ बस जाने के अवचेतन पछतावे? भारत में रहते हुए हम क्यों महिमामंडित नहीं करते भारत को इतना?"

सभ्यताओं का आविर्भाव मानवता के उत्थान के लिए हुआ था, लेकिन आज सभ्यताओं के विकास का न जाने कैसा चरमोत्कर्ष आया है कि आज का मानव अवसादग्रस्त जीवन जीने को अभिशप्त होता जा रहा है। हमारा समाज जिस तेजी से धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक को छोड़कर मात्र आर्थिक होता जा रहा है, वह चिंता का विषय है। लेखिका का मानना है कि हमारी मान्यताओं, संस्कृति और परंपराओं में अभी बहुत मूल्यवान बचा हुआ है, जिसे सहेजना आवश्यक है। अपनी संस्कृति पर बढ़ते प्रहारों से चिंतित होकर लेखिका ने इस उपन्यास के द्वारा भारतीयता की जड़ें मज़बूत करने का पुरज़ोर प्रयास किया है। साथ ही विश्वव्यापी भ्रष्टाचार और राजनीति को लेकर भी अनेक कटाक्ष किए हैं।

"हरगोविंद खुराना से लेकर अमर्त्य सेन, नायपॉल और सुनीता विलियम्स तक अगर इंडिया में रहे होते ना, तो इंडिया की गंदी राजनीति, भ्रष्टाचार और नियम कानूनों की धज्जियाँ उड़ाती शासन व्यवस्था में कभी अपनी मंज़िल तक नहीं पहुँच पाते।"

भ्रष्टाचार अमेरिका में भी कम नहीं, लेकिन सरकारी व्यवस्था भारत की तुलना में काफी मुस्तैद है।"जो व्यवस्था अपने कॉमन मैन को भरपेट खाना मुहैया कर देती है, वह भूख और कंगाली पोसने वाली सरकार की तुलना में मसीहा है।"

युद्ध को एक व्यवसाय की तरह बताते हुए लेखिका के ये कटाक्ष मस्तिष्क पर हथौड़े सी चोट करते हैं-

"इस देश का सबसे प्रॉफिटेबल उद्योग तो युद्ध है। इतने बड़े पैमाने पर लड़े जाते युद्ध के लिए दुनिया भर को हथियारों की सप्लाई ऐसे ही तो नहीं हो जाती और युद्ध लड़े जरूर जाएँगे क्योंकि युद्ध होना या ना होना अमेरिकी शासन नहीं, हथियार बनाने वाली कंपनियों की लॉबी तय करती है।"

"कहर तो इन युद्धों ने ढाया हुआ है--बाहर के शहर... उजड़ जाने वाले देशों की तबाही... बेकसूरों के जान-माल का नुकसान... जितने जान माल का नुकसान... जितनी ईंधन, ऑयल की खपत, उतने ज़्यादा मुनाफे का व्यापार-- तभी तो चीज़ों की ज्यादा ज़रूरत भी होगी। तो ज्यादा प्रोडक्शन, ज्यादा मुनाफा... सोच कर दिमाग चकरा जाता है न! युद्ध की जो विभीषिका एक सामान्य व्यक्ति को आतंक में दहला देने वाली होती है, वही उनके लिए प्रकारांतर में लाभकारी भी होती है, वरना कौन कहता है, युद्ध नहीं रोके जा सकते?"

हमारे देश में आम नागरिकों के लिए अमेरिका जाने का वीसा मिलना कितनी टेढ़ी खीर है, इसका अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि भारत में वीसा मिलने की गारंटी देते हुए अनेक मंदिर भी हैं, जिनमें श्रद्धालुओं की भारी भीड़ रहती है। वीसा मिलने के दौरान आत्मसम्मान को चोट पहुँचाता वीसा कर्मचारियों का रवैया उपन्यास के एक पात्र को यह कहने पर मजबूर कर देता है कि "अमेरिका जाना इस हद तक ज़रूरी क्यों है कि ज़मीन जायदाद तो फिर भी ठीक है, पर अपना आत्मसम्मान तक बेचकर जाया जाए?"

इस उपन्यास में आँख मूँदकर पाश्चात्य संस्कृति की आलोचना नहीं की गई है, बल्कि अनेक प्रसंग ऐसे भी हैं, जो वहाँ के अनुकरणीय गुणों की मुक्तकंठ प्रशंसा करते है। व्यक्ति को कार्य के आधार पर कमतर न आँकने की मानसिकता, विवाह में दोनों पक्षों का सम्मिलित रूप से सहयोग, साफ-सफाई को अपना दायित्व समझना, वृद्धों की अच्छी पेंशन और मेडिकल सुविधाएं, समानता का भाव जैसे सद्गुणों की तुलना भारत में फैले नकारात्मक पहलुओं से करते हुए लेखिका ने अपनी आलोचनात्मक टिप्पणियों के द्वारा सामाजिक चेतना जगाने का भी काम किया है।

एक तरफ हमारे ग्रंथों और उपनिषदों में वर्णित भारतीय विचारधारा, संस्कृति, अनुशासन को अमेरिका जैसे देश में भी सराहा और आचरण में लाया जा रहा है और दूसरी तरफ हम भारतीय, अपनी संस्कृति को कमतर मानकर उन्हें सहेजने के बदले कौड़ी के मोल लुटा रहे हैं। हमें स्वयं को तुच्छ समझने की मानसिकता से उबरना होगा।

"मेरा कहना है कि सुपीरियारिटी इनके अंदर इतनी नहीं जितनी हमारे अंदर इंफीरियारिटी है और इस कुंठा को हम अपने गुस्से और आक्रोश में छुपाते फिरते हैं।"

ग्लोबलाइजेशन के इस दौर में हमारी भारतीय मान्यताओं में कुछ संशोधन अवश्य किए जाने चाहिए, लेकिन पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण करके नहीं, क्योंकि रूढ़ियाँ,

परंपराएँ समय के साथ बदलती हैं, आधारभूत मानवीय मूल्य नहीं।

हमारे देश में शादी-ब्याह, जन्म-मृत्यु के दौरान जो कर्मकांड समाज को जोड़ने के लिए बनाए गए थे, आज स्वार्थपरता के कारण मात्र दिखावा बनकर अपने मूल प्रयोजन से भटकने लगे हैं। विवाह समारोहों में वधू-पक्ष से समय-असमय दहेज की माँग करके उन्हें वरपक्ष द्वारा नीचा दिखाया जाना, परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु पर कई दिनों तक होते रहने वाले आडंबर, ईश्वर की आराधना का भी औपचारिक रूप, ऐसी न जाने कितनी बातें हैं, जिनमें संशोधन अवश्य किया जाना चाहिए, लेकिन इसका अर्थ यह तो नहीं है कि हम अपनी सभ्यता को ही छिन्न-भिन्न कर डालें!

"देखना, आठ-दस सालों के भीतर पूरा अमेरिका, गंद के टोकरे की तरह, औंधा देंगे अपने देश, अपनी जमीन पर। पूछो इन उल्लू के पट्ठों से, अपने देश को सुधारो, सँवारो... उसे नेस्तनाबूद कर उस पर अमेरिका क्यों बसाने पर तुले हो?"

उपन्यास में अमेरिका में डिप्रेशन की दवाइयों की बढ़ती खपत और बढ़ते मानसिक आघात को लेकर अनेक कटाक्ष किए गए हैं।

"जितनी बीमारियाँ, अकाल, भूकंप, एपिडेमिक्स, टेंशन, डिप्रेशन, उतनी ज़्यादा दवाओं की माँग। बस मौका देखकर डाइव मारना आना चाहिए।"

विदेश में रहते हुए समझ आता है कि अचानक नौकरी चले जाने जैसी मुसीबत वहाँ भी सिर पर पड़ सकती है, लेकिन वहाँ छँटनी का लिफाफा (पिंक स्लिप) मिलने पर भी मुस्कुराना लाज़िमी होता है क्योंकि वहाँ खुलेआम अपने दर्द का प्रदर्शन अशिष्टता यानी बैड एटिकेट्स के दायरे में आता है। एटिकेट्स के नाम पर स्वार्थपरता से क्षुब्ध होकर लेखिका ने यह प्रश्न उठाया है कि अमेरिका की यह सामान्य सी बात कहीं हमें मशीनी तो नहीं बनाती जा रही?

"जैसे हम मनुष्य नहीं, मशीन हों, या रोबोट हों, और बेहद खुदगर्जी से बंधे बँधाए स्टीरियोटाइप निर्देशों पर चले जा रहे हों!"अजूबे रिश्तों के इस देश में खुद को दफनाए जाने की जगह खुद ही ढूँढ़कर खुश होने का अभिनय करते हुए एक पात्र का प्रसंग सिहरन पैदा कर देता है। इस विषय में प्रसिद्ध हास्य व्यंगकार "अर्ट बुख्वार्ड" की पुस्तक "टू सून टू से गुडबाय" का भी उल्लेख किया गया है।

उपन्यास में वेणु की तीन बहनों के माध्यम से रिश्तों की बारीकियों को समझा जा सकता है। विभिन्न परिवेश के परिवारों में बेटियों का विवाह और अपने अपने परिवारों के साथ दो बेटियों के सामंजस्य के बीच तीसरी बेटी वसुधा का अपने जीवनसाथी को स्वयं चुनने का निर्णय पाठकों को हैरान कर देता है। वसुधा जीवन को अपनी शर्तों के साथ एक क्रांतिकारी कोण पर जीती है। स्वेच्छा से एक पुरुष के साथ रहने लगना और साथ ही उसके संयम की परीक्षा, नारी के स्वाभिमान का एक अलग ही स्वरूप प्रतिबिंबित करता है। वसुधा के चरित्र से विस्मित पाठक के ज़ेहन में यह सवाल ज़रूर उठेगा कि क्या सुहास जैसे पुरुष इसी दुनिया में पाए जाते हैं, जो एक नारी द्वारा ली गई परीक्षा में उत्तीर्ण होने की योग्यता रखते हों?

उपन्यास में वसुधा और मेधा के बीच ननद भाभी के रिश्तों का कवच उतारकर दो नारियों के अलग अलग दृष्टिकोण से विचारोत्तेजक वार्तालाप पाठकों को प्रश्नों और प्रतिप्रश्नों के ऐसे चक्रव्यूह में ला खड़ा करता है, जो पाठक के मस्तिष्क को झकझोर देते हैं।

भारतीय रिश्तों की सबसे बड़ी खूबी यह है कि ये समाज की इकाई कहे जाने वाले परिवार को एक सूत्र में पिरोकर रखते हैं। छोटी छोटी बातों पर भी मिलकर खुशी मनाते हैं। जब तक इन्हें आर्थिक पलड़ों पर न तोला जाए, तब तक खानदान के एक व्यक्ति की समस्या भी पूरे परिवार की समस्या बन जाती है, एक की नौकरी जाने पर पूरा परिवार सहयोग करता है, लेकिन जब परिवार के एक व्यक्ति का भी जीवनस्तर ऊँचा उठने लगे, तो शेष लोगों की अपेक्षाएँ भी उससे बढ़ने लगती हैं। विदेशी संस्कृति में जहाँ स्पेस और प्राइवेसी के नाम पर स्वच्छंदता को बढ़ावा मिलता है, वहीं भारतीय संस्कृति में परिवार के व्यक्तियों के काम बँटे होने के साथ-साथ कुछ वर्जनाएँ भी होती हैं, जिनका पालन करने का व्यक्ति पर मानसिक दबाव भी होता है। कभी-कभी यह दबाव, यह अनुशासन मार्गदर्शक बनकर गलत रास्तों पर जाने से बचाता है, लेकिन कभी-कभी जीवन भर का बोझ भी बन जाता है। अमेरिका जैसे खुली सोच वाले देश सब कुछ पा लेने को ही जीवन की पूर्णता समझते हैं और सब कुछ पा लेने की दौड़ में भागते चले जाते हैं। अंतत: अत्यधिक पाकर अघा जाते हैं और एक खालीपन का एहसास लिए अवसाद में डूब जाते हैं।

भारतीय पर्वों को अमेरिका में धूमधाम से मनाने के प्रसंगों का विवरण और भारतीय संगीत की मिठास से सजे कार्यक्रमों की विदेशी धरती पर लोकप्रियता विदेश में भारतीय संस्कृति के बढ़ते प्रभाव की दस्तक देती हुई लगती है। नौकरी में आरक्षण,स्कूलों में एडमिशन जैसी अनेक समस्याएँ दोनों ही देशों में समान रूप से विद्यमान हैं। बेटे के अपने देश की धरती छोड़ देने की व्यथा से आरंभ होकर यह उपन्यास अंतत: अपने बच्चों के स्वदेश वापस लौटने की संभावनाएँ जगाते हुए विराम लेता है। यह उपन्यास पूरा पढ़ने के बाद आप एक आम नागरिक नहीं, बल्कि एक ऐसे ज़िम्मेदार नागरिक के रूप में स्वयं को पाएँगे, जो अपनी संस्कृति की रक्षा करने को कृतसंकल्प है।

उपन्यास में जीवन अर्थवान बनने को लेकर व्यंग्य किया गया है, जहाँ पर अर्थवान का तात्पर्य "उपयोगी" न होकर "धनवान" बताया गया है। जैसा कि मैंने आरंभ में बताया था कि लेखिका पाठकों को अपनी कल्पनाशीलता के आधार पर वाक्यों में निहित गूढ़ अर्थ समझने के विस्तृत आयाम देती हैं, तो इस उपन्यास को आप "गया के बोधि वृक्ष" की तरह पाएँगे, जो आपके ज्ञान की अनेक शाखाओं का प्रसार करते हुए आपको अपने साथ विश्व कल्याण की ओर ले चलेगा। इतने सार्थक सृजन के लिए लेखिका बधाई की पात्र हैं।

000

(उपन्यास)

राजनटनी

समीक्षक : डॉ. शुभा श्रीवास्तव

लेखक : गीताश्री

प्रकाशक : राजपाल एंड संस, नई दिल्ली

डॉ. शुभा श्रीवास्तव
प्रवक्ता
राजकीय क्वींस कॉलेज
लहुराबीर, मलदहिया, चेतगंज
वाराणसी, उप्र 221002
मोबाइल- 9455392568

मैं आंचलिक उपन्यास की सीमित परिभाषा में राजनटिनी उपन्यास को बाँधने के पक्ष में नहीं हूँ। परंतु लोक संस्कृति और जीवन का जीता जागता बिम्ब हमें यहाँ लक्षित होता है। लोक का प्रवेश यहाँ बाइस्कोप की तरह हुआ है। इस बाइस्कोप से हम मिथिला की सारी लोक संस्कृति को देख सकते हैं। वहाँ के साहित्य, संस्कृति की सुन्दर छटाएँ सम्पूर्ण उपन्यास में अनिवार्य उपकरण की तरह प्रयुक्त हुए हैं। उपन्यास में वैदिक एवं लौकिक सूत्रों का बड़ा अनूठा सम्मेलन देखने को मिलता है। इसमें ऋग्वेद, सामवेद के श्लोक हैं और लोकगीतों की धुन भी सुनाई पड़ती है। आंचलिकता की इसी मधुर लय पर एक प्रेम कथा थिरकती है जिसे पढ़ कर मन झूम उठता है। मीनाक्षी और बल्लाल देव की प्रेम कथा में अन्य वाद्य यंत्र भी हैं। पहली चर्चा इतिहास की।

इतिहास के गर्भ में अनेक पात्र एवं उनका जीवन मोटी-मोटी पोथियों के बीच में दब कर रह गया है। कुछ ऐसी वीरांगनाएँ हैं जिनके विषय में इतिहास कुछ कहना नहीं चाहता है क्योंकि उसका पुरुषात्मक सामंतवादी चेहरा पूरी तरह से उद्घाटित हो जाएगा। इन वीरांगनाओं के नामों में एक नाम है मीनाक्षी। आज मैं मिथिला की राजनटिनी मीनाक्षी के बलिदान की अनकही दास्तां के संदर्भ में पढ़ करके दंग रह गई। इसका श्रेय गीताश्री को जाता है जिन्होंने राजनटिनी नामक उपन्यास लिखकर मिथिला की इस वीरांगना को सबके समक्ष उपस्थित किया। राजनटनी एक ऐतिहासिक नाटक है पर उसमें गल्प का भी समावेश है। कुछ ऐतिहासिक तथ्य, पात्र और घटनाएँ जैसे राजा गंगदेव ने भगवानपुर नगर से ही पराजित करके लौटा दिया था, बल्लाल सेन की विजय के साथ ही ऐतिहासिक पात्र बल्लाल सेन, मीनाक्षी इत्यादि भी देखने को मिलते हैं। उपन्यास में कलिंग और मगध विजय की थोड़ी झाँकी भी संक्षिप्त रूप में दिखाई देती है।

12वीं शताब्दी की मीनाक्षी और बल्लाल सेन की प्रेम कहानी इस उपन्यास का मुख्य कथ्य हैं जिसमें प्रेम के त्रिकोण को भी दिखाया गया है। त्रिकोण सौमित्र और अलबेली के द्वारा प्रस्तुत होता है। मीनाक्षी की आकांक्षाएँ, इच्छाएँ और उस की स्वतंत्रता समकालीन किसी भी नायिका के इच्छा आकांक्षा और स्वतंत्रता से सहज ही एकाकार हो जाती हैं। 12वीं शताब्दी में उत्पन्न होते हुए भी मीनाक्षी जिस प्रकार से अपने स्वतंत्र चरित्र के लिए जानी जाती है और जिस तरह से वह स्वतंत्रता पूर्वक जीती है वह आज की स्त्री के लिए प्रेरणा हो सकती है। मीनाक्षी का अपने देश की संस्कृति, साहित्य और प्रेम को बचाने की अंतस वेदना अनायास ही पुरस्कार की मधुलिका से वार्तालाप करने लगते हैं। उस मनोदशा को गीताश्री ने मीनाक्षी के द्वारा इस उपन्यास में बड़ी ख़ूबसूरती से चित्रित किया है। उपन्यास को पढ़ते समय मधुलिका एक मिनट के लिए भी मेरे मस्तिष्क से नहीं जाती है और मीनाक्षी अपने को और साकार रूप में उपस्थित करती है। उपन्यास में मीनाक्षी का प्रेम और देश की संस्कृति सभ्यता और ज्ञान की रक्षा के लिए किया गया प्रण, प्रेम को बलिदान कर देने की अदम्य इच्छा पाठक को स्वयं उसके चरित्र के आगे नतमस्तक होने को मजबूर कर देता है।

वर्तमान में स्त्री लेखन स्त्री अस्मिता को स्थापित करने के संघर्ष की चुनौतियों से उपजा है। पितृसत्तात्मक समाज ने स्त्री को सदैव दबाया और सताया है। स्त्री अस्मिता की स्थापना के लिए ऐतिहासिक कथानक का चयन कोई नई बात नहीं है। यह उपन्यास अपने ऐतिहासिक कथानक के लिए कम स्त्री विमर्श के लिए लम्बे समय तक याद किया जाएगा। इस उपन्यास में स्त्री स्वातन्त्र्य एक स्त्री के निगाहों से एक स्त्री की गाथा है। गीता श्री ने इसमें इतिहास और गल्प का एक अनोखा और रसानुप्रवाह कथानक अपने साहित्य प्रेमियों को दिया है, जो प्रेम की कोमल दूब पर आत्म समर्पण की नर्म छूअन लिए हुए है। यह प्रतीक हैं उन प्रेमियों के लिए जो हृदय की अनंत गहराइयों से प्रेम करते हैं वो विजयी होते हैं। मीनाक्षी जिसे प्रेम है अपनी इच्छा से,अपनी स्वतंत्रता से,अपनी कला से, अपनी संस्कृति से, अपने राष्ट्र से, वह मृत्यु को चुनकर भी जीत जाती है। वह पाठक का स्नेह ही नहीं सम्मान भी पाती है।

गीता जी ने 12वीं शताब्दी की मीनाक्षी के माध्यम से मिथिला और बंग प्रदेश की स्त्रियों की

सामाजिक, शैक्षिक और राजनैतिक परिस्थिति को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। पुरुषात्मक सामंतवादी समाज में राज्य सत्ता हो चाहे प्रेम सत्ता उसमें स्त्री का अस्तित्व और प्रेम दोनों कैसे दाव पर लगता है यह हम इस उपन्यास में देखते हैं। मीनाक्षी तो बिना देखे बिना जाने बल्लाल से एकनिष्ठ प्रेम करती है परंतु बल्लाल एक तीर से कई निशाने साधना चाहता है। वह मीनाक्षी को भी प्राप्त करना चाहता है, मिथिला के ग्रंथ और मिथिला को भी अपने अधीन रखना चाहता है। राजसत्ता और प्रेम सत्ता में स्त्री की अस्मिता दाँव पर लगती है। सौमित्र का साजिश रचना पुरुष अहम् का ही हिस्सा बन कर सामने आता है। बल्लाल भी अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अलबेली को साधन बनाता है। राजा गंग देव अपनी हार के बदले मीनाक्षी को बल्लाल सौंप देते हैं बिना यह सोचे कि मीनाक्षी की अस्मिता दाँव पर लग जाएगी। गीताश्री के चित्रण का यह वैशिष्ट्य है कि इस पूरे प्रकरण के माध्यम से वह समकालीन संदर्भ भी उकेरते चलती है। बात चाहे बारहवीं सदी की हो या वर्तमान समय की स्त्री की अस्मिता के सन्दर्भ में पुरुष दृष्टिकोण आज भी परिवर्तित नहीं हुआ है।

उपन्यास में बल्लालदेव के माध्यम से कुलीनवादी संस्कृति की ओर इशारा किया गया है। बल्लाल के शब्दों में वह लिखती हैं कि-- "जाति कुलीनता को बढ़ावा देना जिसमें ब्राह्मण क्षत्रिय और कायस्थ को उचित स्थान प्राप्त होगा। वह पिछड़ी जाति हैं जिन्हें भी नीच जाति मानते थे उसे वैवाहिक संबंधों के बनाए जाने के पक्षधर थे। उनकी पुत्री से विवाह किया जा सकता था। उनके पुत्रों से अपनी रोटी बेटी का रिश्ता नहीं बनाया जा सकता था।"(पृष्ठ 52)

स्त्री अस्मिता को यह उपन्यास बड़ी प्रखरता से दिखाता है। वैसे तो पूरा उपन्यास ही स्त्री के अस्तित्व स्थापना को एक ख़ूबसूरत ढंग से उपस्थित करता है परंतु दो उदाहरण में देना चाहूँगी जहाँ प्रखर और प्रबल रूप से स्त्री अस्तित्व को प्रगतिवादी दृष्टिकोण से देखा गया है। पहला प्रकरण है जब मीनाक्षी को राजनीटिनी घोषित किया जाता है। वह मिथिला नरेश गंगदेव से कहती है कि मेरी कला किसी महल और दरबार तक सीमित नहीं रहेगी और नटनी का पद तो स्वीकार करती है परंतु राजमहल में रहना और अन्य शर्तों को मानने से इंकार कर देती है। वह कहती है कि- "राजकीय सम्मान की खातिर अपनी स्वतंत्रता गिरवी नहीं रख सकती। उसकी अपनी पहचान उसके समुदाय की पहचान कला सब लुप्त हो जाएगी।" (पृष्ठ 68)

स्त्री अस्मिता, उसकी स्वतंत्रता, कला की स्वतंत्रता इत्यादि को मीनाक्षी का यह निर्णय बड़ी ख़ूबसूरती से कथा के माध्यम से उपस्थित करता है। मीनाक्षी की स्वतंत्रता एक विचारधारा से स्पष्ट रूप से पता चलती है कि मिथिला की नारियाँ ख़ुद को वैदेही से जोड़ती थी मीना अपने को गार्गी से जोड़ कर देखने लगी थी। दूसरा प्रकरण है जब बल्लाल सेन मीनाक्षी को अपनाना चाहता है और साथ ही उसकी मिथिला की अभिलाषा भी रहती हैं। मीनाक्षी स्त्री प्रेम को भी स्वीकृति देती है और देश प्रेम की एक निष्ठता का भी वरण करती है। वह स्वयं मर के भी बल्लाल सेन के पास जाती है और देश की धरोहर को भी सुरक्षित रखती है।

मीनाक्षी अपनी स्वतंत्रता में ज़्यादा आधुनिक और समकालीन है। आज पुरुष मित्र को स्वीकार नहीं करता है पर मीनाक्षी सौमित्र से सच्चे मित्र की उम्मीद करती है। पर पुरुष की विचार कभी स्त्री के प्रति कहाँ बदलता है। सौमित्र मित्रता नहीं प्रेम की नज़र से देखता हैं पर मीनाक्षी का सोचना जायज है कि जो प्रेम करता है वह मीनाक्षी के इनकार के बाद क्या बदला लेने की कोशिश करता ? वह कहती है कि- "मैं आपसे प्रेम नहीं करती हूँ सौमित्र। आपसे मैत्री संबंध स्थापित किया था, आपने उसके ग़लत अर्थ लगाए। मैं आपके उपकार के बदले अपने मन का सौदा नहीं कर सकती। मैं उस पुरुष को वरण नहीं करूँगी जिसे मैं प्रेम नहीं करती।" एक स्त्री की इमानदार स्वीकृति का इससे श्रेष्ठ उदाहरण अन्यत्र नहीं मिलेगा।

आधुनिक चेतना से युक्त मीनाक्षी कहती है कि "अगर आप कुछ कर सकते हैं तो इतना करिए कि हमारे समुदाय की लड़कियों के लिए गुरुकुल या पाठशाला का प्रावधान करवा दीजिए। मेरी तरह किसी को शिक्षा दीक्षा के लिए तरसना न पड़े।" (पृष्ठ 69) इस प्रकार के अनेक उदाहरण जो स्त्री स्वातंत्र्य और आधुनिक चेतना के पर्याय हैं वह उपन्यास में अनेक स्थलों पर चित्रित हैं।

मीनाक्षी के जेहन में उत्पन्न होने वाले भावना के अलग-अलग शेड्स को गीताश्री ने बड़ी कुशलता से पकड़ा है और उसे अपने जादुई भाषा में प्रस्तुत किया है। पढ़ते हुए पाठक को लगता है कि इस स्थिति में वह होता तो शायद यही करता और यही सोच उपन्यासकार की सफलता है। लेखिका मीनाक्षी के आंतरिक मनोभावों को पाठक के सामने इस प्रकार प्रस्तुत करतीं हैं कि पाठक को कहीं भी उसको समझने में कठिनाई नहीं होती है।

हमारे यहाँ एक कहावत है कि तीन पीढ़ियों के बाद दोष मुक्त हो जाता है। ठीक उसी तरह से मीनाक्षी की तीन पीढ़ियाँ मिथिला में वास करके उसी देश की हो गई थी। एक अज्ञात कुल में जन्मी मीनाक्षी के लिए जाति, वर्ण, धर्म कोई मायने नहीं रखता है। अवर्ण होते हुए भी मीनाक्षी देश प्रेम में अपने प्राण न्योछावर कर देती है। मीनाक्षी का चरित्र कुलीनता वादी परंपरा पर प्रहार है।

उपन्यास को पढ़कर यह भावना बलवती होती है कि देश प्रेम संकीर्ण विचारधारा नहीं है। मीनाक्षी अन्य लोगों की तुलना में ज़्यादा देश भक्त है पर अपने देश में वास करने वाला सौमित्र देश द्रोही निकलता है। देश प्रेम को किसी परिभाषा में या संकीर्ण विचारधारा में नहीं बाँधा जा सकता है। ठीक यही बात प्रेम के संदर्भ में भी लागू होती है। सारा समय किताबों में व्यतीत करने वाला बल्लाल उतना श्रेष्ठ प्रेमी नहीं होता है जितना कि औपचारिक शिक्षा से अलग रहने वाली मीनाक्षी सिद्ध होती है। देश प्रेम और प्रेम दोनों की दृष्टि से मीनाक्षी बल्लाल से श्रेष्ठ सिद्ध होती है।

उपन्यास में प्रेम चित्रण की जितनी प्रशंसा की जाए वह कम है। प्रेम का हृदयंगम रूप

अपनी कोमल अनछुए अहसास के साथ बहुत दिनों के बाद पढनें में आया है। प्रेम के नाम पर देह गाथा का व्यापार आज के साहित्य का एक बड़ा सच बन गया है। पर प्रेम के नाम पर देह गाथा को ढूँढ़ने वालों को यहाँ निराशा हाथ लगेगी। यहाँ प्रेम है, प्रेम की विफलता है, उसकी शालीनता है पर देह वर्णन नहीं है। मीनाक्षी और बल्लाल के प्रेम वर्णन में एक मधुर संगीत की अनुभूति है जो पाठक के हृदय को हौले-हौले सहलाती है। उपन्यास में प्रेम पूरी तरह से प्रेम ही है और कुछ नहीं है। मीनाक्षी का अनदेखा, अनछुआ प्रेम हृदय के कोने-कोने में सँजोने का मन करता है। सच्चा, सरल, कोमल और पारदर्शी प्रेम का जब भी जिक्र आएगा तब मीनाक्षी बिना स्मरण किए याद आयेगी क्योंकि मीनाक्षी ने हृदय के अन्तस में मौन पैठ बना ली है। श्रवण प्रेम का संस्कृत साहित्य में सुन्दर वर्णन मिलता है। हिन्दी में इस प्रकार की सामग्री कम ही है पर गीताश्री ने श्रवण प्रेम को हिन्दी साहित्य में प्रवेश के साथ ही अमर भी कर दिया है। आधुनिक समाज में श्रवण प्रेम के द्वार शुद्ध और सात्विक प्रेम कहानी को मनमोहक रूप में कोई चित्रित कर सकता है इसकी कल्पना करना मुश्किल था।

प्रेम की सूक्ष्म दृष्टि को गीता जी ने बड़ी ख़ूबसूरती के परखा है। पुरुष जब प्रेम करता है तो स्त्री की तरह भावनाओं में नहीं बहता है बल्कि मस्तिष्क से नियंत्रित रहता है। बल्लाल मीनाक्षी को प्राप्त करने के साथ ही मिथिला पर विजय भी करता है और वहाँ के ग्रंथ को भी अपने देश में ले जाना चाहता है। वह मीनाक्षी को पाना चाहता था और अपने पिता की इच्छा को भी पूरी करना चाहता था। परंतु मीनाक्षी को एक आक्रमणकारी देश का राजकुमार संपूर्ण ज्ञान लूट ले जाए यह स्वीकार नहीं था।

उपन्यास में गीताश्री की काव्यात्मक शैली भी देखने को मिलती है। सौंदर्य वर्णन के संदर्भ में "रानी की बड़ी-बड़ी कज़रारी आँखें चमक रही थी। घने लंबे केशों का जोड़ा उस पर फँसा हुआ रेशमी आँचल उन पर शुभ रहा था। वे दक्षिण राज्य के राज परिवार से ताल्लुक रखती थी। वह श्याम वर्ण सुंदरी थी जिन्हें सोने के गहने बहुत पसंद थे।" जैसे शब्दों की कारीगरी भी दिखती है।

इतिहास लेखन जिसे प्रामाणिक मानता है और व्यक्ति स्वयं भी मानता है वह कैसे राजसत्ता से नियंत्रित होता है इसका उदाहरण हमें इस उपन्यास में मिलता है। बल्लाल सेन अपना चरित्र लिखवाते समय बौद्ध मठों को उजाड़ने का प्रसंग तो लिखवाता है परंतु प्रेम और ग्रंथ की लूट को वह वर्णन नहीं करवाता है। बल्लाल चाहता है कि मिथिला के लोग उसे अपने दामाद राम चंद्र की तरह याद करें वह मीनाक्षी और पोथियों को लेकर के लौट जाना चाहता है। अपने राज्य के अधीन मिथिला को रखना चाहता है परंतु उसे गुलाम नहीं बनाना चाहता है और ना ही लूटपाट करना चाहता है।

मिथिला के इतिहास में कर्नाट वंश के गंगदेव का समय 1147 से 1187 तक माना जाता है। इन्होंने मधुबनी शहर की स्थापना की जो मिथिला पेंटिंग तथा मखाना के लिए विश्व प्रसिद्ध है। मखाना का उल्लेख गीताश्री भी करती हैं। यहाँ की भाषा मैथिली और हिन्दी है। भाषा के इतिहास को तीन भागों में विभक्त किया जाय तो आदिकाल का समय 1000 से 1600 तक आयेगा और मीनाक्षी का समय बारहवीं शताब्दी है। मुसलमानों का प्रवेश मध्यकाल में माना गया है जिनकी भाषा अरबी है। इस आधार पर उपन्यास में अरबी(उर्दू) के शब्दों का प्रयोग असंगत लगता है। उपन्यास में फ़सल, फ़ैसले, मिज़ाज, काफ़िला जैसे शब्दों का प्रयोग है जो अरबी से आए हैं और मुसलमानों का प्रवेश मध्यकाल में है तो ज़ाहिर सी बात है कि इस तरह के शब्दों का प्रयोग मध्यकाल के बाद होता है। गंगदेव का समय अगर हम देखें तो विद्यापति से पूर्व का है और तब हिन्दी भाषा या मैथिली दोनों में इस तरह के शब्दों का प्रयोग मैंने नहीं देखा है। इसी के साथ एक और शब्द है साबका जो ठेठ अरबी का शब्द है इसका देशज रूप साबिका है। कबीर ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है। परंतु 12वीं शताब्दी में इस शब्द का प्रयोग किया जाता रहा होगा इसमें मुझे संदेह है। जहाँ तक मेरी जानकारी है और मैंने जो भी ऐतिहासिक रचनाएँ पढ़ी हैं उनमें इस तरह का प्रयोग देखने में नहीं आया है। इसी प्रकार से कुछ वाक्य विन्यास में भी असंगति मिलती है जैसे गीताश्री कहती हैं बल्लाल मीनाक्षी से कहता है- "कितना मोहक दिव्य सौंदर्य है देवी आपका। तुम साक्षात् अप्सरा हो।" इस वाक्य विन्यास में आप और तुम दोनों शब्द एक व्यक्ति के लिए एक साथ दिए हुए हैं। यह वाक्य विन्यास अटपटा लगता है। ऐसा कई स्थलों पर हुआ है।

इसके साथ ही कुछ स्थलों पर अंग्रेज़ी के शब्द भी असंगत लगते हैं एक उदाहरण देना चाहूँगी जैसे वाक्य में प्रयुक्त हुआ है सेना की कमांड। यहाँ पर कमांड शब्द देवनागरी में लिखे होने के बावजूद अर्थ की दृष्टि से अंग्रेज़ी ही है और 12वीं शताब्दी में इस प्रकार के शब्द का प्रयोग होता रहा होगा यह नहीं लगता है। परंतु कुछ स्थलों पर शब्दों का चयन करने में गीताश्री ने एहतियात भी रखा है जैसे वीतरागी, अजगुत, निष्णात इत्यादि शब्द उनके शब्द चयन का वैशिष्ट्य ही बताते हैं।

गीताश्री ने वेदों के श्लोक को कथानक के मध्य में बड़ी ख़ूबसूरती से पिरोया है। वेदों के श्लोकों को कथानक के मध्य उसी अर्थ में कोड किया है जो भाषा और शैली का सुन्दर उदाहरण बन गया है।

कोई भी उपन्यास अपने ऐतिहासिक तथ्यों को समेटे के साथ ही कितना समकालीन है इससे उसकी सार्थकता मापी जाती है। इस संदर्भ में हम रज:स्वला के नियम को देख सकते हैं। उपन्यास में रज:स्वला स्त्री के सामाजिक नियमों के वर्णन के साथ ही उन नियमों में दी गई छूट का उल्लेख समकालीन संदर्भ में है। मीनाक्षी का शिक्षा के प्रचार प्रसार के लिए सौमित्र को कहना स्त्री शिक्षा की दिशा में भी संकेत करता है जो वर्तमान समाज की स्त्री विमर्श की मुख्य आवश्यकता एवं नारीवादी विचारधारा की नींव है। अपनी रोचक कथा की सुंदर अभिव्यक्ति के कारण यह उपन्यास पठनीय और स्त्रीवादी चेतना के प्रगतिशील विचारधारा के कारण संग्रहणीय भी है।

000

इन दिनों जो मैंने पढ़ा

(कहानी संग्रह)

मत्स्यगंधा

समीक्षक : सुधा ओम ढींगरा

लेखक : गीताश्री

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

सुधा ओम ढींगरा
101, गाईमन कोर्ट, मोरिंस्विल
नॉर्थ कैरोलाइना-27560, यू.एस. ए.
मोबाइल- +1-919-801-0672
ईमेल- sudhadrishti@gmail.com

गीताश्री के उपन्यास हसीनाबाद, वाया मीडिया, अम्बपाली और कहानी संग्रह लेडीज़ सर्कल पढ़ने के बाद अब 'मत्स्यगंधा' कहानी संग्रह पढ़ने का अवसर मिला। हसीनाबाद पर मैंने लिखा भी था। सबसे पहले यह कहूँगी कि कहानियाँ पठनीय हैं, स्वयं को पढ़वा लेती हैं।

संग्रह की पहली ही कहानी 'सैंया निकस गए, मैं ना लड़ी थी' भावुक कर गई। सदियों से पुरुष सत्ता की ज़मीन पर नारी रूपी नाज़ुक पौधे कुचले जाते रहे हैं। उनकी भावनाओं और संवेगों को कोई महत्त्व नहीं दिया गया। अज़हर रेहाना को छोड़ जाता है। वर्षों बाद लौट कर ऐसे आता है कि रेहाना उसके इंतज़ार में पलकें बिछाए बैठी होगी। रेहाना की शादी अज़हर के छोटे भाई से कर दी जाती है। अज़हर भी दूसरी शादी करवा चुका होता है। वापिस लौट कर वह रेहाना को उसके साथ नई ज़िन्दगी शुरू करने के लिए उकसाता है। रेहाना क्या चाहती है, उसकी मर्ज़ी कोई नहीं जानना चाहता। रेहाना का कोई अस्तित्व ही नहीं है कि उसकी ओर ध्यान दिया जाए। रेहाना अपने अंदर की औरत मार कर जी रही होती है। गीताश्री ने इस कहानी को बहुत कुशलता से बुना है। रेहाना जैसी महिलाएँ आज भी पुरुष की जागीर हैं। पुरुष ने महिला को हमेशा ग्रांटेड माना है। वह मालिक है, नारी तो उसकी प्रॉपर्टी है। इस सोच को तोड़ती संग्रह की कई कहानियाँ हैं; जहाँ स्त्री प्रेम से अधिक अपनी आज़ादी को महत्त्व देती है।

दूसरी कहानी 'मत्स्यगंधा' बहुत प्यारी कहानी लगी। पर्यावरण के परिवर्तन के साथ-साथ जो समस्याएँ सामने आ रही हैं और जो आगे और आने वालीं है, का बखूबी चित्रण किया है। स्त्री अपनी रक्षा के लिए क्या-क्या स्वांग रचती है, यथार्थपरक कहानी बनी है। अंत बहुत गज़ब का है। सुरसती की तरह इक्कसवीं सदी में भी स्त्रियों को अपनी रक्षा के लिए तरह-तरह के चोले बदलने पड़ते हैं। कहानी बहुत पसंद आई।

'अहेरी' आज के समाज और उसकी सोच का आईना दिखाती कहानी है। आजकल मानसिक तनाव जितना बढ़ रहा है,उसके बहुत से कारणों में एक कारण झूठा अहम् है, जो कुंठाओं के जन्म देता है। प्रेम को समझे बिना उसे ढाल बना कर खेलने वाले कुंठित अहेरी की मानसिक स्थिति पर लिखी गई कहानी है। कहानी का चरित्र-चित्रण अच्छा किया गया है।

'मेरे पाप को पुण्य में बदल दीजिए' कहानी ने कई विमर्श खड़े कर दिए हैं। क्या दैहिक स्वतंत्रता ही स्त्री विमर्श की माँग है। क्या प्रेम सिर्फ तन का मिलन है? क्या भिन्न-भिन्न पुरुषों से संबंध ही आधुनिकता है? यह कहानी चर्चा की माँग करती है।

'बरजोरी बेस हो नयनवाँ में' बचपन के सरल प्रेम के बहाने प्रेम पर ख़ूबसूरत कहानी है।

अधेड़ उम्र के पुरुषों का स्त्रियों को तरह-तरह के तरीकों और संबंधों की आड़ में तंग करने व उनका शोषण करने पर एक सर्वे पिछले दिनों अमेरिका के समाचार पत्रों में छपा था। यह सर्वे विश्व के कुछ ऐसे देशों में किया गया था, जिन देशों में बच्चों और स्त्रियों का शोषण अधिक होता है। इसमें भारत भी था और भारत में बच्चों और स्त्रियों के शोषण में अधेड़ उम्र के पुरुष अधिक संख्या में अंकित किये गए। 'मुखौटा' इसी समस्या को लेकर लिखी गई कहानी है।

गीताश्री की लेखन प्रतिभा का परिचय देती 'जहाँ तज़लील है जीना' साम्प्रदायिक मुद्दे को लेकर लिखी गई विचारणीय कहानी है।

पुरुष अहम् पर एक और सुंदर कहानी 'तू क्या है...?' है।

'बारहगामा' संपत्ति विभाजन और आडम्बरों को लेकर कुशलता से सुदृढ़ ताने-बाने में बुनी गई कहानी है।

'मत्स्यगंधा' की कहानियाँ विभिन्नता लिए रुचिकर हैं। बाँध लेती हैं। भाषा पात्रों के अनुकूल है। इस संग्रह के नारी पात्र अपनी भीतरी मज़बूती के साथ हर परिस्थिति का मुकाबला कर सुदृढ़ता से निकलते हैं। पढ़ी-लिखी हैं या अनपढ़ तकरीबन सभी महिला पात्र इच्छाशक्ति और निर्णयों में दृढ़ हैं। यही आज की माँग हैं, महिला कमज़ोर नहीं वह स्वयं की ताक़त को पहचाने। एक अच्छा कहानी संग्रह देने के लिए गीताश्री और शिवना प्रकाशन दोनों को बधाई।

000

केंद्र में पुस्तक

(उपन्यास)

रूदादे-सफ़र

समीक्षक : डॉ. रमाकांत शर्मा, अनीता सक्सेना, दीपक गिरकर
लेखक : पंकज सुबीर
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

डॉ. रमाकांत शर्मा
402-श्रीराम निवास,
टट्टा निवासी हाउसिंग सोसायटी,
पेस्तम सागर रोड नं. 3,
चेम्बूर, मुंबई- 400089
मोबाइल- 9833443274
ईमेल- rks.mun@gmail.com

अनीता सक्सेना
बी-143, न्यू मीनाल रेसीडेंसी
भोपाल- 462023, म.प्र.
मोबाइल - 9424402456
ईमेल- anuom2@gmail.com

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

ज़िंदगी के सफर की जानी-अनजानी परतें खोलता उपन्यास

डॉ. रमाकांत शर्मा

पंकज सुबीर का नया उपन्यास "रूदादे-सफ़र" उनकी बेटियों को समर्पित है। इस उपन्यास में जहाँ पिता और पुत्री के बीच के रिश्ते की आत्मीयता और परस्पर विश्वास को रेखांकित किया गया है, वहीं ज़िंदगी के सफर के तमाम आयामों की गहराई से पड़ताल भी की गई है। "बेटियाँ पिता की दिनचर्या में आदत की तरह घुली होती हैं। यह आदत पिता को सबसे ज़्यादा कष्ट देती है। कष्ट इसलिए कि कई बार पिता को पता ही नहीं चलता कि उसकी दिनचर्या को इतना सहज, सरल और आसान कौन बना रहा है। बेटी को लगता है उसके पिता के पास उसकी हर मुश्किल का हल है, बस इतना हो जाए कि वह अपनी बात कह सके अपने पिता से।" बात बहुत गूढ़ है, पर उसे कितनी सरलता से कहा गया है, "पिता और पुत्री के बीच के रिश्ते को शब्दों में ठीक उसी प्रकार नहीं बाँधा जा सकता जैसा यह होता है"।

"रूदादे-सफर" पिता-पुत्री के बीच के आत्मीय रिश्ते और परस्पर विश्वास का वृत्तांत भर नहीं है। यह ज़िंदगी के उस सफ़र की दास्तान है, जिसे सब अपनी तरह बिताना चाहते हैं, पर जिसका हर पल वक्त तय करता है। "दुनिया में हम सभी की ज़िंदगी की यही हक़ीक़त है कि हमारी रूदादे-सफ़र वही होती है जो वक़्त तय कर देता है, हमारे पहले से कुछ तय करने से कुछ नहीं होता। हम सबकी रूदादे-सफ़र अंतत: वक्त ही तय करता है।"

डॉ. अर्चना भार्गव मेडिकल कॉलेज में एनाटॉमी विभाग की अध्यक्ष हैं। इस विभाग में मानव अंगों के अध्ययन के लिए मृत शरीरों का दान यानी "देहदान" स्वीकार किया जाता है। स्टूडेंटों के लिए लाशों की चीड़फाड़ करना कोई आसान काम नहीं होता। हर साल किसी न किसी स्टूडेंट के बेहोश होने के मामले सामने आते-रहते हैं। लेकिन, बाद में यह उनके लिए रूटीन बनता जाता है। डॉ. अर्चना भार्गव और उसकी सहयोगी रेहाना के बीच के संवादों के ज़रिये यह प्रश्न भी उठाया गया है कि क्या मृत शरीरों के बीच रहते-रहते डॉक्टरों की संवेदनाएँ मर जाती हैं, "अप्पी आपको नहीं लगता कि यह एनाटॉमी विभाग है, यह हमें अंदर से बंजर और सूखा करने लगता है। हम दिन-रात लाशों के बीच, आर्गन्स के बीच रहते हैं और हमारे बीच फीलिंग्स कम होने लगती हैं या हमें साइकोलोजिस्ट प्रॉब्लम्स होने लगती हैं।"

मानव-शरीर की रचना के अध्ययन को केंद्र में रखकर रचा गया यह उपन्यास देहदान के प्रति जागरूकता लाने के साथ-साथ ज़िंदगी के महत्त्वपूर्ण अंगों पर गंभीर विचार-मंथन समाहित करता चलता है। इसके लिए सिनेमा के गीतों की पंक्तियों का बहुत सुंदर और संशलिष्ट उपयोग किया गया है। यह कहानी को आगे बढ़ाता है और गंभीर बात को सरलता से स्पष्ट करता चलता है। पिता-पुत्री के बीच संगीत का रिश्ता उनके रिश्ते की स्निग्धता को उभारने में सफल रहा है।

"रूदादे-सफ़र" ने ज़िंदगी के सफर के महत्त्वपूर्ण पड़ावों को छुआ है। इससे पाठकों को सोचने-समझने और उसे आत्मसात् करने के लिए भरपूर सामग्री उपलब्ध हुई है। एकाकीपन को लेकर क्या ख़ूब कहा है, "एकाकीपन अपने-आप में ही उदास और भूरे रंग का होता है, उस पर उसमें अगर अतीत के पन्नों से रिस-रिस कर आ रहा स्मृतियों का धूसर रंग भी मिला हो, तो यह उदासी बहुत बेचैन कर देने वाली होती है। ..... मन... कितने गह्वर हैं इसके अंदर... कितनी ख़लाएँ छिपी हैं इसके अंदर। जब तक हम ज़िंदा रहते हैं, तब तक विचारों के कितने सितारे टूट-टूट कर इन ख़लाओं में समाते रहते हैं।"

ज़िंदगी का सबसे सुहाना रंग प्रेम का रंग है। अगर यह ना होता तो ज़िंदगी बहुत फीकी रह जाती। पूरा संसार प्रेम की नींव पर खड़ा है। जहाँ प्रेम नहीं होता, वहाँ ज़िंदगी बेस्वादी हो जाती है और कोमल भावनाएँ फीकी पड़ जाती हैं। प्यार के दर्द में भी ऐसी मिठास होती है जिसे प्यार करने वाला ही समझ सकता है। लेकिन, अधूरे प्रेम का दर्द पूरी ज़िंदगी सालता है। उपन्यास में डॉ. अर्चना भार्गव की अधूरी प्रेम कहानी में इस सत्य को सलीक़े से उभारा गया है कि आजकल कॅरियर और प्रेम एक साथ दस्तक देते हैं और उनमें से अकसर कॅरियर को ही चुना जाता है। जो प्रेम कभी भी किसी से भी हो सकता है, उसके बारे में यह सोचना कितना हास्यास्पद हो जाता है कि प्रेम तो बाद में भी किया जा सकता है, कॅरियर बन जाने के बाद। क्या प्रेम सचमुच ध्यान भंग करता है? "नहीं, प्रेम तो ध्यान बढ़ाता है, अगर प्रेम सचमुच का प्रेम हो।"

कभी-कभी ज़िंदगी में बिना बात अनजाना भय सताने लगता है, जिससे मन क्लांत हो जाता है और ज़िंदगी बेकार लगने लगती है। ऐसी स्थिति कमोवेश हरेक के जीवन में आती है। इससे बाहर निकलने का क्या कोई तरीका हो सकता है? यह उपन्यास पुत्री डॉ. अर्चना भार्गव की ऐसी ही मन:स्थिति में पिता डॉ. राम भार्गव के जरिए जो कुछ कहलवाता है, वह पाठक को काफी हद तक एक युक्ति-युक्त उत्तर दे जाता है, "ज़िंदगी को बहुत ज़ोर से मत पकड़ बेटा, ज़िंदगी मछली की तरह होती है, ज़्यादा ज़ोर से पकड़ने में हाथों से फिसलने लगती है। ज़िंदगी पर पकड़ ना ज़्यादा ज़ोर से होनी चाहिए ना ढीली..... उन बातों की चिंता करना सही नहीं है जो अभी हुई ही नहीं हैं।" सच में, हम बेकार की आशंकाओं से ज़्यादा भयभीत होते हैं। अकसर हमारे ख्वाहमख्वाह के विचार और अंदेशे ही हमें डराते हैं। हम वास्तविकता से नहीं, अपनी सोच से डरते हैं। "अकसर यह होता है कि हम किसी बात को लेकर डरते रहते हैं और अंत में पता चलता है कि वैसा तो हुआ ही नहीं।" अगर हम इस कथन की गहराई में जाएँगे तो इस बात से इनकार नहीं कर पाएँगे कि सचमुच इस चक्कर में हम अपनी ज़िंदगी को अकारण ही अजाब बना लेते हैं।

इस उपन्यास में ज़िंदगी को लेकर बहुत गहरी बातें कही गई हैं, "ज़िंदगी हमें रुकने के लिए हाथ देती रह जाती है और हम पैसा कमाने की धुन में दौड़ते रहते हैं। दौड़ते रहते हैं प्रेम, संगीत, गीत, कविता, किताबों, कहानियों, फिल्मों, यात्राओं, मूर्तियों, चित्रों को अनदेखा करते हुए। फिर, एक दिन थक कर गिर जाते हैं, मर जाते हैं।"

ज़िंदगी में ऐसे क्षण आते हैं जब व्यक्ति असहाय महसूस करने लगता है। ऐसे समय सब तरफ से निराश मन में चाहे-अनचाहे चमत्कार की आशा पनपने लगती है। माँ के जाने के समय ड़ाक्टर होने के बावजूद पुत्री ही नहीं, पिता भी सबकुछ जानते-समझते हुए अपनी अच्छाइयों के बल पर किसी चमत्कार की आशा करने लगते हैं। "जब किसी का जाना तय हो चुका हो तो तब उससे जुड़े लोग ख़ुद को कितना असहाय महसूस करते हैं।" कौन होगा जो इस तरह की स्थिति से नहीं गुज़रा होगा। ऐसे प्रसंग पाठक को लेखक की कलम से जोड़ते हैं। अपने प्रिय से हमेशा के लिए बिछुड़ने का दंश मर्मांतक पीड़ा देता है। जो चला गया उसे कभी ना देख पाने का अहसास झेलना आसान बात नहीं है। देहदान किए पिता के शरीर को देखने की संभावना और मंशा लिए अस्पताल में आई पुत्री की मानसिक स्थिति और व्यथा का इस उपन्यास में बहुत मार्मिक चित्रण हुआ है।

डॉक्टरों द्वारा मरीज़ों की लूट की स्थिति को भी इस उपन्यास में पुरज़ोर तरीके से उठाया गया है। ड्राइंग रूम में डॉ. राम भार्गव के साथ बैठे दो लोगों में से जब एक ने कहा, "दवा तो आप लिख ही रहे हैं, हमारा कहना है कि आप हमारी कंपनी की दवा लिखना शुरू कर दें" तो उनका जवाब था, "आपकी दवा की कीमत उस दवा से ढाई गुना है, जिस दवा को मैं लिख रहा हूँ।" सेल पर पच्चीस परसेंट का कमीशन भी उनके ईमान को नहीं डिगा पाता। वे कहते हैं, "मैं अपने मरीजों को लूटने वालों से कमीशन लेकर, अपना घर भरता रहूँ? आप मुझे डॉक्टर से दलाल बनाना चाहते हैं?" काश, मरीज़ों की सेवा की शपथ लेकर डॉक्टर बनने वाले इस बात के मर्म को समझ पाते।

राजनीति में अच्छे लोगों के अभाव पर भी इस उपन्यास में गहरी टिप्पणी की गई है, "हमने इस दुनिया को यूँ ही तो ख़राब कर दिया है, हर जगह से हम लोग कुर्सियाँ छोड़कर हटते गए। राजनीति में पहले अच्छे लोग होते थे, फिर जब ग़लत लोगों ने आना शुरू किया, तो अच्छे लोग कुर्सियाँ छोड़कर हटते गए और अब कहते हैं कि राजनीति में तो अच्छे लोगों के लिए जगह ही नहीं है...बदलने के लिए उपस्थित रहना सबसे आवश्यक है, पलायन किसी समस्या का हल नहीं है।"

जीवन के सफ़र की हक़ीक़त बयान करते इस गंभीर, लेकिन रोचक उपन्यास की भाषा-शैली विषय-वस्तु के अनुरूप है। निश्चित ही, इस विषय पर लिखने से पहले लेखक ने मनोयोग से रिसर्च की है। विषय से संबंधित गहन जानकारी और तकनीकी शब्दावली का भरपूर प्रयोग इस बात की पुष्टि भी करता है। पर, आंग्ल भाषा के भारी-भरकम तकनीकी शब्दों की बहुलता और उनकी बारंबारता सामान्य पाठक की लय और पठनीयता को कहीं ना कहीं प्रभावित अवश्य करती है।

देहदान जैसे लगभग अछूते विषय को उठा कर यह उपन्यास मानवीय संवेदनाओं को झकझोरने के अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल हुआ है। इस उपन्यास की सफलता इस बात से भी आँकी जाएगी कि इसने जीवन के सफ़र के विभिन्न पड़ावों को सिर्फ छुआ ही नहीं है, उन्हें जानने और समझने का गंभीर प्रयास भी किया है। उपन्यास पढ़ते हुए पाठक विषय की गहराइयों में खो सा जाता है और यह महसूस करता है कि ज़िंदगी के सफ़र की जानी-अनजानी परतें उसके सामने खुलती जा रही हैं। उपन्यास का अंत अचानक हुआ सा लगता है, पर बहुत कुछ ऐसा कह जाता है, जिसे जानते-समझते हुए भी हम ज़िंदगी भर अनजान बने रहते हैं।

इस अलग मिजाज के सशक्त लेखन के लिए पंकज सुबीर को दिल से बधाई।

000

अतीत और वर्तमान की कहानी

अनीता सक्सेना

शुरू से पढ़ती आई हूँ और सुनती भी कि ज़िन्दगी में हमेशा दो लोगों पर भरोसा रखो, 'एक ईश्वर और दूसरा आपका डॉक्टर'। हर तकलीफ में ईश्वर से हम प्रार्थना करते हैं और डॉक्टर साक्षात् ईश्वर समान हमारे सामने होता है।

आपकी हर बीमारी और हर दर्द का इलाज़ डॉक्टर के पास होता है। डॉक्टर भी एक इंसान ही होता है और एक इंसान डॉक्टर बनता कैसे है, इसकी कहानी जाननी है तो 'रूदादे-सफ़र' को पढ़ना होगा।

डॉक्टर बनने के लिए सबसे पहले उसे मुर्दा इंसानों की चीर-फाड़ करनी पड़ती है, जिससे वह इंसानी शरीर को जान सके। लेकिन आख़िरकार वह है तो इंसान ही, उसके सीने में भी दिल धडकता है। वह खून से अपने हाथ ज़रूर रंगता है लेकिन इन खून भरे हाथों में ही ज़िन्दगी की नन्हीं कली खिलती है। जिसकी किलकारियाँ एक परिवार में खुशियाँ भरती हैं, समाज का निर्माण करती हैं। डॉक्टर बनने के सफ़र में वह कितनी कठिनाइयों का सामना करता है, कितने परिश्रम से अपने इम्तिहानों को पास करता चलता है, इसके बारे में आपको यदि जानना हो, तो पंकज सुबीर के इस नए उपन्यास 'रूदादे-सफ़र' को पढ़ना होगा।

डॉक्टर बनना एक जज़्बा है, साहस है, समर्पण है, धैर्य है और सबसे बड़ी मन की भावना है कि भले ही हम चले जाएँ लेकिन हर उस इंसान को हमने बचाना है जो घायल है, जो बीमार है और जो तकलीफ़ में है। पंकज सुबीर ने इसी डॉक्टर को 'रूदादे-सफ़र' के केंद्र में रखकर उसके जीवन को जीया है। इस सफ़र में बाप और बेटी हैं, माँ और बेटी है, डॉक्टर और उसकी असिस्टेंट है, भविष्य के चिकित्सक बनने वाले बच्चे हैं और सब ज़िन्दगी को एक ही नज़रिये से देख रहे हैं, सबका कर्त्तव्य एक ही है और वह है मानव सेवा।

यूँ तो एक डॉक्टर अपनी पढ़ाई की शुरुआत प्रतियोगी परीक्षा पास करके ही करता है लेकिन मेडिकल कॉलेज में आकर जब वह पहली बार एनाटॉमी डिपार्टमेंट में जाकर उस शरीर को देखता है, जो बिल्कुल उसके जैसा ही है और जिसे काट-पीट कर उसे मानव शरीर के भीतर की संरचना को पहचानना है, तो उसके अन्दर जो उथल-पुथल मचती है, अंदर से उबकाइयाँ आने लगाती हैं, उसे पंकज सुबीर ने बड़ी जीवन्तता से दर्शाया है।

अधिकतर लोग डॉक्टर को बेरहम कह देते हैं, यह भी कह देते हैं कि उनके सीने में तो दिल है ही नहीं, पर क्या सच में इंसानों के शरीर को चीरते और उनको सिलते हुए, खून से लथपथ शरीरों को साफ़ करके उनके अन्दर दवा के इंजेक्शन देते हुए डॉक्टर भाव शून्य हो जाते हैं?

यह सच नहीं है, एक डॉक्टर के अंदर धड़कने वाला दिल लोगों की भलाई ही चाहता है, डॉक्टर आने वाली पीढ़ी को शिक्षा भी देते हैं और यह भी सिखाते हैं कि समाज और राजनीति के आरोप-प्रत्यारोपण को झेलते हुए, मानव की ज़िन्दगी को कैसे बचाया जा सकता है। अपनी सहनशक्ति को कैसे बढ़ाया जा सकता है कि दिन भर फॉर्मिलिन की बदबू को सहन करते हुए, मुर्दा शरीरों के बीच रहते हुए, स्वयं की परेशानियों को भूलकर दूसरों को जीवन देकर, कैसे अपनी ज़िन्दगी को जीया जा सकता है।

पुस्तक की एक ख़ास बात है कि पूरी कहानी फ़िल्मी गानों के साथ आगे बढ़ती है, गाने जो पुराने हैं लेकिन दिल को छूते हैं और उस समय को जीते हैं, जिसे लेखक पाठक के सामने ला रहा है। पिता-पुत्री के बीच वायलिन पर बजता 'इक प्यार का नग़मा है मौजों की रवानी है' गीत पाठक के सामने एक दृश्य उत्पन्न करता है, जिसमें वह स्वयं को भी सुनता हुआ पाता है। ये गाने कहानी को नीरस होने से बचाते भी हैं और मन की भावनाओं को व्यक्त भी करते हैं। इनमें प्यार है लेकिन किरदार अलग-अलग हैं। पिता-पुत्री हैं, दो प्रेमी हैं, गुरु और शिष्य भी हैं साथ ही है नीरव शाम और लताओं से घिरी छत, जहाँ डॉ. अर्चना खड़ी होकर अपने अतीत में झाँक रही है।

अतीत और वर्तमान की कहानी है 'रूदादे-सफ़र'। जिसे पढ़ते हुए पाठक पहले पिता और पुत्री के भावुक रिश्ते और भावुक संबंधों को जानता हुआ आगे बढ़ता है, साथ में माँ भी है लेकिन वह जीवन जीने के लिए इन दोनों से एक अलग दृष्टिकोण रखती है। पुस्तक के अंत में यही माँ पाठक की आँखों में आँसू ले आती है, जब वह पुत्री अर्चना से कहती है 'अब पापा का तुझे बहुत ख्याल रखना है बेटे, अभी तक तो मैं उनसे लडती रही, झगड़ती रही पर अब कोई नहीं होगा जो उनकी दुनिया और असली दुनिया के बीच पुल बन सके।'

रिश्तों के इन ख़ूबसूरत और भावपूर्ण पुलों की कहानी है इस उपन्यास में। उपन्यास का अंत झकझोर देने वाला है। पाठक उसकी कल्पना तक नहीं कर सकता और देर तक सोचता रह जाता है। अंत क्या है इसके लिए पुस्तक को पढ़ना होगा।

बहुत बढ़िया उपन्यास है 'रूदादे-सफ़र'। कथानक एकदम नवीन है, घटनाएँ उपन्यास की गति को आगे बढ़ाती हैं और रोचकता बनाये रखती हैं। नए और पुराने भोपाल के बारे में भी बढ़िया जानकारी मिलती है, गांधी मेडिकल कॉलेज के दधीचि मार्ग के बारे में पढ़कर बहुत ख़ुशी हुई क्यूँकि मैं और मेरे पतिदेव जो कि डॉक्टर हैं और उन्होंने गाँधी मेडिकल कॉलेज से ही एम. एस. सर्जरी किया है, हम दोनों ही सन् दो हजार ग्यारह में देहदान का फॉर्म भरकर वहाँ जमा कर चुके हैं। विश्वास है एक दिन हम भी कैडेवर बन कर किसी स्टूडेंट की एनाटॉमी की पढ़ाई के काम आयेंगे।

पंकज सुबीर को इस ख़ूबसूरत उपन्यास के जरिये लोगों को देहदान के लिए प्रेरित करने और मेडिकल की कठिन पढ़ाई का एक भाग एनाटॉमी से परिचय करने के लिए बहुत-बहुत बधाइयाँ और शुभकामनाएँ देती हूँ। मुझे विश्वास है आपकी कलम यूँ ही सतत चलती रहेगी और इसी प्रकार समाज में चेतना जगाती रहेगी।

000

रोचक व संवेदनशील उपन्यास

दीपक गिरकर

रूदादे-सफ़र पंकज सुबीर का चौथा उपन्यास है और इन दिनों काफी चर्चा में है। पंकज सुबीर के लेखन का सफ़र बहुत लंबा है। वे अपने अनुभवों और संवेदनाओं को कथा एवं पात्रों में पिरोकर अभिव्यक्त करते हैं। वे अपने कथा साहित्य में मानवीय मूल्यों को केंद्र में रखकर सृजन करते हैं। पंकज सुबीर की लेखनी में सहजता, जीवन का स्पंदन, आत्मिक संवेदनशीलता प्रतिबिंबित होती है। पंकज सुबीर के कथा साहित्य में भारतीय संस्कृति की सौंधी महक है। पंकज सुबीर ने इस उपन्यास में पिता-पुत्री के निश्छल रिश्ते, प्रेम और भावनाओं को यथार्थ की कलम से उकेरा हैं। कथाकार ने बड़ी कुशलता से डॉक्टर अर्चना, डॉक्टर राम भार्गव और पुष्पा भार्गव की भावनाओं के उफान का सृजन इस उपन्यास में किया हैं। वे अपने कथा साहित्य के द्वारा भारतीय मूल्यों को पुर्नस्थापित करते हैं। पंकज सुबीर के कथा साहित्य में रोचकता तथा सकारात्मकता पाठकों को आकर्षित करती है। लेखक ने सभी किरदारों के विभिन्न भावों को मार्मिकता, सहजता और सकारात्मक रूप से अपने कथा साहित्य में अभिव्यक्त किया हैं।

इस उपन्यास की कथा बहुत ही रोचक व संवेदनशील है। देहदान विषय को लेकर सघन संवेदना के साथ इस उपन्यास का ताना-बाना बुना गया है। इस उपन्यास में नयापन के साथ अनुभूतियों की सच्चाई है। लेखक इस उपन्यास में एक बिल्कुल नए कथानक से परिचय कराते हैं। कथाकार ने इस उपन्यास को इतने बेहतरीन तरीके से लिखा है कि गांधी मेडिकल कॉलेज भोपाल का एनाटॉमी विभाग व डिसेक्शन-रूम, भोपाल की ईदगाह हिल्स, कोहेफिज़ा और पुराने भोपाल शहर का जीवन्त चल चित्र पाठक के सामने चलता है। इस उपन्यास को पढ़ने वाले की उत्सुकता बराबर बनी रहती है वह चाहकर भी उपन्यास को बीच में नहीं छोड़ सकता। उपन्यास की कहानी में प्रवाह है, अंत तक रोचकता बनी रहती है।

उपन्यास का कथानक इस तरह का है कि यह डॉक्टर राम भार्गव और अर्चना की जीवन गाथा है। डॉक्टर राम भार्गव में अपने पेशे के प्रति ईमानदारी, समर्पण एवं जूनून था। डॉक्टर राम भार्गव भोपाल के शासकीय जयप्रकाश अस्पताल में ईएनटी डॉक्टर हैं। वे दूसरे डॉक्टर्स के समान प्राइवेट प्रैक्टिस नहीं करते हैं और न ही दवाई कंपनियों से कमीशन लेते हैं। वे सिर्फ वेतन से ही अपने परिवार का गुज़ारा करते हैं। डॉक्टर राम भार्गव की पत्नी पुष्पा भार्गव इसी बात को लेकर अपने पति से झगड़ा करती रहती है। डॉक्टर राम भार्गव और पुष्पा भार्गव की एक ही बेटी है जिसका नाम अर्चना है। जैसा की आम तौर पर होता है कि बिटिया की अपने पिताजी से अच्छी पटती है। इस उपन्यास की कथा में भी डॉक्टर राम भार्गव जिन विधाओं में रूचि रखते हैं अर्चना भी उन्हीं विधाओं में रुचि रख रही हैं। दोनों को ही ग़ज़ल और संगीत सुनने में रुचि है। दोनों अक्सर रविंद्र भवन में हस्त-शिल्प की प्रदर्शनी देखने जाते हैं। अर्चना भी एमबीबीएस करना चाहती है और वह भोपाल के गांधी मेडिकल कॉलेज से ही एमबीबीएस करना चाहती है लेकिन उसे रायपुर का मेडिकल कॉलेज मिलता है। वह रायपुर के मेडिकल कॉलेज से एमबीबीएस करती है और वह एनॉटोमी में एमएस भी रायपुर के मेडिकल कॉलेज से ही करती है। जब अर्चना रायपुर मेडिकल कॉलेज में पढ़ रही थी तब उसे एक विद्यार्थी शेखर से प्रेम हो जाता है लेकिन शेखर बहुत अधिक कॅरियर कॉन्ससियस है। शेखर पीजी करने के लिए दिल्ली चला जाता है और वहाँ से अमेरिका चला जाता है। डॉक्टर अर्चना की पोस्टिंग भोपाल के गांधी मेडिकल कॉलेज के एनाटॉमी विभाग में ही हो जाती है। एनाटॉमी विभाग में एक डिसेक्शन रूम रहता है जहाँ एमबीबीएस प्रथम वर्ष के विद्यार्थी कैडेवर (मुर्दे के शरीर) की चीड़फाड़ करके मानव अंगों का अध्ययन करते हैं। एनाटॉमी विभाग को आसानी से मृत शरीर नहीं मिलते हैं और विद्यार्थियों की संख्या के हिसाब से हमेशा मृत शरीर की कमी बनी रहती है। देहदान के घोषणा पत्र तो काफ़ी लोग भर देते हैं लेकिन जब देहदान की बारी आती है तब परिवार के लोग धार्मिक संस्कार पूरा करने के लिए देहदान नहीं करते हैं। मृत्यु के पश्चात देहदान की पूरी प्रक्रिया मेडिकल कॉलेज के एनाटॉमी विभाग में ही होती है। भोपाल के मेडिकल कॉलेज में एनाटॉमी विभाग की प्रमुख डॉक्टर अर्चना ही देहदान करवाती है। एक दिन भोपाल कलेक्टर प्रवीण गर्ग के पिताजी का शरीर देहदान के लिए मेडिकल कॉलेज आता है। प्रवीण गर्ग बहुत ही विनम्र व्यक्ति है। कुछ दिनों पश्चात प्रवीण गर्ग डॉक्टर अर्चना से मिलते हैं और अधिक से अधिक देहदान हो इसके लिए विचार-विमर्श करते हैं। प्रवीण गर्ग देहदान को एक मिशन के रूप में चलाते हैं और अधिक से अधिक देहदान के घोषणा पत्र भरवाते हैं। कथा का अंत क्या होता है यह जानने के लिए आपको उपन्यास पूरा पढ़ना होगा क्योंकि अंत ही इस उपन्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा है।

कथाकार ने उपन्यास का क्लाइमेक्स भी बहुत ही उत्कृष्ट बुना है जो हमें डॉक्टर राम भार्गव के मनोजगत् को समझने में सहायता पहुँचाता है। इस कृति में पंकज सुबीर ने मेडिकल कॉलेज भोपाल के एनाटॉमी विभाग के माध्यम से देहदान की पूरी प्रक्रिया को बड़ी सूक्ष्मता से चित्रित किया है। डॉक्टर राम भार्गव और डॉक्टर अर्चना का व्यक्तित्व कमाल का है। कथाकार ने डॉक्टर राम भार्गव और डॉक्टर अर्चना के अदम्य जिजीविषा तथा असीम सहन शक्ति का अंकन किया है। कथाकार ने पात्रों का चरित्रांकन स्वाभाविक रूप से किया है। कथाकार ने किरदारों को पूर्ण स्वतंत्रता दी है। जीवन के गहरे मनोभावों को लेखक ने पात्रों के माध्यम से अधिकाधिक रूप से व्यक्त किया है। कथाकार ने इस उपन्यास को बहुत गंभीर अध्ययन और शोध के पश्चात लिखा है। उपन्यास का केंद्रीय भाव अत्यंत प्रभावशाली, प्रेरक और सकारात्मक है। उपन्यास बेहद रोचक, पठनीय और ख़ूबसूरत है, इसके लिए पंकज सुबीर बधाई के पात्र है।

000

पुस्तक समीक्षा

(पत्र संग्रह)

आधी सदी का सफ़रनामा

समीक्षक : डॉ. मलय पानेरी
लेखक : कमर मेवाड़ी
प्रकाशक : श्री साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली

डॉ. मलय पानेरी
आचार्य एवं विभागाध्यक्ष
जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ
(डीम्ड टू बी विश्वविद्यालय), प्रताप नगर
उदयपुर- 313001, राजस्थान
मोबाइल- 9413263428

हिन्दी की कथेतर विधाओं में पत्र-लेखन का भी महत्त्वपूर्ण स्थान स्वीकारा गया है। यों साधारण तौर पर पत्र-लेखन मनुश्य के सामाजिक जीवन का हिस्सा भी रहे हैं। पत्र-लेखक अपने पत्रों के माध्यम से बहुत कुछ कह देते हैं। इतिहास इसका साक्षी भी है। हमारे देश में स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान और उससे पूर्व भी संघर्षरत नायकों द्वारा लिखे गए पत्र उस समय के इतिहास की अमूल्य धरोहर बन गए। पत्रों की ख़ास बात यह भी कि उनमें सिर्फ समय ही नहीं बोलता है बल्कि एक-एक दिन बोलता है। समय पर गंतव्य तक पहुँचे पत्रों ने इतिहास बदला है एवं कभी-कभी पहुँच से पहले पकड़ाए पत्रों ने बदलते इतिहास को रोका भी है। पत्रों की इतनी अहम भूमिका रही है।

साहित्य में बड़े-बड़े रचनाकारों के आपसी पत्र व्यवहार मन की भड़ास शांत करने के साथ ही साहित्य की प्रगति में बहुत सहायक सिद्ध हुए हैं। किसी भी रूप में पत्र आपसदारी के प्रामाणिक दस्तावेज़ भी रहे हैं। पाश्चात्य विचारकों ने साहित्य के क्षेत्र में पत्रों का महत्त्व स्वीकार किया है। इसकी पुष्टि के लिए डॉ. जॉनसन का उल्लेख करना चाहूँगा, उन्होंने अपनी शिष्या को लिखा था "पत्र लेखक के हृदय का दर्पण होते हैं।" इसका प्रसंग हो सकता है कुछ अलग भी हो, किंतु निस्संदेह पत्रों के महत्त्व को रेखांकित तो करता ही है। इसी तरह कभी रिचड्र्स ने लिखा था कि "पत्र, पत्र-लेखक के जीवन का अध्ययन करने में प्रामाणिक आधार होते हैं।" लेकिन यह भी तभी संभव है जब उनमें लेखक ने अपनी नैतिक ईमानदारी का निर्वाह किया हो। इसलिए पत्र-लेखन में हम जॉनसन के विचार से अलग नहीं हो सकते है। पत्र-लेखन एक ऐसी कला है जो एकांत में ही क्रियाशील होती है। पत्र-लेखन में शब्द चयन का भी विशेश महत्त्व है, इसी से मन के भाव सटीक रूप से सामने आते हैं। लिखने वाले के सामने प्राप्तकर्ता की अमूर्त उपस्थिति

अवश्य रहती है, तभी वह एक-एक शब्द को भाव के वजन के हिसाब से चुनता है। बहरहाल! साहित्य में रचनाकारों ने विधाधर्मिता को ख़ूब विकसित किया है। कभी-कभी नई पहल को प्रोत्साहन के लिए भी रचनाकारों ने पत्र-लेखन को माध्यम बनाया।

अभी-अभी अर्थात् सन् 2022 के अंतिम माह में श्री क़मर मेवाड़ी संपादित "आधी सदी का सफरनामा" पुस्तक श्री साहित्य प्रकाशन, दिल्ली से छपी है। यह पुस्तक "संबोधन" पत्रिका को लिखे पत्रों का संकलन है। राजस्थान के छोटे से क़स्बे काँकरोली से श्री क़मर मेवाड़ी ने इस पत्रिका का प्रकाशन जुलाई 1966 से शुरू किया था। यह समय एक ऐसा समय था जब हिन्दी में साहित्यिक पत्रिकाएँ बहुत कम निकलती थीं। देश की हिन्दी पट्टी के चुनिंदा कुछ बड़े शहरों से सेठाश्रित पत्रिकाएँ पूरे शोर से निकलती थीं और उन्हीं का बोलबाला भी था। ऐसे कठिन समय में पत्रिका निकालने की सोचना भी बहुत मुश्किल होता था, फिर भी पता नहीं क्यूं क़मर मेवाड़ी जी ने यह जोखिम उठाने की पहल कीं। फिर काँकरोली की निजी पहचान द्वारकाधीश मंदिर के अलावा कुछ नहीं। आज की तरह मार्बल मंडी भी तब यह नहीं था। उदयपुर जिले के दो दूरस्थ क़स्बे नाथद्वारा और काँकरोली की पहचान यहाँ स्थित देवालय मात्र थे, न साहित्यिक माहौल, न गतिविधियाँ। फिर भी क़मर मेवाड़ी ने "संबोधन" निकालने के लिए कमर कसी। तब विज्ञापन- संस्कृति भी इतनी नहीं थीं। साहित्यिक पत्रिकाओं के लिए सामग्री जुटाना फिर भी आसान था किंतु विज्ञापन जुटाना बहुत मुश्किल था। आरंभ के धनाभाव और बाद में लगातार बने रहने वाले आर्थिक अभावों की चिंता किये बगैर कमर मेवाड़ी ने विचार-सक्रियता के लिए "संबोधन" की "सिजेरियन डिलीवरी" कराई। मातृत्व सुख का जो अनुभव किसी नवप्रसूता को होता है शायद क़मर मेवाड़ी जी को भी "संबोधन" के प्रवेशांक पर ऐसी ही प्रसन्नता हुई होगी।

लगातार पचास वर्षों तक "संबोधन" लघुपत्रिकाओं में विशेश आदर प्राप्त पत्रिका रही। आरंभ के कुछ वर्षों बाद यह स्थिति बन सकी कि जो क़मर मेवाड़ी जी को जानता वह "संबोधन" को भी जानता था और जो "संबोधन" का जानते वह क़मर मेवाड़ी जी को भी जानते थे। लगभग एकाध दशक में ही यह हो गया कि "कमर मेवाड़ी" और "संबोधन" एक दूसरे के पूरक हो गए। धीरे-धीरे यह हो गया कि "संबोधन" में छपी सामग्री हिन्दी के पाठकों की रुचि बनने लगीं। "संबोधन" का क़द धीरे-धीरे बढ़ने लगा, जिसकी तत्काल उम्मीद क़मर जी को भी नहीं थीं। किसी पत्रिका को चला पाने के उत्साह के पीछै उतने ही गहरे संशय भी मँडराते रहते हैं। निस्संदेह क़मर जी इन संशयों से मुक्त नहीं रहे होंगे किंतु चला पाने के अपार उत्साह में उनके लिए उस समय के प्रसिद्ध लेखकों के पत्रों ने अवश्य साहस पैदा किया होगा।

इस पुस्तक के आरंभ में उन्होंने हालावाद के प्रवर्तक कवि डॉ. हरिवंश राय बच्चन का पत्रोल्लेख किया है, जो संबोधन के प्रवेशांक का साक्षी बना। इस दो वाक्य के पत्र ने संबोधन के अवतरण को बहुत उर्जा दी होगी। क्योंकि यहाँ बात पत्र-प्रारूप की नहीं रह जाती है, बल्कि संपादक के नैतिक साहस को बनाये रखने की हो जाती है। एक वाक्य में लिखे नारे को जनता सदियों तक याद रखते हुए प्रेरणा ग्रहण करती है। सबसे बड़ी बात यह कि हिन्दी जगत् के चर्चित रचनाकारों ने क़मर मेवाड़ी जी को साहित्यिक पत्रिका निकालने के लिए पुरअसर शुभकामनाएँ दीं। प्रवेशांक पर ही "संबोधन" को बच्चन जी के अलावा श्याम व्यास, दिल्ली से अजित कुमार, बीकानेर से हरीश भादानी और खण्डवा से श्रीकान्त जोशी के परामर्शपरक पत्रों ने इस जगत् में साहस के साथ आगे बढ़ने की सीख दी, जो इसके लिए उर्जा का स्रोत बन सके।

"संबोधन" का स्वरूप उसके आरंभ से ही त्रैमासिक ही रहा है। भायद यह इसलिए हुआ होगा कि एक तो सामग्री के चयन और संपादन में लगने वाला समय और श्रम तथा खर्च होने वाले धन सभी की बचत की योजना.... इसी तरकीब से "संबोधन" के कदम कभी लड़खड़ाए नहीं..... निरंतर चलायमान रहे। ये संपादक की योजना थीं, चालाकी नहीं। "संबोधन" के स्वस्थ और लंबे जीवन का यह मंत्र ही कहा जाना चाहिए, अन्यथा उस दौर में धनाभाव के कारण कई पत्रिकाओं के असामयिक अवसान भी हमने देखें हैं।

क़मर मेवाड़ी जी ने अपनी पत्रिका को बनते स्तर से कभी भी नीचे नहीं खिसकने दिया। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि "संबोधन" के आरंभ के मात्र एक साल में ही ढेरों पत्र प्रतिक्रिया स्वरूप मिलने लगे, जिन्हें क़मरजी ने कभी छापने में कोताही नहीं की। किसी पत्रिका के लिए यह प्रतिश्ठा ही है कि उसे अधिसंख्य पाठक पढ़ें और सामग्री पर बहस-रपट आदि करें। क़मर जी ने बतौर संपादक "संबोधन" को उसमें छपी सामग्री पर सहमतियों/ असहमतियों के प्रकाशन से एक नई पहचान दी है। इस तरह संबोधन ने अपनी नई-नई शुरूआत की सार्थकता सिद्ध करते हुए अपनी यात्रा को सदैव विशेष बनाने के प्रयास जारी रखे। इस पुस्तक में पत्रों को बढ़ते कालक्रम में छापते हुए संपादक ने पाठकों को "संबोधन" की उपस्थिति एवं निरंतर बढ़ती सक्रियता को दर्शाया है। सुखद आश्चर्य होता है जब कोई पत्रिका अपने भविष्य की परवाह किये बगैर बहस-तलब मुद्दों पर विद्वानों की मत-भिन्नता को बराबर सम्मान दें। यह एक स्वस्थ लोकतंत्र की बुनियादी आवश्यकता भी है, इसी के जरिये मनुष्य में विचार-विमर्श की प्रक्रिया बनती है। संबोधन को लगातार ऐसे कई पत्र मिलते रहे जो उस समय की वैचारिकी की दृश्टि से महत्त्वपूर्ण थे, रचनाकारों की आपसी समझ और अन्तर को रेखांकित करता राजस्थान ही नहीं बल्कि देश के मूर्धन्य आलोचक प्रो. नवल किशोर का वह पत्र जो इस पत्रिका के माध्यम से अन्य पत्रिकाओं पर विशेश टिप्पणी के संदर्भ में था।

एक संपादक को वास्तव में कुछ हद तक निर्मम भी होना चाहिए, इससे सामग्री-चयन में और किसी तरह के परिचयवाद से दूरी बना लेने में कुछ आसानी हो जाती है, किंतु क़मर जी ने ऐसा कुछ नहीं किया। "संबोधन" को

खरी-खोटी लिखने वालों को भी कमर जी ने पूरे सम्मान से छापा और अपनी पत्रिका की विशिष्टता बनाए रखी। उदाहरण के तौर पर चित्तौड़ से दुर्गाप्रसाद का लिखा पत्र देखा जा सकता है। लगभग चेतावनी देते पत्र भी बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं, इसलिए उन्हें भलावण के रूप में लेना हितकारी होता है। लगभग इसी आशय के साथ लिखा भारत यायावर का पत्र भी पठनीय है। रचनाकार और आलोचक के मन्तव्यांतर की मूल स्थिति को समझने के लिए पत्र की क्या भूमिका होनी चाहिए, इसके लिए उदयपुर से ख्यात कवि, समाजवादी चिंतक प्रो. नंद चतुर्वेदी के पत्र जो समय-समय पर संबोधन में एवं अन्स अनेक पत्रिकाओं में छपते रहे हैं; उन्हें पढ़कर हम हाल-ए-साहित्य की दुनिया को देख सकते हैं। "संबोधन" ने पाठकीय प्रतिक्रियाओं का सदैव स्वागत किया है। इसलिए हम पाते हैं कि किसी अवसर-विशेष अथवा मुद्दा-विशेष पर निकाले गए अंकों पर रचनाकारों और पाठक- संस्कृति के लोगों की व्यापक प्रतिक्रियाएँ मिलती रही हैं। यदि पाठक निरंतर अपनी सहमतियों/ असहमतियों को भी चर्चा के केन्द्र में ले आने को आतुर होते हैं तो इसका सीधा अर्थ पाठकीय चेतना का विस्तार है। इसमें संबोधन की भूमिका प्रशंसनीय है। एक संपादक के नाते क़मर मेवाड़ी जी ने पत्रिका को मजबूत बनाने के लिए रचनाकारों एवं पाठकों की ओर से प्राप्त आरोप-प्रत्यारोपों को संबंधित विषय को अधिक खोलने के लिए निरंतर स्थान दिया है। यह ठीक भी है कि कहीं कोई सामयिक मुद्दा समझ की विसंगति के कारण पाठक-समुदाय में भ्रान्तियाँ न बना दे एवं उनके मूल में स्थित सच्चाई से पाठक जन अपरिचित न रह जाएँ - बस इतना कर लेना पर्याप्त होगा। बेवजह के विवाद से संपादक इसी तरह हमें मुक्त कर सकता है। इस अनुग्र कला की बानगी के रूप में हम रमेश उपाध्याय और रघुनंदन त्रिवेदी के परस्पर पत्रोत्तर को देख सकते हैं। दोनों ही समकालीन हिन्दी कहानीकार हैं- सो इनकी शाब्दिक-लिखित अभिव्यक्ति के विशेष मायने हैं। इसीलिए रघुनंदन त्रिवेदी के किसी कथा-संग्रह पर रमेश उपाध्याय की तल्ख किंतु प्रिय टिप्पणी पाठकों को अच्छी लगती है, साथ ही रघुनंदन त्रिवेदी का पुन: तर्कपूर्ण खुलासा करना और भी अच्छा लगता है। पाठक की जिज्ञासा निरंतर इसलिए बढ़ती है कि वास्तव में किसी रचना के संबंध में दो रचनाकारों की मतभिन्नता का मूल क्या है! ऐसी स्वस्थ विमर्श-परंपरा पाठक एवं लेखक समुदायों में कम पड़ती जा रही है, जबकि इसकी आज अधिक आवश्यकता है। ये संभले-छपे पत्र कमर जी के सक्रिय प्रयास को दर्शाते हैं।

इस पूरी पुस्तक में क़मर जी ने कुछ नियमित पाठकों-लेखकों के पत्र कई एक बार छापे हैं, जिनमें माधव नागदा, नंद चतुर्वेदी, डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय, डॉ. महेन्द्र भाणावत, डॉ. जीवनसिंह, भारत यायावर आदि हैं। ऐसे और भी कई नाम हैं। मुझे निस्संकोच यह कहना चाहिए कि वास्वत में किसी रचनाकार मित्र को अपने क्षेत्र में पूरी मुस्तैदी से रहने की ताकत उसके करीबी ही दे सकते हैं।

इस धर्म में डॉ. माधव नागदा हमेशा आगे रहे हैं। अपने समानधर्मा रचनाकार को लगातार सहयोग देते रहना बहुत कम लोग कर पाते हैं। लंबे रचनाकाल के दौरान कभी वैचारिक-दूरियाँ भी बन जाती हैं, फिर छोटे स्थान की अपनी सीमितता के चलते संपादक की परेशानियाँ बढ़ती हैं; ऐसी तमाम संभावित परिस्थितियों के बावजूद ये पथ के साथी क़मर जी को पस्त-हिम्मत से बचाते रहे हैं। इसका मुझे एक कारण यह भी लगता है कि जैसे माधव नागदा जी, सदाशिव श्रोत्रिय जी, प्रसिद्ध कहानीकार स्वयं प्रकाश, डॉ. राजेन्द्र मोहन भटनागर, डॉ. हेमेन्द्र चण्डालिया कई अन्य रचनाकार- पाठक कमर जी के व्यक्तिगत परिचित होकर उदयपुर नाथद्वारा या और भी आसपास के रहवासी हैं इसलिए भी विशेश सहयोग मिलते रहना आसान हुआ है। फिर यदि धीरे-धीरे पत्रिका अन्य राज्यों में भी पढ़ी जाने लगी तो यह सहभाव भी समय एवं पत्रिका की प्रतिष्ठानुरूप घनिष्ठ होने लगा। निस्संदेह पत्रों की इस अकूत धरोहर की पीछे का यह स्वीकार्य सच है।

पत्र लिखने वालों की यह विशिष्टता भी यहाँ देखने को मिलती है कि वे "संबोधन" के लिए किसी प्रसंग-विशेष को रेखांकित करते पत्र लिख रहे हैं तो भी उसमें आसपास की अन्य साहित्यिक घटनाओं का उल्लेख अनिवार्यत: करते हैं। ऐसे पत्र पाठकों के लिए विशेश दिलचस्पी वाले हो जाते हैं और महत्त्वपूर्ण भी। अन्यथा किसी और माध्यम से पाठकों को इतनी जानकारी नहीं मिल पाती है। एक बात और..... अक्सर जिसे "चने के झाड़ पर चढ़ाना" कहते हैं वैसा एक भी पत्र किसी भी सहयोगी मित्र, लेखक ने क़मर जी को नहीं लिखा; संबोधन को भी नहीं लिखा। ऐसे निश्छल एवं निश्कपट मित्र निश्चित रूप से धन्यवाद योग्य हैं। "गुन प्रगटै अवगुनहिं दुरावै" ऐसे मित्र क़मर जी को नहीं मिले- यहीं उनका भी सौभाग्य है।

डॉ. जीवनसिंह जी ने पुस्तक के प्राक्कथन में बहुत विस्तार से पत्रिका और पाठक के रिश्तों की गहरी पड़ताल की है। उन्होंने बहुत ठीक लिखा है कि पत्र व्यक्तिगत होकर भी अन्तर्वस्तु के तौर पर सामाजिक होते हैं, क्योंकि वे व्यक्ति को नहीं बल्कि संपादक या पत्रिका को संबोधित हो रहे होते हैं। उससे अधिक शायद वे एक रचनाकार को भी लिखे जा रहे होते है। जीवन सिंह जी हमारे समय के प्रबुद्ध आलोचक हैं, इसलिए उनके द्वारा लिखा यह प्राक्कथन एक लंबी अवधि की साहित्यिक परिघटनाओं की मीमांसा करता है। वास्तव में आधुनिक लोकतांत्रिक जीवन-मूल्यों के लिए समर्पित पत्रिका निकालना कई प्रकार की चुनौतियों से पार पाने जैसा है। और क़मर जी ने यह बहुत प्रेम से किया, तनावों को झेलते हुए भी तनाव-रहित दिखते हुए किया। जुलाई 1966 "संबोधन" सं. क़मर मेवाड़ी से लेकर "अभिनव संबोधन" 2016 अगस्त सं. मधुसूदन पाण्ड्या तक की यात्रा याद भीतर रहेगी। अब तो "अभिनव संबोधन" भी बंद हो चुका है, इसलिए सन् 1966 से 2016 तक का "संबोधन" हमारी स्मृतियों से कभी नहीं मिट पाएगा। यह "आधी सदी का सफ़रनामा" इसकी ताज़गी को भी बनाये रखेगा।

000

पुस्तक समीक्षा

(समीक्षा संग्रह)

इक्कीसवीं शती का हिन्दी उपन्यास और प्रवासी महिला उपन्यासकार

समीक्षक : विजय कुमार तिवारी

लेखक : डॉ. मधु संधु

प्रकाशक : अमन प्रकाशन, कानपुर

विजय कुमार तिवारी
टाटा अरियाना हाऊसिंग,
टावर-4 फ्लैट- 1002
पोस्ट-महालक्ष्मी विहार- 751029
भुवनेश्वर, उडीसा, भारत
मोबाइल-9102939190
ईमेल- vijsun.tiwari@gmail.com

डॉ. मधु संधु की समीक्षा-आलोचना की महत्त्वपूर्ण पुस्तक "इक्कीसवीं शती का हिन्दी उपन्यास और प्रवासी महिला उपन्यासकार" में 12 प्रवासी लेखिकाओं के कुल 18 उपन्यासों पर लिखी अपनी समीक्षाओं को शामिल किया है जिनके नाम हैं- अर्चना पेन्यूली, अनिल प्रभा कुमार, इला प्रसाद, उषा प्रियम्वदा, कादम्बरी मेहरा, दिव्या माथुर, नीना पाल, सुदर्शन प्रियदर्शिनी, सुधा ओम ढींगरा, सुषम बेदी, स्वदेश राणा और डॉ. हंसा दीप।

स्वदेश राणा के उपन्यास "कोठेवाली" की समीक्षात्मक विवेचना 'पुरुष सत्ता में कोठेवाली' में डॉ. मधु संधु ने पूरी कहानी को समझाने का प्रयास किया है जिसका काल खण्ड 1930 से 1970 तक फैला है। उपन्यास में तत्कालीन जीवन, आपसी संबंध, आर्थिक परिस्थितियाँ यथार्थत: चित्रित हुई हैं। देश काल परिस्थिति के अनुसार कोई भी रचना तय होती है, तत्कालीन समाज में व्याप्त शौक, सम्पन्नता, मानवीय गुण-दुर्गुण, प्रेम-वासना आदि के दृश्य उनकी दृष्टि में है। उपन्यास में वर्णित अन्तर्जातीय और अन्तर्मज़हबी शादियों, नैतिक-अनैतिक संबंधों को भी रेखांकित किया है। डॉ. संधु ने उपन्यास के महत्त्वपूर्ण भाव-विचारों को अपनी समीक्षा में उदाहरण सहित उल्लेख किया है जैसे नब्ज टटोल कर सार-वस्तु ग्रहण कर लिया हो। दुख, पीड़ा के साथ प्रेम-रोमांस दोनों उभरे हैं उनकी समीक्षा में। पात्रों के नाम, उनकी वेशभूषा, व्रत-त्योहार, आपसी तालमेल, भाषा-शैली आदि का उल्लेख करते हुए मधु संधु लिखती हैं-उपन्यास न सुखांत है और न दुखांत। नारी विमर्श तब खुलकर समीक्षा में उभरता है जब ताहिरा की सोच को रेखांकित करती हैं।

उषा प्रियम्वदा हिन्दी की बहुचर्चित लेखिका हैं, परिचय देते हुए संधु ने उन्हें अप्रतिम कहा है। यहाँ अपने संग्रह में उन्होंने उनके दो उपन्यासों की समीक्षाओं को शामिल किया है-'भया कबीर उदास' और 'नदी'। दोनों की विषय-वस्तु भिन्न है और दोनों उपन्यास नारी जीवन की त्रासदियों को उजागर करते हैं। 'भया कबीर उदास' के केन्द्र में कैंसर पीड़िता युवती लिली पाण्डेय/स्वीटी/यमन है। संधु लिखती हैं, "शुरू से लेकर आख़िर तक उपन्यास इसी सवाल से जूझता है कि क्या सौन्दर्य के प्रचलित मानदंडों और समाज की रूढ़ दृष्टि के अनुसार एक अधूरे शरीर को उन सब इच्छाओं को पालने का अधिकार है जो स्वस्थ और सम्पूर्ण देह वाले व्यक्ति के लिए स्वाभाविक होती है।" उनकी समीक्षा में उपन्यास के कथ्य-कथानक, स्त्री की पीड़ा, वेदना-संवेदना और प्रश्न का सम्यक उल्लेख है। पीड़िता की जिजीविषा निर्णय लेने का सम्बल देती है-अतीत का पृष्ठ बदल दो, वर्तमान में रहो, भविष्य को देखो। डा. संधु ने लेखिका की सम्पूर्ण भावनाओं को व्यक्त किया है ताकि उपन्यास के प्रति पाठकों की रुचि जाग सके। कहीं-कहीं प्रवासी जीवन की समस्याओं की जानकारी देती हैं, जैसे वेशभूषा, पहनावा, खानपान, नस्लभेद या संस्कृति भेद और अंधविश्वास को भी उन्होंने उजागर किया है, जो पात्रों की सोच में दिखता है। वैसे ही 'नदी' उपन्यास की अच्छी समीक्षा डॉ. संधु ने की है। उपन्यास की संवेदनाएँ, समस्याएँ और नारी पीड़ा का सम्यक उल्लेख हुआ है। विस्थापन किसी के लिए सहज नहीं होता। नारी के लिए सब कुछ तोड़ने-छोड़ने जैसा है। नदी उपन्यास में पुरुष नारी जीवन को त्रासदी से भरते दिखते हैं और जो अच्छे हैं, वे सहायता करना चाहते हैं। संधु जी लिखती हैं-जीवन उसूलों से नहीं चलता, बार-बार झंझावात आते हैं और गंगा को रास्ता बदलने के लिए बाध्य करते हैं। उन्होंने समीक्षा के अंत में कुछ निष्कर्ष निकाले हैं, लिखती हैं-यह विदेश में बनवास काटती एक सन्यासिन/वैरागिन की व्यथा कथा है जिसे जीवन में पति, प्रेमी, मित्र, संतान किसी का भी साथ नहीं मिला। वह बार-बार विस्थापित होती रही, नदी की तरह इधर-उधर भटकती रही। लहरों की तरह पत्थरों से सिर पटकती रही।

डॉ. मधु संधु ने अर्चना पेन्यूली के तीन उपन्यासों की समीक्षाएँ यहाँ शामिल की हैं। 'वेयर डू आई बिलांग:डेन्मार्क की धरती के अप्रवासी' शीर्षक की समीक्षा में संधु ने विस्तार से प्रवास के कारणों को समझने का प्रयास किया है। अपनी धरती से उखड़े लोगों की प्रमुख समस्या पहचान

का संकट है। सभी को अपने देश से अगाध प्रेम है। एक बेहतर और सुरक्षित गन्तव्य की ओर पलायन करता है जब उसे अपने स्थान पर मुसीबतें कठोर होती हैं। इस उपन्यास में तीन पीढ़ियाँ चित्रित हुई हैं। यहाँ दो तरह के प्रवासी हैं-रिफ्यूज़ी या जिसने भारत को हमेशा के लिए अलविदा कह दिया है और दूसरा वे लोग जो संयुक्त राष्ट्र संघ व बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में काम करते हैं। संधु जी ने स्त्री पात्रों को सबल, सशक्त माना है। यहाँ विधवा या परित्यक्ता की अवधारणा नहीं है, दूसरी शादियाँ हो जाती हैं। लिव- इन- रिलेशन प्रचलित है। नस्लवाद की समस्या यहाँ भी है। डॉ. संधु लिखती हैं-अंत में सभी बिखरे प्रसंगों को समेटने का श्लाघ्य प्रयास है। भारतीय जीवन मूल्य छूटा नहीं है और उलझे पात्र स्वयं को सुलझाते-बदलते देखे जाते हैं। देश वापसी की इच्छा और न लौट पाने की विवशता सभी के साथ है। डा. मधु संधु अर्चना पेन्यूली के दूसरे उपन्यास पर अपनी समीक्षा का शीर्षक लिखती हैं-"प्रेम गणित नहीं:पाल की तीर्थ यात्रा" पेन्यूली के उपन्यास की जटिलताओं, संबंधों, जीवन-मूल्यों, रिश्तों और प्रेम की अवस्थाओं का चित्रण संधु जी ने बेबाकी से किया है। पाल और नीना की प्रेमकथा में महत्त्वपूर्ण है, विवाह, तलाक और तूफ़ानों से गुज़रने के बाद भी प्रेम जीवित है। 56 वर्षीय पाल नीना की पहली पुण्य तिथि पर आयोजित कार्यक्रम स्थल सिद्धि विनायक मन्दिर तक 108 किलोमीटर की पैदल यात्रा का संकल्प लेता है। पूरे 28 घंटे लगते हैं। पेन्यूली जी ने यहाँ लेखन में प्रयोग किया है, डा. संधु ने सार्थक समीक्षा की है और सूत्रों को अनुक्रम में रेखांकित किया है। यह संधु जी की अपनी विशेषता है। इस यात्रा के दौरान पाल की स्मृतियों में सम्पूर्ण जीवन उभरता है और उपन्यास उद्घोष करता है कि सुख, मन:शांति, ठहराव संबंधों से जुड़ने में है। टूटन, भटकाव-बिखराव का मूल है और संतान तथा समाज के लिए घातक है।

अर्चना पेन्यूली के ग्लोबल उपन्यास "कैराली मसाज पार्लर" पर डॉ. मधु संधु की समीक्षा "चार महाद्वीपों में बिखरी नदी सी अबाध जीवन धारा:कैराली मसाज पार्लर" है। नायिका तीन बार तलाक लेती है, चार शादियाँ करती है और चार महाद्वीपों-एशिया, यूरोप, अफ्रीका और अमेरिका में रहती है। अपनी समीक्षा में डॉ. संधु ने विस्तार से, गहन छानबीन के साथ पूरी कहानी लिखी है और समीक्षात्मक दृष्टि से बेहतर मूल्यांकन किया है। यह प्रवासी स्त्री की कहानी है। हर प्रवास उस पर विस्थापन बनकर टूटता है। नैन्सी प्रकृति-प्रेमी है। वह भारतीय धर्मों, रीति-रिवाजों, परंपराओं को जानती है। हर शादी के बाद उसे बदलना पड़ता है, पहनावा, खानपान, तौर-तरीके, संस्कृति और बहुत कुछ। भारतीय जीवन सरल है। डॉ. संधु लिखती हैं, पूरे विश्व में स्त्री को पति, पुरुष पीड़ित करते हैं और इस जग में औरत अकेली है। प्रश्न पूछती हैं-क्या उत्पीड़न ही स्त्री की नियति है? उपन्यास एक स्त्री के 29-30 वर्षों के जीवन की उथल-पुथल से भरा है। साथ ही महाद्वीपों की जीवन्त यात्राओं का रसास्वादन भी है। संधु ने उपन्यास से सूत्र वाक्यों को पाठकों के लिए एकत्र किया है और उनका यह निष्कर्ष अद्भुत है-नैन्सी जैसे लोग अपना देश याद रखते हैं, वापस आना चाहते हैं, भारतीय पासपोर्ट रखते हैं, भारत में बसने का खयाल कभी नहीं आता, विदेशों में भटकते हैं, अपने ही जीवन के मूल्य पर प्रयोग करते हैं, मातृभूमि और सगे-संबंधियों के मोह में स्वदेश आते हैं, पर जड़ों से उखड़े विरवे कहाँ पनप पाते हैं। कुल मिलाकर पीड़ा, दुख-दर्द और सुख की तलाश करती प्रवासी स्त्री का चित्रण बहुत कुछ सोचने पर मजबूर करता है।

"एक शाम में समाई असंख्य शामें:शाम भर बातें" दिव्या माथुर के उपन्यास "शाम भर बातें" की समीक्षा में डॉ. मधु संधु लिखती हैं-"भरी शाम हो, पार्टी का आयोजन हो, मित्रों और संबंधियों का जमघट हो, विदेश की धरती हो और दिव्या माथुर की कलम हो-असंख्य कहानियाँ उभरने लगती हैं-सुख और दुख की, पीड़ा और मस्ती की, आज़ादी और सीमाओं की, सातवें आसमान और धूर पाताल की, प्रगति और दुर्गति की।" उपन्यास में नाना तरह की बातों के साथ डॉ. संधु ने सूत्र वाक्यों को समेटा है। यह पार्टी कम, डिबेट अधिक लग रहा है जहाँ लोग एक-दूसरे को नीचा दिखाने में लगे हैं। सभी अपना-अपना हुनर दिखा रहे हैं, नहले पर दहला व ऐसी-तैसी कर रहे हैं। फिर भी एक अपनापन है। उपन्यास में कोई कहानी नहीं है, सिर्फ बातें हैं और इन बातों में असंख्य कहानियाँ उभर रही हैं।

सुधा ओम ढींगरा के दो उपन्यासों-'नक्काशीदार केबिनेट' और 'दृश्य से अदृश्य का सफर' की अपनी समीक्षाओं को डॉ. मधु संधु ने यहाँ सम्मिलित किया है। 'नक़्क़ाशीदार केबिनेट' में जो कुछ लेखिका ने समेटा है, डॉ. संधु समीक्षा में वर्णन करती हैं और उन विसंगतियों, दुखों का उल्लेख भी। काल खण्ड का ऐतिहासिक महत्त्व उपन्यास में है और समीक्षा में भी। संधु लिखती हैं-स्त्री जीवन का संघर्ष जितना विकट है, सशक्तिकरण की चाह उतनी ही प्रबल है। ढींगरा की भाषा में हिन्दी के साथ पंजाबी और अंग्रेज़ी का प्रयोग है। कवि पाश की पंक्तियों के साथ बौद्धिक चिन्तन है। पूरे उपन्यास के सूत्र वाक्यों को डॉ. संधु ने खोज निकाला है। अपनी समीक्षा में लिखती हैं, यहाँ वर्तमान से अतीत और अतीत से वर्तमान की यात्रा है। अंत सुखद है। मूल्यों की विजय का संदेश है। पंजाब खालिस्तानियों से मुक्त हो जाता है और उपन्यास की संघर्ष गाथा में लक्ष्य प्राप्ति का उद्घोष है। सुधा ओम ढींगरा के उपन्यास "दृश्य से अदृश्य का सफ़र" की समीक्षा का डॉ. संधु ने शीर्षक दिया है-"महामारी और नारी उत्पीड़न के सन्दर्भ में नकारात्मकता से सकारात्मकता की यात्रा:दृश्य से अदृश्य का सफ़र"। लेखिका के बारे में और उपन्यास की कथा-वस्तु का विवरण डॉ. संधु ने लिखा ही है, साथ ही कोरोना काल की त्रासदी का जीवन्त चित्रण हुआ है। समीक्षा में स्त्री का संघर्ष और हार न मानने वाले गुणों को दिखाया गया है, लिखती हैं-पीड़ा से ही आत्मबल सँजोती है। महामारियों पर विशद चर्चा लेखिका के ज्ञान के साथ समीक्षक की पकड़ दिखलाता है। यहाँ भी सूत्र वाक्य सहेजे गए हैं। दार्शनिक चिन्तन को संधु ने रेखांकित किया है और नकारात्मक- सकारात्मक

शक्तियों की सम्यक विवेचना की है। उनका निष्कर्ष समझने योग्य है, लिखती हैं-दो युद्ध और दो प्रकार के योद्धा हैं। एक युद्ध अदृश्य शत्रु कोरोना के साथ है और दूसरा युद्ध उस आधी दुनिया का है जिस पर उत्पीड़न, अत्याचारों के जानलेवा हमले निरंतर चल रहे हैं। एक ओर कोरोना वैरियर्स युद्ध लड़ रहे हैं और दूसरी ओर अपनों की दानवी वृत्तियों से लड़ रही युवतियाँ हैं।

इला प्रसाद के उपन्यास "रोशनी आधी अधूरी सी' की समीक्षा का डॉ. मधु संधु ने शीर्षक दिया है "मुट्ठी भर आकाश की खोज में:रोशनी आधी अधूरी सी"। यह एक युवती के सपनों, संघर्ष, क्षमताबोध और जीवट की गाथा है। उपन्यास नायिका प्रधान है। किसी भी मंज़िल तक न पहुँचा पाने वाले शोध संस्थानों, उनकी नकारात्मक राजनीति और भविष्यहीन, कैरियर रहित शिक्षानीति की चर्चा है। समीक्षा में विस्तार से बिहार, बनारस, मुम्बई, अमेरिका तक के अध्ययन, शोध के साथ नौकरी न पाने की विवशता संघर्षशील युवती की कथा है। यहाँ संस्थानों की तुलनात्मक स्थिति का खुलासा भी है जिसमें शिक्षक, छात्र-छात्राएँ, राजनीति, शोषण, गंदगी, नैतिक-अनैतिक संबंध, जीवन के संघर्ष ख़ूब चित्रित हुए हैं। संधु जी ने विषय-वस्तु की व्यापक चर्चा की है और उपन्यासकार के उपन्यास लेखन के उद्देश्य को पकड़ा है। सूत्र वाक्यों का संग्रह उनकी अपनी विशेषता और शैली है। डॉ. संधु निष्कर्षत: लिखती हैं, इला प्रसाद प्रतिष्ठित, उच्चस्तरीय शिक्षण एवं शोध संस्थानों की परतें केले के गाभ की तरह परत दर परत खोलती जाती हैं। वहाँ की राजनीति, प्रेम कथाएँ, भ्रष्टाचार, दोगलापन। उपर उठने या अपना काम निपटाने के रहस्य यहाँ मिलते हैं। उनकी सूक्ष्म दृष्टि बनारस के बीएचयू, मुंबई के तकनीकी संस्थान और अमेरिका के जीवन का अनेक स्तरों पर तुलनात्मक अध्ययन करती जाती हैं। उपन्यास का अंत कुछ-कुछ सुखान्त हो चला है।

'नारी उत्पीड़न से सशक्तिकरण की यात्रा पारो- उत्तरकथा' सुदर्शन प्रियदर्शिनी के उपन्यास पारो-उत्तरकथा की समीक्षा करते हुए डॉ. मधु संधु ने लिखा है-शरत चंद्र के 'देवदास' के 100 वर्ष बाद प्रकाशित 'पारो-उत्तरकथा' पुनर्पाठ न होकर पुनर्सर्जना है। उपन्यास में स्त्री उत्पीड़ित है और उसका उत्पीड़न चौतरफा है। वह स्त्री जब सिर उठाती है तो नारी सशक्तिकरण का जीवंत उदाहरण बनती है। यह उपन्यास अबला से सबला की कहानी है। डॉ. संधु ने समीक्षा करते हुए हर बिन्दु पर चिन्तन किया है और अपना निष्कर्ष निकाला है। स्त्री पात्रों ने सशक्त भूमिकाएँ निभाई हैं। अपनी शैली को दुहराते हुए डॉ. मधु ने यहाँ भी सूत्र वाक्य खोज निकाले हैं। अत में उन्होंने लिखा है-उपन्यास अगर सामन्तीय परंपरा की अभिशप्त स्त्रियों के लिए है तो उनमें लौह स्त्री का स्वाभिमान और संघर्ष क्षमता भी है। उत्पीड़न की आग ने अग्निकुंड से निकली इन स्त्रियों को खरा सोना बना दिया है।

डॉ. हंसा दीप के तीन उपन्यासों-बंद मुट्ठी, कुबेर और केसरिया बालम की समीक्षाएँ यहाँ शामिल हैं। तीनों उपन्यासों की भावभूमि-पृष्ठभूमि अलग-अलग है। 'बंद मुट्ठी' में रिश्तों के आधिपत्य की कहानी है। यहाँ दूर वाले अपने हैं और अपने पराये जैसा व्यवहार करते हैं। नस्लभेद और रंगभेद की ग्रंथि से पिता आक्रान्त हैं। डॉ. संधु लिखती हैं, यह आने वाले कल का उपन्यास है। 'कुबेर' जीवट और संघर्ष की गाथा है। उपन्यास निहायत ग़रीब, भावनाशील और तीव्र-बुद्धि बच्चे के संघर्ष की कथा है। धनंजय प्रसाद, धन्नू, डीपी, डीपी सर से होते हुए कुबेर की कथा की बेहतरीन समीक्षा डॉ. संधु ने की है और संघर्ष, सेवा, समर्पण, धैर्य जैसे गुणों के साथ संस्कृतियों की पहचान की है। 'केसरिया बालम' की समीक्षा का शीर्षक 'रेगिस्तान में हरीतिमा और संपन्नता में दारिद्र्य' सारी कहानी कह देता है। यह कथा भारत से शुरु होकर अमेरिका तक फैली है। नायिका धानी में जहाँ रागात्मकता-प्यार, स्नेह, ममता, वात्सल्य व सम्मान महत्त्वपूर्ण है, वहीं उसका पति यंत्र युग का प्राणी है, भौतिकता की दौड़ में मनोरोगी बन जाता है। नायिका धानी अपने केसरिया बालम से मन से जुड़ी है और उसका हमेशा ध्यान रखती है। इन तीनों उपन्यासों की समीक्षा जिस तरीके से डॉ. संधु ने की है, सारे तत्वों को निचोड़कर रख दिया है। सूत्र यहाँ भी हैं और उन्होंने उन्हें पूरे मन से सहेजा है।

अगली समीक्षा 'अपराध कथा:निष्प्राण गवाह' शीर्षक से डॉ. संधु ने संग्रह में रखा है। कादम्बरी मेहरा द्वारा रचित 'निष्प्राण गवाह' रहस्य, रोमांच से भरा जासूसी उपन्यास है। उन्होंने सम्पूर्ण कथा का परिचय दिया है, विषय-वस्तु समझाया है और नए तरीके से छानबीन की है। विवाह/प्रेम के भिन्न रूप का चित्रण हुआ है और बोली, भाषा पर भी संधु जी की दृष्टि गई है। इस समीक्षा में सूत्र वाक्य नहीं हैं बल्कि रहस्य के आवरण हैं। डॉ. संधु के अनुसार स्त्री पात्रों का जीवन संघर्ष उपन्यास को जनवाद और नारीवाद से जोड़ता है। 'बंदूक संस्कृति और अन्य ब्लैक होल: सितारों में सूराख' अनिलप्रभा कुमार के उपन्यास 'सितारों में सूराख' उपन्यास की समीक्षा है। बंदूकें अमेरिकी इतिहास, राजनीति और संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। यहाँ आए दिन गोलियाँ चलती रहती हैं और नस्ल, लिंग, रंगभेद ख़ूब है। उपन्यास का संदेश यही है, बंदूक संस्कृति तभी ख़त्म होगी जब राजनेता, जन प्रतिनिधि और जन-जन का प्रयास हो। उपन्यास की मूल भावना को डॉ. मधु संधु ने विस्तार से चिह्नित किया है और सूत्र वाक्य तो उनकी शैली में है ही।

इतना तो मानना ही होगा, प्रवासी महिला साहित्यकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रवासी जीवन की सच्चाई को खोलकर रख दिया है। सभी महिला उपन्यासकारों को हार्दिक बधाई और शुभकामनाएँ। डॉ. मधु संधु की समीक्षाओं में सभी आवश्यक तत्व समाहित हुए हैं। विस्तार से लेखिकाओं सहित कथ्य-कथानक, विषय-वस्तु से परिचय करवाती हैं। सूत्र वाक्यों का संग्रह संधु जी की समीक्षा की अपनी प्रभावशाली शैली है। उन्हें उपन्यासकारों की भाषा-शैली की अद्भुत समझ है। समीक्षा की उनकी अपनी भाषा-शैली में रोचकता है। डॉ. मधु संधु को शुभकामनाओं के साथ बधाई देता हूँ।

000

पुस्तक समीक्षा

(समीक्षा संग्रह)

सृजन का अंतर्पाठ

समीक्षक : डॉ. शोभा जैन

लेखक : बी.एल.आच्छा

प्रकाशक : रचना प्रकाशन, जयपुर

डॉ. शोभा जैन
शुभाशीष 201 -1 /369
सर्वसम्पन्न नगर
इंदौर, पिन -452016 मप्र
मोबाइल- 9424509155
ईमेल- drshobhajain5@gmail.com

'सृजन का अंतर्पाठ' समालोचक बी.एल आच्छा की पुन:सर्जना का ऐसा वृत्त है, जिसमें वे लेखक जो साहित्य की कसौटी पर चर्चित रहे, उनकी कृतियों की समीक्षाओं का अनुशीलन किया गया है। यह भी कह सकते हैं आलोच्य कृतियों के माध्यम से प्रकाशक-सम्पादक-आलोचक के गठजोड़ से उपजी मठाधीशी को तोड़ने का एक सफल प्रयास कृति में किया है।

सामयिक अर्थवत्ता में रचना के आत्म-तत्व को लक्षित करती कृति अपने समकालीन सृजन की अंतर्यात्रा कराती है। एक तार्किक रूप में शास्त्रों की जड़ता को पग-पग पर लांछित करने वाले परिवर्तनवादी का जीवंत एवं गत्यात्मक शास्त्र 'घुमक्कड़शास्त्र' पर उनकी तत्त्वान्वेषी दृष्टि है, तो 'कालिदास' उपन्यास में कालिदास के आत्म-चरित के सृजन के साथ युगीन कालिदास की पुन:रचना का मूल्यांकन किया है। इसमें डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के माध्यम से एक प्रश्न भी उठाया है कि वे इतिहास के ललित रूप के ही सर्जक क्यों रहे हैं ? 'कालिदास' उपन्यास के कालिदास ऐतिहासिक और यथार्थ दृष्टि से सिरजे पात्र हैं, वे लालित्य और सात्विकता के आदर्श पुंज न होकर मानवसुलभ कमज़ोरियों से युक्त हैं। (पृ.17) 'आषाढ़ का एक दिन' के कालिदास से लेकर हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यास 'पुनर्नवा' तक एक सांकेतिक तुलनात्मक अध्ययन निहित है, जो कृतियों की अंतरंग भावभूमि से लेकर उसकी समाजशास्त्रीय दृष्टि को रेखांकित करती है। 'मनुष्यता के उत्कर्ष और नियति का आख्यान:अनामदास का पोथा' आधुनिक मानव की नियति के साथ उपनिषदीय चिंतन की पृष्ठभूमि में मनुष्य को केंद्र में रखने वाले प्रत्ययों का अन्वेषण है, जिसे बी. एल. आच्छा ने परकायाप्रवेशी आचार्य द्विवेदी की कल्पना सृष्टि का उपक्रम माना है। वे स्पष्ट करते है कि इस उपन्यास में इंद्र और विरोचन की कथा के माध्यम से सत्य का संधान किया है। उन्होंने द्विवेदी जी के हवाले से सत्य के अधूरे पक्ष को प्रबलता से रखा है 'विरोचन ने शरीर को ही आत्मा मान लिया था, यह बात बिल्कुल असत्य नहीं हैं, अधूरा सत्य है।' वे लेखक की प्रगतिशील दृष्टि और उसकी अंतर्वस्तु को उद्घाटित करते हुए लिखते हैं -द्विवेदी जी इस शरीरयुक्त मनुष्य को केंद्र में रखकर, उसके भौतिक अस्तित्व के तमाम प्रत्ययों को समझकर उसे उस आत्मा तक ले जाती है, जो प्रकृति-सत्य के स्वीकार के साथ संस्कृति की ओर ले जाते हैं। यह शरीर ही है, जो काम-संवेगों की जैविक अवधारणा के साथ ऋषिकुमार रैक्व की पीठ में सनसनाहट पैदा करता है, समाधि के बीच हाथ से पीठ को खुजलाने के लिए मजबूर करता है। वे कथाक्रम के विकास में कामवादी मूल्यों के साथ आध्यात्मिक दृष्टि को रेखांकित करते हैं। जिजीविषा और जीवन के मध्य संभावनाओं को तलाशने की दृष्टि से सशक्त शीर्षक को सार्थकता देते हुए साहित्य के समकालीन परिदृश्य के ठहरे हुए सरोवर में एक कंकड़ फेंक देते हैं, तो तरंगों का उठना स्वाभाविक है।

वे उत्तर आधुनिक जीवन को कई फ्रेमों से देखने वाले मनोहर श्याम जोशी के 'कुरु कुरु स्वाहा' को फिल्म नाटक और उपन्यास का दिलचस्प मिलाजुला प्रयोग स्वीकारते हैं तो 'यथार्थ की अनुभूतिपरक तरल व्यंजना :निर्मल वर्मा की कहानियाँ' शीर्षक में उनके चौथे कहानी संग्रह 'कव्वे और काला पानी' में उनकी ज़िंदगी के ठोस समाजशास्त्र का नितांत अभाव पाते हैं। बल्कि ऐसा संघर्ष भी जो प्रतिबद्धताओं से विमुख है। सम्भवत: ऐसा इसलिए कि ये कहानियाँ प्रतिबद्धता विमुख न होकर उनसे अलग हैं। स्मृतियों की तहों में तरल सांकेतिकता लिए एक महत्त्वपूर्ण संदर्भ कहानी में यथार्थ की अनुभूतिपरक तरलता को व्यंजित करता है। 'धूप का एक टुकड़ा' जिसमें निर्मल वर्मा यथार्थ को केवल छूते ही नहीं उसकी भीतरी तहों की ऊष्मा तक जाते हैं। यही उनकी विशेषता है। स्मृति से जन्म लेती उनकी कहानियों का जो संस्मरणात्मक और बिंबात्मक स्वरूप है वही उनकी जीवंतता है। मसलन-समय के अक्स पर अपने अनुभव में एकाकी होकर भी सामाजिक हिस्सेदारी से बरी नहीं है। या अक्सर कहा जाता है कि हर आदमी; अकेला मरता है, पर मैं यह नहीं मानती। वह उन लोगों के साथ मरता है, जो उसके भीतर थे, जिनसे वह लड़ता था या प्रेम करता था। वह अपने भीतर एक पूरी दुनिया लेकर जाता है। (पृ 36) बड़ी ही साफगोई है इस व्याख्या में इसे महसूस तो कराया जा सकता है, लेकिन दरार की तरह

साफ-साफ दिखाया नहीं जा सकता। जीवन और उसकी परिणति को सहजता से स्वीकारती इस कहानी में समीक्षा पढ़ते हुए अरुण कमल के शब्द स्मरण होते है -'निर्मल वर्मा अकेलेपन के नहीं अकेलेपन के भय के रचनाकार हैं, व्यक्ति की अपूर्णता के शोक के, पूर्णता की अविराम लालसा के।' निश्चित ही निर्मल वर्मा का यह फिलॉसोफिक अंदाज़ कभी कभी यथार्थ से दूर दार्शनिक अनुभूति से सटे होने का एहसास कराता है। इससे निर्मल वर्मा की कहानियों को कई कोणों से देखने की दृष्टि संपन्न होती है साथ ही उनकी रिक्तता में जिजीविषा से दूर ले जाने के संकेत भी मिलते हैं जो कभी-कभी पाठक के अपने ही जीवन को प्रतिबिंबित करते हैं। कहानी 'एक दिनका मेहमान' हो या 'ज़िंदगी यहाँ और वहाँ' आत्मपरक होते हुए विचारकपरक हैं। भले ही उनमें खिड़की से ऊष्मा को भीतर आने का पर्याप्त खोह न मिली हो।

'कविता की लय पर ठहरा गद्य: सत्येन कुमार की कहानियाँ' शीर्षक में लेखक ने जिस महत्त्वपूर्ण बिंदु की और ध्यानाकर्षित किया है उनमें कहानियाँ अभावों की तपन में झुलसे चेहरे नहीं, बल्कि हिल स्टेशन पर पेड़ों की सघन छाया में आराम करते हुए स्वान प्रिंसेस जैसे स्वप्निल आकाक्षांओं को जीने वाले या छरहरे शरीर बिलकुल चिजिल्ड फीचर्स वाले चेहरे हैं... (पृ 39) अति संक्षेप में कहें तो बी. एल. आच्छा ओढ़े हुए आग्रह से परहेज करते हुए कहानियों के माध्यम से सवाल उठाते हैं -'निम्न वर्ग की अभिशप्त ज़िंदगियों का दर्द कलम को विवश क्यों न कर सका ? उनका शब्द -कर्म आम आदमी की तड़प और परिवर्तनकामी आकांक्षा का पक्षधर क्यों नहीं ? वह उस व्यापक सामाजिक यथार्थ से क्यों नहीं जुड़ा, जो परिष्कृत वर्ग के उदास और ठहरे हुए आदमी के यथार्थ की अपेक्षा अधिक तल्ख़ और उष्मायुक्त है। इन सवालों के माध्यम से वे व्यापक सामाजिक यथार्थ में अपने हिस्से के अनुभवों के पुनर्सृजन की बात कहना चाहते हैं। कहानी की बुनावट के कन्ट्रास्ट का कलेवर देकर जो सम्वेदनामत्क तरलता वे कहानियों में भरते हैं, उसी का एक उदाहरण है सत्येन की कहानी 'जहाज़' जिसे लेखक ने एक बेहतर कहानी के रूप में रेखांकित किया है। इसी की अभिनव कड़ी में संघर्षजनित मूल्यों की तलाश जलसमाधि एवं अन्य कहानियाँ (पृ.48) के माध्यम से पद्मा शर्मा की कहानियों की पड़ताल की गई है, जो बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मायावी बाज़ार में उलझे अंचल के सीधे -सादे लोगों को प्राकृतिक संसाधनों से विस्थापित कर स्वयं को स्थापित करने की लालसा के प्रोजेक्ट की कथा है। नए परिवेश में उगती इन कहानियों में लोकतंत्र के पहरुए, दधि अक्षत और दूर्वा, कुकुरमुत्ता, मन की साध, इज़्ज़त की रहबर, आदि पर चर्चाएँ जीवन की वास्तविकता की चौखटों में जीवट भरी आस्था को तलाशती हैं। वहीं 'सामाजिक यथार्थ की अतिक्रामक जिजीविषा: आसमान साफ है' के बहाने प्रभुनाथ सिंह आज़मी के पहले कहानी संग्रह में नए कथ्यों की नई ज़मीन तलाशने का उपक्रम रचा है। लेखक के रचनात्मक संघर्ष के बावजूद कहीं-कहीं गहरे संकेतों ने इतना बाधित किया कि पाठक की मानसिकता आबाद होने से रह गई। कहानियों के उक्त महत्त्वपूर्ण पक्षों को बी. एल. आच्छा ने बड़ी शालीनता से रखा। अंतत: प्रतिबद्धता के केंद्र में बुनी कहानियाँ अनुभव की ऊर्जा में तपकर कलात्मक रूपांकन देने में समर्थ हैं। 'किन्नर जीवन के संघर्षों और आकांक्षाओं का संसार:मेरी किन्नर केंद्रित लघुकथाएँ' शीर्षक देकर बी. एल. आच्छा ने विषय वस्तु तक पहुँचने का मार्ग सरल ही बना दिया। दरअसल उक्त शीर्षक से रचा संग्रह पारस दासौत का चौदहवा लघुकथा संग्रह है। ईश्वर और महाभारत के पात्रों से मिथकीय पात्रों को जोड़कर प्रासंगिक और अर्थगर्भी बनाते संग्रह में समीक्षक की दृष्टि प्रारंभ से अंत तक विचारप्रधान ही नहीं भावप्रधान बनी रही। इसी का एक उदाहरण धर्मपाल अकेला कृत 'प्रजा ही विष्णु है' (पृ 57) नाटक में ऐतिहासिक पात्रों को इतिहास से निकालकर समकालीन घटनाचक्र के समांतर देखने का जो नज़रिया बी. एल. आच्छा ने दिया है, वह एक बार पुन: कृति के अनुशीलन की नई दृष्टि देता है। द्रौपदी के चीरहरण में कृष्ण ने नारीत्व की रक्षा की थी। इस नाटक में जनता ही विष्णु के रूप में नारी -मुक्ति और अस्मिता के संधान करती है। इसे निर्भया आंदोलन की अनुगूँज के साथ परखा जाना अपने समय के एक सार्थक मूल्याँकन की कड़ी है। जनतंत्र की पुकार उस नाटक में भी थी, इस यथार्थ में भी। बहुआयामी दृष्टि से नाटक के महत्त्वपूर्ण तथ्यों में समकाल के नेपथ्य को रेखांकित करते हुए शोधार्थियों के लिए कुछ नए विषयों के संकेत अवश्य मिलते हैं।

आधुनिक जीवन की दहलीज पर लोकजीवन की तूलिकाओं और भारतीय दर्शन, भाषा भाव और कलादृष्टि का सूक्ष्म रेखांकन है, नर्मदाप्रसाद उपाध्याय का ललित निबंध संग्रह 'आस्था और अमृत'। उत्सवी भूगोल में संस्कृति के रंग: आस्था और अमृत' शीर्षक में सृजनात्मक जिजीविषा को रेखांकित करते हुए अमृत की आकांक्षा को समुद्र मंथन से निकले अमृत के मिथक और शिप्रा नदी के प्रवाह से जोड़ा है। इसकी भाषा को पढ़ते हुए कहीं –कहीं महसूस हुआ समीक्षक लेखक की काया में प्रवेश कर ही गया, जो कुशल समीक्षक का गुण भी है। वाणी के अन्त:स्तल को स्पर्श कर चित्र खींचती भाषा के रेशे- रेशे का सौंदर्य प्रतिष्ठित हुआ। इन निबंधों के सारभूत के लिए बी. एल. आच्छा लिखते हैं ---'उनका गद्य कविता की लय का संधान करता है, इतिहास लालित्य के स्वर्ण - जल से मढ़ जाता है, श्लोक दार्शनिकता की सजल व्याख्या बन जाते हैं, आंचलिक भूगोल का स्पर्श मोह भाषा बन जाता है, आधुनिकता का मशीनी तंत्र उनके ललित भाव से टकराता रहता है।'(पृ.70)यही ललित निबंधों का सत्व भी है।

व्यंग्य विधा में शांतिलाल जैन की कृति 'न आना इस देश' को भी इसी रूप में देखा जा सकता है। इसमें कई महत्त्वपूर्ण विचारसूत्र सामयिक विमर्श व्यंग्यात्मक नुकीलेपन के साथ उभरे हैं, यथा :हमारी सार्वभौमिक आस्थाओं का केन्द्र हैं ग़रीब, मगर अर्थव्यवस्था के सारे खेल पूँजी की संस्थाएँ

खेलती हैं। (पृ 72) समाज की दशा और दुर्दशा को उकेरते हुए पिलकेंद्र अरोरा के व्यंग्य संग्रह 'साहित्य के अब्दुल्ला' में हर उस विषय वस्तु को परखा गया है जो आधुनिकीकरण के साथ नए मूल्यों की स्थापना के लिए बेचैन है। बौद्धिक परिहास और शिल्प की नवीनता में समाजवाद के पूँजीवादी उत्सवों, अवसरवाद के लिए तलवे चाटने की कलाओं और साहित्यिक आयोजनों की अध्यक्षता के अवसरों की आर्त पीड़ाओं का समाजशास्त्र कृति के अक्स से मुखातिब करवाता है। रचना का अंतरंग पाठक उतनी ही गहराई से महसूस कर सकता है समस्या की जितनी अंतरंगता से लेखक ने इसे जिया है। 'असल से तो नकल अच्छी' शंशांक दुबे के प्रथम व्यंग्य संग्रह पर उसी रंजक मार का आस्वाद बरकरार रखते हुए वे लिखते हैं -'शशांक की व्यंग्य भाषा जितनी इल्मी है, उतनी फ़िल्मी भी। उसके तेवर मालवी रंग के देशीपन से जितने आत्मीय है उतने ही चालू मुहावरे में अपनी फेंक से सूटेड- बूटेड भी।'(पृ 82)

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी काल के सैयद अमीर अली 'मीर' का खंड काव्य 'बूढ़े का ब्याह' को वे युगीन चेतना की मुखर अभिव्यक्ति मानते हुए अनमेल विवाह के विरुद्ध तार्किक और मार्मिक दिखाई देते हैं तो कनुप्रिया के पाँचों खण्डों में वे कनु के अपरिचित पक्ष का चरम साक्षात्कार कराने में सफल होते दिखते हैं। यथा -कनु का परिचय, अंतरंग सखा, रक्षक, बन्धु, सहोदर, आराध्य, और गंतव्य तक राग का विस्तार और कुछ न होने का भोलापन तथा साँवले समुद्र में विलीन होकर सीमा की थाह नापने वाली राधा मुक्त प्रेयसी के रूप में उभरती है। (पृ.96) हिन्दी साहित्य के पाठकों के लिए कनुप्रिया को नवीन परिप्रेक्ष्य में समझने की दृष्टि से की गई विशद व्याख्या कृति के अत्यंत महत्त्वपूर्ण पृष्ठ माने जा सकते हैं जो नए आधुनिक विमर्श में कहीं इस पात्र पर पुनरावलोकन की माँग करते हैं। प्रगति और प्रयोग में यथार्थ और आस्थाओं का आस्वाद चखती कृति 'किनार से धार तक' में जयकुमार जलज के काव्य संग्रह के माध्यम से नई संवेदनाओं से लोकमानस को जोड़ने का जो उपक्रम रचा गया है वो इन पंक्तियों में समझा जा सकता है -'जलज जी की कविताएँ सड़क किनारे उगाए गए अशोक या बेगनवेलिया या गुलमोहर की कतार नहीं है। बगीचों के फलदार पेड़ भी हैं, छायाओं के सघन वृक्ष भी हैं और जंगली पौधों पर लरजती फूल -पत्तियाँ भी।'(पृ 117) कवि प्रकाश उप्पल की कृति 'समयांकन हो या डॉ. दुर्गाप्रसाद झाला की 'समय और समय' जीवन के कसमसाते आर्तस्वर और उनसे निजात पाने की जिजीविषा इनमें महसूस की जा सकती है। 'मेरी इतनी सी बात सुनो' में वे देवेंद्र दीपक की कविताओं के माध्यम से अद्वैत के आदर्श की ज़मीन और वंचित के यथार्थ से साक्षात् कराते हैं। कृष्ण कमलेश की कविताओं की घनीभूत पीड़ा, अयाचित संधियों, समझौतों और बुद्धिजीवियों के बाँझ- चिंतन पर गहरी पड़ताल करते दिखते हैं। 'चुप नहीं है ईश्वर' में गीतकार ईश्वर करुण की कविताओं में ईश्वर की चुप्पी को प्रकृति के मुखर रंगों की खिली-खिली भाषा में सँजोने का कवि का प्रयास उभरकर सामने आया है, तो राकेश शर्मा के काव्य संग्रह 'स्त्री और समुद्र' के मिथकीय प्रयोगों से समकाल तक आते- आते समकालीन जीवन में उसकी अर्थवत्ता का संधान करने का रचनात्मक उपक्रम दिखाई देता है। कविताओं में राकेश शर्मा ने जो रचा है उसके वैचारिक स्पंदन में आधुनिकता का उजलापन मुखर होता दिखाई देता है। कविताओं के साथ न्याय करते हुए बी. एल. आच्छा ने पाठकों को कविता की नई मनोभूमि से परिचित कराया है। हरिशंकर परसाई से लेकर शरद जोशी और मालिक मोहम्मद जायसी से लेकर सूर्यकान्त नागर तक लगभग हर पीढ़ी के रचनाकारों की महत्त्वपूर्ण कृतियों का समग्र मूल्यांकन इस समीक्षा ग्रंथ की विशेषता है।

इस पुस्तक में सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की काव्य संरचना, कवि प्रदीप के फिल्मी-गैर फिल्मी गीतों में नवजागरण, क्रांतिकारी कवि बालकृष्ण शर्मा नवीन, शायर महमूद जैकी, बुंदेली-हिन्दी कवि बटुक चतुर्वेदी के साहित्य का भी सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है। हिन्दी के जाने माने मनोवैज्ञानिक आलोचक डॉ. देवराज उपाध्याय और शैलीविज्ञान के मर्मज्ञ डॉ. कृष्णकुमार शर्मा की आलोचना दृष्टि का परिचय हिन्दी समीक्षा का विशिष्ट रूप है। इस रूप में यह पुस्तक अपनी समीक्षा दृष्टि के नेपथ्य में तमाम विचारधाराओं, आलोचना पद्धतियों की अनदेखी नहीं करती। बल्कि रचनाओं से लक्षित होकर कृति के यथार्थ, जीवन और मूल्यों से साक्षात्कार कराती है। अनेक विधाओं पर कलम चलाते हुए लेखक विधा के स्वरूप से साक्षात्कार करते हुए रचनाओं की पड़ताल के अभ्यस्त हैं।

समग्रत: भाषा की गद्य- लय को साधती इस पुस्तक में लेखक, पाठक, समीक्षक के त्रिकोण में सारे ही कोने सधे हुए हैं। रचना की आलोचना और समीक्षा दोनों के निस्तेज और निष्प्राण होते समय में कृति दोनों ही विधाओं के मूल्यांकन का सुलभ संकेत बनकर उभरती है। संबंधों को तरजीह दिए बिना साहित्यिक कृति कैसे विश्लेषित हो सकती है इसका उदाहरण है सृजन का अंतर्पाठ। प्रायोजित समीक्षाओं के दौर में यह प्रयोग हिन्दी साहित्य की परखनली में पर ऐसा रसायन है, जिसने कई विधाओं को पुन: ऐसी संगति दी है जो कई कृतियों के मर्म-ग्रहण करने में सहायक है। विचारगत संभावनाओं के क्षितिज को विस्तार देती यह कृति पाठक के साथ हिन्दी के विद्यार्थियों बल्कि शोधार्थियों के चिंतन के नए आयाम विकीर्ण करती है। निश्चित ही यह समीक्षा आलोचना के पुराने कवच को तोड़ते हुए इन दोनों ही विधाओं के लिए नया पाथेय तैयार करती है। बहुत कुछ ऐसा है जो साहित्य में आज भी प्रासंगिक है जिसके संकेत सृजन का अंतर्पाठ में मिले। रचनाओं के आंतरिक ही नहीं वैचारिक पार्श्व से रू-ब-रू कराती यह समीक्षा कृति सृजन-चिंतन के पुनरावलोकन के लिए उपादेय साबित होगी।

केंद्रीय हिन्दी निदेशालय के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित इस पुस्तक का मूल्य न्यूनतम है और प्रकाशन भी प्रभावी।

000

पुस्तक समीक्षा

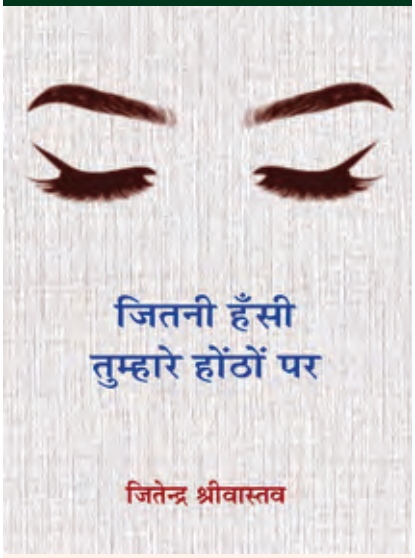

(कविता संग्रह)

जितनी हँसी तुम्हारे होठों पर

समीक्षक : देवेश पथ सारिया
लेखक : जितेंद्र श्रीवास्तव
प्रकाशक : सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली

देवेश पथ सारिया
द्वारा - श्रीमती सरोज शर्मा
माडा योजना हॉस्टल
पोस्ट ऑफिस के पास राजगढ़ (अलवर)
राजस्थान- 301408

बीते दिनों मैं कुछ प्रेम कविताओं से गुज़रा। ये प्रेम कविताएँ वरिष्ठ कवि जितेंद्र श्रीवास्तव के नए कविता संग्रह 'जितनी हँसी तुम्हारे होठों पर' में संकलित हैं। इस संग्रह की कविताओं में प्रेम के विभिन्न रूप सामने आते हैं। यह एक अनुभवी कवि के काव्य विस्तार और कवि के जीवन में प्रेम की आवश्यकता व महत्त्व का परिचायक है। 'जितनी हँसी तुम्हारे होठों पर' की कविताएँ एक तरफ़ जहाँ प्रिया की अनुपस्थिति में भी चहुँ ओर प्रेम का अनुभव कराती हैं, वहीं दूसरी ओर वे देह और प्रेम के अंतर्संबंध पर भी बात करती हैं। प्रेम कविताओं से एक सहज अपेक्षा मुझे मासूमियत की रहती है, जो 'किसी और के नंबर से' जैसी कविताओं द्वारा कवि पूरी करता है- "मैंने अपना पता नहीं बदला है फ़ोन नंबर भी नहीं / तुम न भेज पाओ अपने मोबाइल से कोई बात नहीं / किसी और के नंबर से ही भेज दो अपना नंबर"

कविता 'अंतराल' उस बीते दौर की याद दिलाती है, जब प्रेमियों पर संकोच हावी रहता था। इसी संकोच के चलते न जाने कितनी जोड़ियाँ बनते बनते रह गईं, जैसे इस कविता में दो यात्री हिम्मत के अभाव में अलग-अलग रास्तों पर चल दिए थे। इन कविताओं में 'चिट्ठी' और 'तार' जैसे शब्द कई बार प्रयुक्त हुए हैं, जो नब्बे के दशक के प्रेम की याद दिलाते हैं। प्रेम की लंबी यात्रा में संचार के साधनों की यात्रा भी है। प्रेमी सदैव अपनी प्रेयसी से संपर्क स्थापित करने को व्याकुल रहते हैं। इसी क्रम में यहाँ चिट्ठी-पत्री, तार से आरंभ होकर फ़ोन, व्हाट्सएप और वीडियो कॉल जैसे आधुनिक माध्यमों का भी ज़िक्र होता है। ऐसे में यह तय करना मुश्किल है कि इन कविताओं को किस एक विशेष काल खंड की कविता कहा जाए। इस संग्रह की कुछ कविताओं में छंद भी है, कहीं कविताओं के शिल्प में शास्त्रीय पद्धति बरती गई है और कहीं शैली बिल्कुल आज की कविता से मिलती है। कुल मिलाकर कवि के ही पिछले संग्रह 'सूरज को अँगूठा' से ये कविताएँ कुछ भिन्न हैं। कुछ खो देने का डर इन संग्रहों में साम्य के रूप में देखा जा सकता है: "कई बार जीवन में / प्रेम भी आता है / महज़ तीन दिन के लिए / एक दिन लेता है आकार / दूसरे दिन उसे मिलती है पृथ्वी / तीसरे दिन शाम के धुँधलके में खो जाता है कहीं।"

चूँकि यहाँ प्रेम कविताएँ हैं, तो मनुष्यों एवं वस्तुओं से बिछड़ने की पीड़ा को और भी अधिक स्पेस यहाँ मिला है। प्रेम कविताओं की श्रेणी में, महज़ प्रेम की नहीं विरह की कविताएँ भी शामिल होती हैं। किन्हीं कविताओं में कवि विरह से मुक्ति का प्रयास करता दिखता है और कुछ कविताओं में विरह में बुरी तरह विकल। वह हवा में प्रेयसी का स्पर्श ढूँढ़ता है (संदर्भ कविता- प्राणवायु की तरह)। इस तरह प्रकृति कवि की सहभागी बनती है। और जीव जगत् भी- "मन की टहनी पर बैठी / ओ मेरी कोयलिया / उड़ मत जाना / ओ मेरी साँवली आभा / अब उड़ना / तो मुझे भी साथ लेकर उड़ना।"

गृहस्थ जीवन भी प्रेम की एक तस्वीर है। बल्कि यह एक ख़ाली कैनवास को बार-बार रंगे जाने की प्रक्रिया है। गृहस्थ जीवन के बारे में संग्रह में पर्याप्त कविताएँ हैं। ये कविताएँ साहचर्य पूर्ण जीवन जीते हुए जीवन की मुश्किलों को साथ पार करने की बात करती हैं- "चलो सुलेखा / हम बदल दें अनचाही बदरी को / मनचाहे सुख के बादलों में"

कोरोना की दूसरी लहर में भारत ने जो कुछ झेला, वह प्रलय जैसा ही कुछ था। सीमित संसाधन और निरंतर कष्ट पाते लोग। शायद हममें से हर एक ने किसी अपने को खोया होगा। ऐसे भयावह समय में साँसों को तरसते हुए कोरोना संक्रमित मरीज़ों के लिए परिवार जनों एवं शुभचिंतकों का साथ जीवन और उम्मीद की डोर बना रहा।

आलोचक चैनसिंह मीना ने कवि जितेंद्र श्रीवास्तव के बारे में लिखा है कि यह कवि आवश्यकता के अनुसार अन्य भाषाओं एवं बोलियों से शब्द उधार लेने में हिचकिचाता नहीं है (उदाहरण- 'इंतज़ार नासूर न बन जाए' कविता)। इसी बात की नज़ीर देते हुए अपनी टिप्पणी का समापन, मैं किताब में मौजूद हिन्दी-उर्दू की इस बेहतरीन जुगलबंदी के साथ करता हूँ- "बेसबब भटकना बंद हो गया मेरा / जीवन अनुष्टुप छंद हो गया मेरा।"

000

पुस्तक समीक्षा

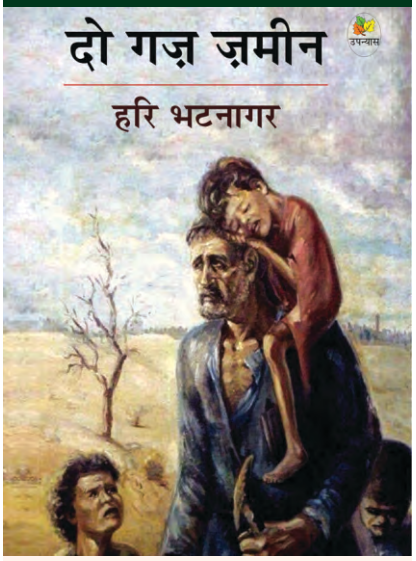

(उपन्यास)

दो गज़ ज़मीन

समीक्षक : अंबरीश त्रिपाठी

लेखक : हरि भटनागर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

अंबरीश त्रिपाठी
आर-13, गणपति विहार
बोरसी, दुर्ग, छत्तीसगढ़
मोबाइल- 7489164100
ईमेल- amba82@gmail.com

यूँ तो समय हमेशा गतिशील रहा है और रहेगा। पर पिछले 2-3 दशकों से मोटर गाड़ियों और इंटरनेट की स्पीड के कारण ज़िंदगी बहुत तेज़ भागी जा रही है। चौराहे, नुक्कड़, अड़ियाँ अब प्राय: दृश्य बन गुज़रते जा रहे हैं।

लेकिन ये दृश्य अपने में हज़ारों कहानियाँ समेटे हैं। करामत अली करामत ठीक फरमाते हैं कि- कोई ज़मीन है तो कोई आसमान है/ हर शख़्स अपनी ज़ात में इक दास्तान है।

'विकास' के प्रतीक फ्लाईओवर के निकलने से न केवल ये तिराहे-चौराहे के दुकान टूटते जा रहे हैं, वरन् मॉल का रास्ता कुछ कम दूर होने से तिराहे के दुकानदारों की दुनिया भी टूटती जाती है। ये टूटन बड़ी आसानी से कोई भी संवेदनशील सामाजिक व्यक्ति देख-समझ सकता है।

यह विकास सांस्कृतिक रूप में भी घटित होता है। उसे समझने-जानने में एक साहित्यकार की सूक्ष्म नज़र की दरकार होती है। कथाकार और विवेकशील संपादक हरि भटनागर का नव प्रकाशित उपन्यास 'दो गज़ ज़मीन' इस लिहाज़ से बेहद महत्त्वपूर्ण उपन्यास है।

बुद्धि विचार के अलावा मनुष्य के पास सबसे बड़ी पूँजी जुड़ने और जोड़ने की है। जिससे परिवार बनता है, समाज बनता है। समाज से आज संबंध उसी तरह छीजते और उलझते जा रहे हैं, जिस तरह कथा साहित्य से कहानी। 'दो गज़ ज़मीन' न केवल समाज में नाते-संबंधों की सर्जना को चित्रित करता है, वरन् उपन्यास विधा में कहानी की प्रमुखता को भी स्थापित करता है।

संबंधों का महल प्रेम, विश्वास, त्याग और सत्य रूपी चार स्तंभों पर खड़ा होता है। आज गति की होड़ और विकास की महत्वाकांक्षा में ये सामाजिक मूल्य 'आउटडेटेड' मान लिए गए हैं। जिसकी परिणति घृणा, अकेलापन, त्रास और निराशा के रूप में हमारे चारों-तरफ़ धीरे-धीरे पसर रहा है। इन्हीं बिसर रहे सामाजिक मूल्यों को केंद्र में रखकर संबंधों के ताने-बाने से हरि भटनागर ने एक सधी हुई कथा बुनी है।

यह सही है कि व्यक्ति के जीवन की कहानी में सही और ग़लत, न्याय और अन्याय की स्थितियाँ आती रहती हैं। पर एक वृहत्तर सत्य यह भी है कि जीवन का अधिकांश सही और ग़लत के संधि बीच में ही गुजरता है। उपन्यासकार ने एक निम्नमध्यवर्गीय परिवेश के माध्यम से जीवन के इसी ग्रे एरिया को बड़ी सूक्ष्मता और सघनता से चित्रित किया है।

बड़े ही नाटकीय ढंग से कथा शुरू होती है। उपन्यास के नायक लाला बस स्टैंड स्थित अपने चाय की दुकान बढ़ाकर वापस घर लौट रहे होते हैं, मन-ही-मन दुकान जाते समय के अपने दुर्व्यवहार के पश्चाताप में घुले जा रहे थे। पिता-पुत्र के बीच खिंचाव-तनाव से शुरू हुई कथा अपने समापन में भी उस चरम तनाव की परिणति तक पहुँचती है जहाँ पिता घुट-घुट कर प्राण त्याग देता है। "लाला के दिमाग़ में बस एक ही बात रह-रह गूँजती कि उनसे कहाँ क्यों चूक हो गई जिसका दण्ड मंगल ने उन्हें दिया। मंगल ने जैसा चाहा, देर से ही सही, उन्होंने उसे माना।

उन्होंने ना झगड़ा किया, न टंटा। उसकी इच्छा का सम्मान किया। पहले दुकान के एक हिस्से में चेंबर की बात थी, मंगल ने पूरी दुकान को चेंबर बना डाला। उन्होंने कोई विरोध ना किया। लाला के दिमाग़ में यकायक लालिमा से भरा थाल से भी बड़ा सूरज था, जो पेड़ों के ऊपर धीरे-धीरे उठ रहा था। हज़ारों पंछी थे जो पेड़ों में छिपे चहचहा रहे थे। सहसा वे उड़े और आसमान के नीलाहट में उड़ते- उड़ते खो गए। जैसे कह रहे हों कि आसमान की नीलाहट में लिप्त होकर ही पृथ्वी की पीड़ा से मुक्त हुआ जा सकता है।

उपन्यास के अंत को पढ़ते हुए ज़ेहन में होरी की त्रासद मृत्यु घर कर जाती है। पर होरी के इस अंत का ज़िम्मेदार जहाँ पर प्रेमचंद क्रूर और शोषणकारी व्यवस्था को दिखाते हैं वहीं गोदान के लगभग 75 वर्ष बाद हरि भटनागर 21वीं सदी की नई पीढ़ी की ज़िम्मेदारी को रेखांकित करते हैं जो इस तेज़ी से बदलते समय में भौतिकता और अतिमहत्त्वाकांक्षा के रथ पर सवार हो सरपट भागे जा रही है। इस पीढ़ी का प्रतिनिधि पात्र है लाला का बेटा मंगल। जिसको अपने चाय की दुकान के भरोसे ही लाला ने पाल-पोसकर बड़ा किया। अच्छी तालीम दिलाई। अपने संबंधों के दम पर उसे आर्किटेक्ट का हुनर सिखवाया। वही बेटा 'अब अपने बाप के दुकान चलाने पर शर्मसार है। बिना किसी हिचक के अपने पिता के लिए बोल उठता है कि-"बाबू ने आज तक कुछ नहीं करा-धरा। सब रो-झीख के चल रहा है।"

लाला के दुकान पर पहले भी कई मुसीबतें आती हैं। म्युनिसपैलिटी की हल्लागाड़ी से उतरे वर्दीधारी युवा मुस्टंडों ने तो भट्ठी को तोड़ डाला था, काउंटर और फर्नीचर उठा ले गए थे। लेकिन लाला और उनके साथी इससे निराश कहाँ होने वाले थे। दूसरी बार तो मुंशी गिरधर ने छल-छदम से दुकान की पूरी छत ही तुड़वा डाली थी पर इससे भी लाला के हौसले न टूट सके।

अभी तक की लड़ाइयों को लाला अपने मातहतों, साथियों और पंडित आत्माराम जी के साथ मिलकर लड़ा था और जीता था। ये सामुहिकता की विजय थी। भोजपुरी में एक कहावत है - 'जे केहू से ना हारेला उ अपना से हारेला'। और इस हार का सबसे बड़ा कारण यह है कि लाला इस लड़ाई में अकेले पड़ गए। दरअसल ये उपन्यास आदमी के अकेले पड़ते जाने की त्रासदी का आख्यान है।

रक्तसंबंधों के इस आद्यन्त तनाव में रची कहानी में सामाजिक संबंधों का सुंदर उजास भी है। धीरे-धीरे फ़्लैशबैक के माध्यम से लाला की दिनचर्या, पत्नी, आई और बेटे मंगल के साथ के संबंध के विविध स्तरों का उद्घाटन होता है। रामचरितमानस के पाठ, पतंगबाज़ी और फुटबाल की प्रतियोगिताएँ और उनका बड़ी बारीकी से चित्रण कथा को जीवंतता देती है।

सहज हास-परिहास समाज की धमनियों की तरह है जिसमें उन्मुक्त हँसी का संचार होता है। ये हास्य बोध न केवल जीवन के प्रति उत्साह जगाए रखता है वरन काम काज में भी मन रमाने हेतु प्रेरित करता है। आज जाति, धर्म, विचार अहंकार के चलते और वर्तमान समय में कोविड के दुष्प्रभाव रूपी सामाजिक दूरी के कारण समाज में हास्य बोध दिनोंदिन छीजता जा रहा है। लोगों की भावनाओं के आहत होने की दर निजीकरण करने की रफ्तार से भी तेज होती जा रही है। इस दौर में कथाकार- जगदीश, मलऊ, शंभू, संतिया, रतजगी, रामखेलावन, बुलाको आदि पात्रों के माध्यम से हँसी-ठहाकों की ऐसी फ़िज़ा बाँधते हैं कि बड़े से बड़ा दु:ख भी रास्ता बदल देता है।

उपन्यास का एक महत्वपूर्ण पात्र है पंडित आत्माराम पाँड़े। ऐसा लगता है मानो उपन्यासकार की आवाज बन आत्माराम पाँड़े सूत्रधार रूप में कहानी को गति दे रहे हैं। कथा में भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था, और राजनीति की दुरभिसंधियों को बहुत गहराई से उकेरा गया है। पंडित जी का कथन इस व्यवस्था की कलई खोल देता है-" हिंदुस्तान भेड़ियाधसान देश है- यहाँ पढ़े-लिखे लोग अपने बलबूते पर बिना किसी लाभ के चलते बड़ी-बड़ी पढ़ाई करते हैं-फिर अपने टैलेंट से नौकरी पाते हैं। यहाँ देश चलाने वाले नेता जिनको किसी भी क्षेत्र का अनुभव नहीं, तिकड़म और बदमाशी में जिनको महारत है, वे देश की बागडोर थामे बैठे हैं। ऐसे देश का हाल क्या होगा? कहाँ जाएगा ? समझ लो ! यहाँ वैज्ञानिकों, डॉक्टरों शिक्षा-शास्त्रियों, इंजीनियरों की, उनकी योग्यता की कोई इज़्ज़त नहीं- उनकी चलती ही नहीं..." गैर राजनीतिक होती हुई भी कथा राजनीति के दाँव-पेंचों से विरत नहीं है। लालफीताशाही वाली व्यवस्था में नागरिक होने का अवमूल्यन तो दिखता ही है पर साथ ही मामूली समझे जाने वाले लोगों की विशिष्टता इस उपन्यास को ख़ास बनाती है।

भाषा की सहजता और सरलता ऐसी की समूची कथा आँखों के सामने चलती हुई सी लगती है तथा मुहावरे से सनी कहानी का ऐसा अविरल प्रवाह समकालीन उपन्यासों में विरल है। कौवे के मानवीयकरण की एक झलक उपन्यासकार की विलक्षण दृष्टि का परिचायक है। 'दो ग़ज़ ज़मीन' पढ़ते हुए प्रेमचंद, यशपाल और श्रीलाल शुक्ल की कथा परंपरा की झलक बार-बार परिलक्षित होती है। जिसमें कहानीपन के साथ ही समाज अपने फूल और शूल को लेकर पूरी ठसक के साथ मौजूद है। कथाकार की सफलता इस बात में है कि उसने बड़ी तटस्थता और सूक्ष्मता से बदलते समाज की नब्ज़ को चित्रित किया है। जिसमें हर एक का अपना सत्य, संघर्ष और अपनी पीड़ा है। किसी निर्णय को थोपने या सही -ग़लत को प्रस्तुत करने की मंशा या मुग़ालता न रखते हुए सामाजिक यथार्थ को समग्रता में रूपायित करने के कारण यह उपन्यास अपना एक विशिष्ट स्थान बनाती है। उपन्यास का शीर्षक कथा के मूल उत्स को तो व्यक्त करता ही है पर उससे ज़्यादा विकास की हक़ीक़त को बयां करता है। आवरण चित्र, फिलिस्तीनी चित्रकार ismail shammount का है जो कि विस्थापन के दर्द का मुकम्मल बयान है। शिवना प्रकाशन से प्रकाशित इस महत्त्वपूर्ण तथ विशिष्ट उपन्यास की क़ीमत मात्र 150 रुपये है।

000

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

बूढ़ा पीपल

समीक्षक : डॉ. नीलोत्पल रमेश

लेखक : राजेश दुबे

प्रकाशक : रुद्रादित्य प्रकाशन, प्रयागराज

डॉ.नीलोत्पल रमेश
पुराना शिव मंदिर, बुध बाज़ार,
गिद्दी - ए, जिला - हजारीबाग,
झारखंड - 829108
मोबाइल - 9931117537
ईमेल- neelotpalramesh@gmail.com

'बूढ़ा पीपल' राजेश दुबे का पहला कविता-संग्रह है। यह संग्रह बिहार सरकार के मंत्रिमंडल सचिवालय (राजभाषा) विभाग के अंशानुदान से प्रकाशित हुई है। इसकी अधिकांश कविताएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर प्रसंशित हो चुकी हैं। राजेश दुबे वैसे कवि हैं जिनकी जड़ें गाँव में अब तक जमी हुई हैं। जहाँ से ये कविताओं के लिए सामग्री लाते हैं। कवि को मैं बचपन से जानता हूँ। इनके साथ मैं बहुत दिनों तक रहा भी हूँ। इनके परिवार का संबंध हमारे परिवार के साथ बहुत पुराना है। इनके पिताजी और मेरे पिताजी का एक-दूसरे के यहाँ आना-जाना बहुत पहले से रहा है। ख़ैर, जो भी हो, कहने का मतलब साफ है कि कवि राजेश दुबे से हमारा परिचय बहुत पुराना है। इतना पुराना कि जब हम दोनों कोई कविता लिखते थे तो पहले एक-दूसरे की सहमति लेते थे, तब कहीं किसी गोष्ठी या पत्रिका में पढ़ी या भेजी जाती।

'बूढ़ा पीपल' की कविताओं के संबंध में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि और 'प्रसंग' के संपादक डॉ. शंभु बादल ने लिखा है कि "कलागत पेचीदगियों से अलग बोलचाल की सरल भाषा में सामान्य लोगों के पक्ष में लिखी गई कविताओं का महत्त्वपूर्ण संग्रह है - 'बूढ़ा पीपल'। इससे कवि की बड़ी रचनात्मक संभावनाओं का पता चलता है। राजेश दुबे वस्तुत: संघर्ष, आस्था, विश्वास और मंगल के कवि-रूप में यहाँ देखे जा सकते हैं। 'दीप मुझे तो उसे जलाने', 'मुस्कान लुटाने वाले' इस कवि का स्वागत होना चाहिए।"

इस संग्रह के बारे में 'नई धारा' के संपादक डॉ. शिवनारायण ने लिखा है कि "हरफरौरी', 'लोकतंत्र', 'माँ', 'कोयला चोर', 'लाठी', 'रोटी बिखर गई', 'वह गढ़ता है सुंदर-सुंदर कविता' जैसी अनेक कविताएँ अपनी वस्तुगत तात्विकियों के द्वारा समय, समाज और संवेदना के ब्याज से मानविकियों की निर्मिति करती हैं। संग्रह की सभी कविताएँ अपने समय के निर्मम यथार्थ से जो संवेदना उत्पन्न करती हैं, वह एक बेहतर समाज के निर्माण में सहायक हैं। इसलिए ये कविताएँ मानवोत्थान के लिए हैं।"

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि और आलोचक डॉ. शहंशाह आलम ने 'बूढ़ा पीपल' की कविताओं के बारे में लिखा है कि "राजेश दुबे का यह कविता-संग्रह 'बूढ़ा पीपल' नाम से इसलिए आया है कि पीपल के पेड़ की उम्र जितनी होती है, उससे कहीं अधिक उम्र लोकतांत्रिक मूल्यों की होती है और उससे भी अधिक उम्र कविता की होती है। मैं राजेश दुबे की कविताओं के बारे में यह बात बेहिचक कह सकता हूँ कि 'बूढ़ा पीपल' में संगृहीत ज़्यादातर कविताओं की उम्र लंबी है। इतनी लंबी है कि हमारी धन की संस्कृति से, शोषण की संस्कृति से, सांप्रदायिकता की संस्कृति से, दोगली राजनीति से विद्रोह की आदत की उम्र तक को बढ़ा देती है।"

'बूढ़ा पीपल' शीर्षक नामित कविता से ही मैं अपनी बात प्रारंभ करता हूँ। 'बूढ़ा पीपल' ग्रामीण संस्कृति का वह वटवृक्ष है जिसे गाँव का सब कुछ मालूम रहता है, क्योंकि उस गाँव के सुख-दुख में वह बराबर का भागीदार रहा है। यह पीपल गाँव का वह बुज़ुर्ग है जिसे वर्षों की बातें याद हैं। वह अपने जेहन में सँजोए रहता है - उस गाँव का सब कुछ। वह बदलते गाँव और बिखरते गाँव का मूकदर्शक बना रहता है। कवि ने इस कविता में बदलते गाँव की मार्मिक स्थितियों का वर्णन इस प्रकार किया है - "मगर आज/गाँव में आई है पुलिस/चली है गोलियाँ/दो धर्मों के बीच/अपने ही दोस्त/दोस्तों के खून से तर हैं/लाशों को रखा गया है/बूढ़े पीपल के नीचे/आज बहुत उदास है/बूढ़ा पीपल।"

'हरफरौरी' कविता के माध्यम से कवि ने किसानी-संस्कृति को उजागर किया है। जब खेती-

किसानी पानी के अभाव में असंभव हो जाती है तो गाँव की महिलाएँ हरफरौरी का गीत गाने लगती हैं। इस गीत में वह बादल से मनुहार करती हैं। इस मनुहार में अपने रिश्ते को उजागर करते हुए गाली गाती हैं, ताकि इंद्र भगवान् खुश होकर वर्षा कर दें। इस गीत में किसान की लाचारी, मजबूरी यानी सब कुछ उजागर हो जाती है। कवि ने लिखा है "औरतें हल जोतकर/इंद्र को भेज रही हैं संदेसा/ससुर से मज़ाक का/रिश्ता नहीं है लोकव्यवहार में/पर मज़ाक कर भगवान् को/बताया जा रहा है -/जल के बिना धरती की/ख़त्म हो रही है मर्यादा/प्रभु देख लो और बरसा दो जल"

'कोयला चोर' कविता के माध्यम से कवि ने कोयलांचल में जीने के लिए जद्दोजहद कर रहे लोगों की लाचारी और बेबसी का वर्णन किया है। इन्हें कहा तो जाता है 'कोयला चोर', पर इनकी इस चोरी में प्रशासन की भी भागीदारी रहती है। इसी पर इनके परिवार का भरण-पोषण भी निर्भर करता है। ये जितना मेहनत करते हैं, उतना पाते भी नहीं हैं, फिर भी इन्हें मजबूरी में यह काम करना पड़ता है। कवि ने लिखा है - "बड़ा कठिन जीवन है इनका/जितने का बेचते हैं कोयला/ये इनकी मेहनत के/बराबर भी नहीं होता/पेट पालने के लिए/मेहनत के बावजूद/इनकी पहचान है/सिर्फ और सिर्फ/कोयला चोर।"

'लाइन होटल का लड़का' कविता के माध्यम से कवि ने लावारिस और असहाय बच्चों की लाचारी का वर्णन किया है। लड़का अपनी भूख मिटाने के लिए लाइन होटल में काम को करना शुरू करता है, ताकि उसकी क्षुधा की तृप्ति हो सके। भले ही मालिक कुछ गाली-गलौज ही करता है तो करता रहे, उसकी भूख तो मिट जाती है। मालिक को उसकी बीमारी से कोई मतलब नहीं है, तभी तो उसके पानी लगे हाथ में मोबिल लगाने को कहता है। उसका ठिकाना न लड़के को मालूम है, न मालिक को, फिर भी वह लाइन होटल में काम करते-करते अभ्यस्त हो गया है। कवि ने लिखा है - "काम जबरदस्त करता है/खाना भी भरपूर खाता है/कोई भी डाँट सकता है/मर्ज़ी हो तो मारकर/उतार सकता है गुस्सा/पर कुछ भी नहीं बोलता है/लाइन होटल का छोटा लड़का।"

'प्रेम हाट में बिकाएगा' कविता के माध्यम से कवि ने प्रेम को नई तरह से परिभाषित करने की कोशिश की है। कवि कहना चाहता है कि प्रेम को बाड़ी में उपजाया जाएगा, फिर उसे बाज़ार में बेचा जाएगा। यानी प्रेम प्रदर्शित करने के लिए दिल की गहराई की ज़रूरत पड़ेगी। इसे सिर्फ और सिर्फ महसूसा जाएगा। कबीर की विचारधारा को कवि आत्मसात करते हुए कहता है कि "प्रेम को अब कहीं भी/पा सकोगे/नफ़रत में लिप्त रहने वाले भी/इसे हाट से खरीद लेंगे/या बाड़ी से तोड़ लेंगे/खुला है विश्व-बाज़ार/ 'राजा-परजा जेहि रुचे' /खरीदकर ले आइए।"

'इतिहास में लिखा जाएगा' कविता के माध्यम से कवि ने कोरोना-काल की भयावहता का वर्णन किया है। कोरोना-काल में मनुष्य लाचार हो गया था। उसकी बुद्धि काम करना बंद कर चुकी थी। एक सूक्ष्म जीवाणु ने आदमी को विवश कर दिया था - अपने-अपने घरों में कैद रहने के लिए। लोग बदहवास निकल पड़े थे सड़कों पर, अपने-अपने ठिकाने पर पहुँचने के लिए। मनुष्य द्वारा निर्मित मिसाइलें कोई काम की नहीं थी। कवि ने लिखा है- 'परमाणु बम लेकर बैठे/ दुनियाभर के दिग्गज असहाय थे/एक सूक्ष्म जीवाणु से डरी हुई दुनिया/कुछ नहीं कर पा रही थी/मिनटों में दुनिया को ध्वस्त करने वाली/किसी काम की नहीं थी मिसाइलें/इतिहास में लिखा जाएगा।"

'कोरोना तुम फिर आना' कविता के माध्यम से कवि ने कोरोना से आग्रह किया है कि तुम फिर आना, ताकि प्रकृति की स्वच्छता और शुद्धता बरकरार रहे। प्रकृति में जो प्रदूषण फैला हुआ है जिससे वातावरण और नदियाँ दूषित हो गई हैं। उसका सारा श्रेय मनुष्य को ही जाता है। कोरोना काल में नदियाँ एकदम स्वच्छ हो गई थीं। वातावरण एकदम साफ हो गया था। प्रदूषण की मात्रा नगण्य हो गई थी। यही कारण है कि कवि ने कोरोना से फिर आने का अनुरोध किया है। कवि ने लिखा है - "नर-नारी लिप्त हो जाए/भोग की ज़हरीली दुनिया में/ख़त्म होने लगे गुरुजनों का सम्मान/लोग भूलने लगे रिश्ते/करोना तुम फिर आना!"

'रोटी बिखर गई होगी' कविता में कवि ने कोरोना की दूसरी लहर में अपने गाँव की ओर पैदल निकल पड़े लोगों की विवशता और मजबूरी का जिक्र किया है। इन्हें रात में कहीं कोई ठौर-ठिकाना नहीं मिला तो ये सो गए थे - रेल की पटरियों पर। रात में सनसनाती हुई ट्रेन गुज़र गई इन्हें रौंदते हुए और इनकी रोटी पटरियों पर बिखर गई। इनके मन में कई सपने थे जिसे पूरा करने के लिए निकल पड़े थे - लाख मुसीबत को उठाते हुए। कवि ने लिखा है- "किसी ने नहीं सोचा/वे कैसे रेल की पटरियों पर/गहरी नींद में सो गए होंगे/कैसे बिखर पड़ी होगी रोटी/धड़धड़ाती रेलगाड़ी की आहट/नहीं महसूस कर सके होंगे/क्या हो गया होगा उन्हें"

'वह गढ़ता है सुंदर-सुंदर कविता' कविता के माध्यम से कवि ने किसानों के कार्यों को कवि की कविता से की तुलना की है। कवि अपनी कविता की खेती मन-मस्तिष्क में करता है। किसान अपनी खेती खेतों में करता है। जिस प्रकार कवि के लिए कागज़ उसकी कविता की ज़मीन है, उसी प्रकार किसान का खेत उसकी रचना की ज़मीन है। किसान कृषि-कर्म के द्वारा नई-नई सृष्टि करता है जिससे दुनिया ख़ूबसूरत बनते जाती है। कवि ने लिखा है - "उसकी कविता को मैंने पढ़ना चाहा/पर मुझे पढ़ने नहीं आया/कुदाल से धरती पर लिखा था उसने/छोटे-छोटे बीज निकल आए कविता में"

'बूढ़ा पीपल' की कविताएँ हमारे आसपास की कविताएँ हैं जिसमें हम अपने समय और समाज की झलक साफ-साफ देख सकते हैं। इन कविताओं को पढ़ते हुए आप एक साथ पढ़कर ख़त्म करना चाहेंगे क्योंकि इसकी भाषा सहज, सरल और संप्रेषणीय है। राजेश दुबे एक मंजे हुए कवि हैं - इनकी कविताओं को पढ़ने के बाद मुझे ऐसा महसूस हुआ। इनकी कविताओं का स्वागत किया जाना चाहिए। कवि राजेश दुबे को मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ!

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

पत्थलगड़ी और अन्य कहानियाँ

समीक्षक : नीरज नीर

लेखक : कमलेश

प्रकाशक : सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली

नीरज नीर
आशीर्वाद, बुद्ध विहार
पो ऑ- अशोक नगर
राँची 834002 झारखंड
मोबाइल- 8797777598
ईमेल- neerajcex@gmail.com

कहते हैं, आदिवासियों से उसका जंगल छीन लो, उनके पहाड़, उनके देवी-देवता, विश्वास, परंपरा छीन लो तो आदिवासी अपने आप ख़त्म हो जाएँगे। आज उनके जीवन के ये सभी आधार छीने जा रहे हैं, कुछ प्रत्यक्ष कुछ अप्रत्यक्ष। प्रश्न है कि सोगराम या उस जैसे लोग कब तक इसके विरुद्ध लड़ पाएँगे, कब तक इन्हें बाँस-बल्ली घेरकर, पत्थलगड़ी कर बचा पाएँगे? कमलेश के नवीन कहानी संग्रह पत्थलगड़ी की इसी शीर्षक की कहानी इस विषय की बहुत ही मार्मिक एवं भावनात्मक एवं विमर्शमूलक प्रस्तुति करती है। यह कहानी न केवल वर्तमान में आदिवासियों के ऊपर उत्पन्न ख़तरे के प्रति आगाह करती है बल्कि आने वाले समय में आदिवासियत के विनाश के प्रति भी सचेत करती है।

कमलेश के पहले कहानी संग्रह "दक्खिन टोला" के बाद उनका दूसरा संग्रह "पत्थलगड़ी" हाल ही में प्रकाशित होकर आया है। अपने पहले संग्रह की कहानियों से ही कमलेश ने अपने तेवर स्पष्ट कर दिए थे एवं एक कथाकार के रूप में स्वयं को सुस्थापित भी कर लिया था। प्रस्तुत संकलन में कुल दस कहानियाँ संकलित की गई हैं, जिनमें कम से कम तीन कहानियाँ, झारखंड की पृष्ठ भूमि में रची गई हैं।

कमलेश एक पत्रकार हैं और फिलहाल राँची में एक अख़बार के समाचार संपादक है। घटनाओं को देखने की जो दृष्टि उनके पास हैं वह अक्सर चकित करती है। अपनी कहानियों के पात्रों की भाषा, प्रतिक्रिया, उनके व्यवहार, विचार, परंपरा, शोषण, प्रतिरोध और अन्याय सबका बहुत ही सूक्ष्म अवलोकन कमलेश करते हैं और उनकी कहानियों में ये उत्कृष्ट शिल्पगत विशेषताओं के साथ दर्ज होते हैं। झारखंड पृष्ठभूमि की कहानियों, खिड़की, पत्थलगड़ी और भाई में कमलेश के इन गझिन आब्ज़र्वेशन को देखा जा सकता है। उनकी कहानियों में लोक जहाँ अपने विविधवर्णी रूप में उपस्थित होता है, वहीं उनका वैचारिक ताप भी प्रखरता से अनुभव होता है।

कमलेश की कहानियों की गत्यात्मकता, कथ्य की सरलता पर सम्मोहन की हद तक की रोचकता पाठकों को बाँधती है। कमलेश जो भी विषय उठाते हैं, जो पात्र गढ़ते है, जो कथ्य रचते हैं, वे कभी भी उनके लेखकीय दायित्व और उद्देश्य की सीमा का उल्लंघन नहीं करते हैं। कमलेश अपने पात्रों के साथ भावनात्मक रूप से जुडते हैं एवं भावनाओं की इस तरलता को हम उनकी कहानियों में अनुभव कर पाते हैं।

यूँ तो संकलन की कहानियाँ वैविध्यपूर्ण है, पर सभी कहानियों का अंतरलोक पाठकों को किसी जादुई यथार्थ के बजाए समाज की रोज़ की घटनाओं, जिसे हम अक्सर अख़बारों में पढ़कर नज़रंदाज कर देते हैं की कठोर सच्चाई से जोड़ता है। ये कहानियाँ अमूर्तन के ढाँचे पर खोखला संसार नहीं रचती हैं बल्कि साधारण और रोज़मर्रा की घटनाओं में असाधारण तत्वों का चुनाव करती है एवं यथार्थ के ठोस धरातल पर खड़ी होती हैं।

संकलन की पहली कहानी "अघोरी" अपनी अद्भुत गत्यात्मकता के लिए अलग से रेखांकित की जा सकती है। इस कहानी के आरंभ में बक्सर जिले के एक छोटे से बरुना स्टेशन का जो दृश्यचित्रण है, वह कहानी की ऐसी बुनियाद रखता है, जिस पर खड़े होकर पाठक लौटने की सोचता भी नहीं है, बल्कि पंक्ति दर पंक्ति आगे बढ़ती कहानी के आकर्षण से बँधा रहता है। एक अत्यंत क्रोधी स्वभाव के विख्यात अघोरी के जीवन का जब सच सामने आता है तो पाठक का मन अघोरी के प्रति द्रवित हो उठता है। पत्थर मारने वाला और गलियाँ देने वाला अघोरी भीतर से कितना टूटा, बिखरा और अकेला है!! इस कहानी के अंत तक क्लाइमैक्स को कहानीकार जिस तरह पकड़कर रखते हैं एवं पाठक के लिए हर पल कुछ नया मोड़ सामने आने की संभावना बनी रहती है, वह इस कहानी को विशिष्ट बनाती है।

इस संकलन की चार कहानियाँ "पत्थलगड़ी", "बाबा साहब की बाँह", "खिड़की" एवं "भाई" विमर्शमूलक कहानियाँ होती हैं। लेकिन इसे कमलेश के लेखन की विशेषता ही कहेंगे कि किसी विशिष्ट विमर्श को अभीष्ट कर रची गई कहानियों में भी विमर्श कभी कथ्य पर हावी

नहीं होता एवं लेखक की वैचारिकी कहानी को हाइजैक नहीं करती है, जैसा कि विमर्शवादी कहानियों में अक्सर देखा जाता है। संग्रह की "खिड़की" कहानी, झारखंड के आदिवासी परिवेश में पोलिसिया दमन की एक बेहतरीन कहानी है। थाने की वह खिड़की जिससे जिससे सुभरन मुंडा उचक-उचक कर बाहर अपनी स्त्री को देखने की कोशिश करता है, एक प्रतीक बन कर उभरता है। वह खिड़की महज एक खिड़की नहीं जिससे, हवा और रोशनी आती है बल्कि स्वतंत्रता का द्योतक है, जिससे सुभरन मुंडा अपनी आज़ादी के सपने देखता है।

कमलेश अपनी कहानियों में लोक जीवन के कलात्मक एवं सरस पक्ष को भी प्रदर्शित करते हैं साथ ही लोक से जुड़े लाज यानि लोकलाज की प्रचलित प्रतिगामी प्रवृतियों के कारण लोक कलाकारों की बेबसी, बेचैनी, उनकी पीड़ा और जीने के संघर्ष की दारुण गाथा को भी मार्मिक रूप से सामने लाते हैं। कमलश भोजपुरी भाषा-भाषी क्षेत्रों में प्रचलित लौंडा नाच और इससे जुड़े कलाकारों, परंपराओं की गहरी समझ रखते हैं और इनके प्रति संवेदनशील भी है। लौंडा नाच करने वाले आदमियों की मानसिक दशा, समाज का उसके प्रति रवैया, उनके संघर्ष और द्वंद्व का जैसा चित्रण कमलेश करते हैं, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं मिलता है। इस संग्रह की कहानी "प्रेम अगिन में" इसी विषय वस्तु को केंद्रगत रखकर रची गई है। इसके पहले भी इस विषय पर हम कमलेश की कहानी "अचरा पर लौंडा नाच" पढ़ चुके हैं, जो अपनी तरह की अनूठी कहानी थी।

"लाल कोट" और "रिजल्ट" सहज मानवीय संवेदनाओं की कहानियाँ हैं। लाल कोट में एक पचास वर्षीय व्यक्ति एक युवा लड़की के प्रति जब आकर्षित होता है तो उस लड़की की हर गतिविधि का प्रयोजन उसे अपने इर्द-गिर्द ही घूमता प्रतीत होता है। जीवन की नीरसता, अनुत्साह अचानक प्रेम के वशीभूत आनंद और उत्साह में परिणत हो जाता है, लेकिन जब सच्चाई पता चलती है तो ... !!! सच्चाई पता चलने पर भी पाठक ठगा महसूस नहीं करता बल्कि उस व्यक्ति के प्रति करुणा से भर जाता है, और उस व्यक्ति के कृत्य को सहज मानवीय स्वीकृति मिल जाती है। इसी तरह "रिजल्ट कहानी में एक रिटायर्ड व्यक्ति जब अपने जीवन के अकेलेपन से, परिवार की उपेक्षा से ऊब जाता है तो एक औरत से ब्याह करने का निर्णय लेता है, जिस पर उसके पुत्र एवं पुत्रवधु उसका परित्याग कर देते हैं। उसकी लाख कोशिशों के बावजूद उससे कोई संबंध नहीं रखते। लेकिन इसके बावजूद जब उस वृद्ध को पता चलता है कि उसके पोते का रिजल्ट आने वाला है, तो वह रिजल्ट जानने के लिए व्यग्र हो उठता है। लाल कोट और रिजल्ट कोई ऐसी कहानी नहीं जो बिल्कुल किसी सर्वथा नवीन या अपरिचित बुनियाद पर रची गई हो बल्कि समाज में ऐसे कई उद्धरण हम अक्सर देखते हैं, लेकिन इन कहानियों को कहानीकार जिस तरह से बरतता है, जिस तरह कहानी का पाठक के साथ कनेक्ट बनता है, वह इन्हें विशिष्ट बना देता है और पाठक के मनो-मस्तिष्क पर इसकी लंबी छाप रहती है।

संकलन की कहानी "बोक्का" का प्रारंभ तो एक नैसर्गिक, युवा मन के स्वाभाविक प्रेमाकर्षण से होती है लेकिन आगे बढ़ती हुई कहानी भारतीय समाज की फूहड़ विडंबनाओं का बहुत ही ख़ूबसूरत चित्रण करती है। जाति और धर्म के झगड़े, इनके शोषण से समाज को बचाने की बातें करने वाले, जीवन पर्यंत इसी की राजनीति करने वाले, क्रांति-क्रांति का जाप करने वाले, परिवर्तन का आहवाहन करने वाले, कौमुनिस्ट तिवारी जी की अपनी बेटी की जब बात आती है तो कैसे अपनी सारी प्रगतीशीलता के पाखंड का आवरण उतार फेंकते हैं और समाज की जड़ता के फंदे में अपनी बेटी के प्रेमी का गला घोंट देते है, यह कहानी बड़े ही रोचक एवं मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है। कहानी में वर्णित तिवारी जी का आचरण और उनका कृत्य कोई अस्वाभाविक घटना नहीं, बल्कि समाज की वास्तविकता ही है, जिसके कथ्य, पात्रों एवं कथोपकथन को कहानीकार ने समाज के बीच से बड़ी ख़ूबसूरती से उठाया है। इस कहानी के माध्यम से कहानीकार समाज, राजनीति और साहित्य के एक बड़े एवं कड़वे सत्य को निरावृत कर देते हैं।

हाल के दिनों में हमने देखा है कि देश के बैंकों से बड़ी कंपनियाँ हज़ारों करोड़ रुपये के क़र्ज़ लेकर चंपत हो जा रही है। उनसे किसी भी रूप में इन ऋणों की वसूली संभव नहीं होती है। लोन लेने वाले विदेशों में जा बैठते है। देश की जनता उनके कृत्य पर अचंभित रहती है और सरकारी मशीनरियाँ किंकर्त्तव्यविमूढ़। लेकिन छोटे छोटे लोन की वसूली बैंक बहुत ही कड़ाई से करती है। वसूली के लिए बैंक के कर्मचारी लोन लेने वालों के घर तक पहुँच जाते हैं एवं उन्हें सामाजिक अपमान और मानसिक उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। कई जगह तो वसूली के लिए अपराधियों का भी सहयोग लेने की बात सामने आती है। इस संकलन की कहानी "क़र्ज़" पलामू के एक सीमांत किसान के क़र्ज़ के जाल में फँसने की एक ऐसी ही मार्मिक कहानी है, जिसे पढ़कर व्यवस्था के प्रति गुस्सा तो आता ही है, कुछ नहीं कर पाने की अपनी बेबसी और लाचारगी पर रंज भी होता है। इस कहानी में कहानीकार जो दृश्य उत्पन्न करते हैं, बैंक कर्मी तिवारी जी के डाल्टेनगंज से बरियारपुर गाँव तक पहुँचने का फ्रेम दर फ्रेम जो चित्रण है एवं कहानी जिस तरह आगे बढ़ती है वह इस कहानी को विशिष्ट बनाता है एवं कहानी मन पर देर तक प्रभाव डालती है।

कमलेश का यह संकलन अपनी कहानियों की सहज भाषा, लोकरंग के नैसर्गिक चित्रण, वैचारिक ताप, साधारण में असाधारण ढूँढ़ लेने की कला, उत्कृष्ट कथ्य, प्रवाह एवं रोचकता के कारण एक अवश्य पठनीय संकलन है। ऐसी उम्मीद की जा सकती है कि यह संकलन हिन्दी कथा साहित्य में उन्हें उनका उपयुक्त स्थान प्रदान करेगा एवं पत्थलगड़ी आंदोलन जो झारखंड में आदिवासियों के अधिकारों के बचाव के प्रतीक के रूप में उभरा था लेकिन लघुजीवी रहा, इस संकलन के शीर्षक की वजह से याद किया जाएगा।

000

पुस्तक समीक्षा

(व्यंग्य संग्रह)

बुद्धिजीवी सम्मेलन

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : पंकज सुबीर

प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, सीहोर, मप्र 466001, फ़ोन-07562405545

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

हिन्दी के सुपरिचित कथाकार और प्रसिद्ध उपन्यास "अकाल में उत्सव" और "जिन्हें जुर्म-ए-इश्क़ पे नाज़ था" के लेखक श्री पंकज सुबीर एक संवेदनशील लेखक होने के साथ एक संपादक भी हैं। हाल ही में इनका व्यंग्य संग्रह "बुद्धिजीवी सम्मेलन" प्रकाशित होकर आया है। "बुद्धिजीवी सम्मेलन" पंकज सुबीर का पहला व्यंग्य संग्रह है। पंकज सुबीर के लेखन का सफ़र बहुत लंबा है। इनकी व्यंग्य रचनाएँ निरंतर देश की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। वर्तमान समाज की उपभोक्तावादी संस्कृति में झूठ, फरेब, छल, दगाबाज़ी, दोमुँहापन, रिश्वत, दलाली, भ्रष्टाचार इत्यादि अनैतिक आचरणों को सार्वजनिक रूप से स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है, व्यंग्यकार ने इस संग्रह की रचनाओं में इन अनैतिक मानदंडों और आचरणों पर तीखे प्रहार किए हैं। इस संग्रह की व्यंग्य रचनाएँ अव्यवस्थित व्यवस्था को उजागर करती हैं। वर्तमान व्यवस्था का तटस्थ अवलोकन, मूल्यहीन सामाजिकता का सूक्ष्म विश्लेषण इस व्यंग्य संग्रह में मौजूद है। अपने समय की विसंगतियों पर चोट करने के लिए जिस साहस की ज़रूरत होती है, वह इन व्यंग्य रचनाओं में भरपूर देखने को मिलता है।

पंकज सुबीर की रचनाओं में समाज में पाई जाने वाली सभी विसंगतियों का बेबाक चित्रण है। शीर्षक रचना "बुद्धिजीवी सम्मेलन" तथाकथित बुद्धिजीवियों पर गहरा कटाक्ष है। इस व्यंग्य रचना में व्यंग्यकार बनावटी बुद्धिजीवियों पर कटाक्ष करते हुए लिखते हैं "एक बार स्व. इंदिरा गाँधी अमेरिका के दौरे पर गईं थीं, वहाँ के उनके कार्यक्रमों में एक कार्यक्रम था बुद्धिजीवियों से मुलाक़ात। सारा अमेरिकी प्रशासन हैरान हो गया था कि यह बुद्धिजीवी कौन सा प्राणी होत्ता है। तब पता चला था कि हिन्दुस्तान में एक विशेष प्राणी होता है, जो फ्रेंच कट दाढ़ी रखता है, बालों में कंघी नहीं करता और आसमान की ओर देखता हुआ ऐसी बातें करता है, जो किसी को समझ में नहीं आती, यहाँ तक कि उसको ख़ुद को भी नहीं, उसी को बुद्धिजीवी कहते हैं।"

"ख़ामोश स्कूल सड़क पर है" नाट्य शैली में लिखा एक रोचक व्यंग्य है। अव्यवस्थाओं पर चोट करती "ख़ामोश स्कूल सड़क पर है" व्यंग्य रचना उद्वेलित करती है। "नेताजी धागे से पतले", "नेता हो जाने से ठीक पहले", "नेता, राजनीति शास्त्र और एक अदद प्रश्न पत्र", "मूँगफली छाप नेता", "नेता से एक मुलाक़ात", "ए ग्रेट लीडर" नेताओं, उनके चमचों के क्रियाकलापों और कारस्तानियों पर गहरा कटाक्ष है तथा लेखक ने राजनीति के गिरते स्तर की

घटनाओं पर अप्रत्यक्ष रूप से तंज किया है। "सरकारी योजनाएँ और दौरे" रचना में सरकारी योजनाओं और सरकारी अफ़सर के दौरों का व्यंग्यकार ने रोचक चित्रण किया है। "पंचायती राज" यथार्थ को चित्रित करता बेहतरीन शैली और चुटीली भाषा में तराशा गया एक सामयिक प्रभावशाली व्यंग्य है जो महिला सरपंच की कार्यशैली पर सार्थक हस्तक्षेप करता है। महिला सरपंच की कार्यशैली का करारे पंच के साथ कच्चा चिट्ठा खोला गया है। व्यंग्यकार दृश्य चित्र खड़े करने में माहिर हैं। गाँव के विकास के लिए जहाँ-जहाँ पंचायत का सचिव बताता जाता है वहाँ-वहाँ अँगूठा लगाती जाती है। अँगूठा ? यह तो अँगूठा लगा रही है? बड़े छिद्रान्वेषी हैं आप, अरे भाई जहाँ सरकारी आदमी कह रहा है वहीं तो लगा रही है। यही तो वास्तविक पंचायती राज है, सरकार भी सीधे पैसे नहीं खा सकती पहले रमकूड़ी बाई का अँगूठा लगा होना ज़रूरी है। अर्थात पंचायती राज वो राज है जहाँ पूरी सरकार रमकूड़ी बाई के एक अदद अंगूठे के इर्द-गिर्द घूमती है। ("पंचायती राज") व्यंग्यकार ने "भंते का पायजामा और पुलिस" व्यंग्य रचना में पुलिस की कार्यप्रणाली पर गहरा प्रहार किया है। "सुनसान पार्क में कविता के साथ एक शाम", "वरिष्ठ साहित्यकार", "कवि फिर भी विनम्र है", "इंतज़ार करते करते साहित्यकार बने हुए लोग", "एक होते-होते रह गए कवि की शादी", "एक अति वीभत्स कवि गोष्ठी" वर्तमान साहित्यिक परिदृश्य पर सही, सटीक सारगर्भित सार्थक हस्तक्षेप करती हुई सशक्त व्यंग रचनाएँ हैं। साहित्य में दिखने वाली विसंगतियों पर व्यंग्यकार ने व्यंग्यात्मक प्रहार किये हैं। "ग्रामीण स्वच्छता अभियान" राजनीति और सरकारी तंत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार पर कटाक्ष है। चाटुकारिता के दम पर फलने-फूलने की बढ़ती प्रवृत्ति का जायजा लेता एक व्यंग्य है "यस सर बिल्कुल ठीक कहा आपने"। "श्री कृष्ण का ड्राइविंग लायसेंस" व्यंग्य में रोचकता के साथ आरटीओ और ट्रैफिक पुलिस की खिंचाई की है।

पंकज सुबीर के पास कटाक्ष करने की बेहतरीन क्षमता है। "सम्मानित होते होते बाल-बाल बचना" में गहरे व्यंग्य की बानगी देखिए – हमने कहा - पर गुरु यह तो ग़लत बात है आप लाश पर से उतारा गया शॉल लोगों पर उढ़ा कर उन्हें सम्मानित कर रहे हो। वे बोले - बाबा कबीर कह गए हैं - साधो यह मुर्दों का गाँव, यहाँ सब मुर्दा हैं, एक मुर्दे के कपड़े दूसरे पर चढ़ा दिए, तो कुछ फ़र्क़ नहीं पड़ता और अपना तो पूरा का पूरा सम्मान ही जुगाड़ का होता है, शहर के बड़े मंदिर के पुजारी से भी अपनी सेटिंग है, दो रुपये नग में साबुत नारियल और एक रुपये में भगवान् की उतारी हुई माला खरीद लेते हैं। "एक राष्ट्रीय संगोष्ठी" व्यंग्य रचना में व्यंग्य की बानगी प्रस्तुत है। लगभग बारह ही बज रहे होंगे, जब विभागाध्यक्ष ने मंच से हमारा नाम कुछ दूसरों के साथ पुकार कर मंच पर पधारने का अनुरोध किया। हम उम्मीद लगा रहे थे कि करतल ध्वनि के बीच हम मंच पर पहुँचेंगे। किन्तु कहीं कोई ध्वनि का नामो-निशान भी नहीं था। ध्वनि के न होने का रहस्य तब खुला जब हमने मंचासीन होकर श्रोताओं पर दृष्टिपात किया। कुर्सियाँ उसी प्रकार रखीं थीं, जिस प्रकार टेंट वाले ने रखीं थीं। कहीं कोई एक भी श्रोता उपस्थित नहीं था। मंच पर हम थे, एक मुख्य अतिथि थे, एक अध्यक्ष थे और संचालक की भूमिका में स्वयं विभागाध्यक्ष थे। सामने सदन में कोई नहीं था। (एक राष्ट्रीय संगोष्ठी) व्यंग्यकार की पैनी नज़र से बुद्धिजीवी लोग भी बच नहीं पाए हैं।

"आइए देश को भाड़ में भेजें", "चिंतन चालू आहे", "सखी चुनाव की ऋतु आ गई है", "ओज़ोन की परत में छेद है", "भंतेलाल वरिष्ठ पत्रकार", "शादी - एक अनार सौ बीमारियाँ", "कहाँ है सरकार", "सरकार गिराएँगे और क्या ?", "चुनाव पचीसी", "आओ तुम्हें अतिक्रमण करवाएँ", "मैं प्रतिमा हूँ", "गणेज्जी का चन्दा (आफिशियल भिक्षाटन)" "पटेल का लड़का गाना गाएगा" जैसे व्यंग्य अपनी विविधता का अहसास कराते हैं। "सम्मानित होते होते बाल-बाल बचना", "सखि, बसंत के मौसम में फिर बैरी बजट आया", "बुद्धिजीवी सम्मेलन", "अंधों में काणा राजा अर्थात मुख्य अतिथि", "पंचायती राज", "एक राष्ट्रीय संगोष्ठी", "श्री कृष्ण का ड्राइविंग लायसेंस", "थोड़ा लीजिए ना", "झमकुड़ी बाई - चलो पढ़ाएँ कुछ कर दिखाएँ", "भंते का पायजामा और पुलिस" जैसे रोचक व्यंग्य पढ़ने की जिज्ञासा को बढ़ाते हैं।

व्यंग्यकार ने इस व्यंग संग्रह की रचनाओं में बड़ी सूक्ष्मता के साथ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक इत्यादि सभी क्षेत्रों में व्याप्त ढकोसलों, अन्याय, पाखंड और दोहरे चरित्रों की कलाई खोलते हुए उन्हें बेनकाब किया है साथ ही इन सभी क्षेत्रों में हो रहे मूल्य ह्रास पर लेखक ने अपनी कलम चलाई है। लेखक की भाषा में ताजगी है। पुस्तक की भाषा चुटीली है। व्यंग्य रचना के हर वाक्य में गहरे पंच हैं। 80 व्यंग्य रचनाओं की यह पुस्तक अपने परिवेश से पाठकों को अंत तक बाँधे रखने में सक्षम है। व्यंग्यकार पंकज सुबीर की लेखन शैली सहज और शालीन हैं, लेकिन उनके व्यंग्य की मारक क्षमता अधिक है। पंकज जी इस व्यंग्य संग्रह की रचनाओं से पाठकों से रू-ब-रू होते हुए उन्हें अपने साथ लेकर चलते हैं। यही उनकी सफलता है जो इस संग्रह को पठनीय और संग्रहणीय बनाती है। 304 पृष्ठ का यह व्यंग्य संग्रह आपको कई विषयों पर सोचने के लिए मजबूर कर देता है। सरलता और सहज बुनावट पंकज जी के लेखन की विशेषता है। संग्रह की रचनाओं के समायोजन में उनके संपादक होने का प्रभाव भी साफ झलकता है, जो रचनाओं के चयन से स्पष्ट होता है। संग्रह की रचनाओं में शब्दों की शक्ति और कटाक्ष पाठकों के दिल और दिमाग़ को झंझोड़कर रख देते हैं। पंकज जी की व्यंग्य रचनाओं में उनकी समाजवादी और जनवादी विचारधारा, प्रगतिशील जीवन मूल्य एवं मनुष्य के प्रति प्रतिबद्धता की वैज्ञानिक दृष्टि अभिव्यक्त होती है। यह व्यंग्य संग्रह भारतीय व्यंग्य रचनाओं के परिदृश्य में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करवाने में सफल हुआ है।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संग्रह)

मैंने तुम्हें माफ़ किया

समीक्षक : शिवांगी

लेखक : डॉ. रमाकांत शर्मा

प्रकाशक : अद्रिक पब्लिकेशन, नई दिल्ली

शिवांगी
402 -श्रीराम निवास,
प्लॉट नं. 11/ए, टट्टा निवासी CHS
पेस्तम सागर रोड नं 3, चेम्बूर
मुंबई-400089

डॉ. रमाकांत शर्मा ने अब तक नब्बे के आसपास कहानियाँ लिखी हैं। समय-समय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित उनकी कहानियों के सात संग्रह सामने आ चुके हैं और उन्हें पाठकों का अच्छा प्रतिसाद भी मिला है। 'मैंने तुम्हें माफ़ किया' उनका सातवाँ कहानी संग्रह है जिसमें उनकी चौदह कहानियों का आनंद लिया जा सकता है। विशेष बात यह है कि हर कहानी बिना प्रवचन दिए कोई ना कोई ऐसा संदेश देती है, जिसमें मानवीय मूल्य निहित हैं।

सरल भाषा और रोचक शैली में लिखी गई डॉ. रमाकांत शर्मा की कहानियों की विशेषता उनकी पठनीयता है जो पाठक को शुरू से अंत तक बाँधे रखती है। उन्होंने इतनी सारी कहानियाँ लिखी हैं, पर कहीं दोहराव नज़र नहीं आता। उनकी कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता उन्हें विश्व प्रसिद्ध कहानीकार ओ'हेनरी के समकक्ष ला खड़ा करती है और वह है, लगभग हर कहानी का चौंकाने वाला अंत।

संकलन की पहली कहानी "मैंने तुम्हें माफ़ किया" पिता के जीवनकाल में बनी ग़लतफहमी और उनकी मौत के बाद उसके निवारण की अद्‌भुत कहानी है। पिता की आत्मा अपने पुत्र के शोक के नाटक को देखकर अचंभित है। ज़िंदा रहते पिता को हमेशा इस बात की शिकायत रही कि बेटा उसका इलाज नहीं करवाना चाहता। अब उनकी आत्मा पुत्र के इस नाटक को बर्दाश्त नहीं कर पा रही थी कि तभी जब पिता के दोस्त के सामने पुत्र सच का बयान करता है, तो मृतक की आत्मा स्तब्ध रह जाती है और कह उठती है, "उफ, क्या सोच रहा था मैं। काश मुझे यह सच पता होता। आख़िर, उनके न किए गए अपराध के लिए उन्हें माफ करने का अपराध तो ना हुआ होता मुझसे। अगर मैं आत्मा न होता तो शायद मैं भी फूट-फूट कर रो रहा होता। बेटे, अनजाने में यह अपराध मुझसे हुआ है, बस इतना कह दो, जाओ मैंने आपको माफ किया, तभी मेरी आत्मा शांति से आगे का सफ़र तय कर पाएगी।"

संकलन की दूसरी कहानी 'भैरवी' पढ़ते समय लगता है कि यह रोमांस और अधूरे प्रेम की कहानी है, पर जैसे-जैसे कहानी अंत की ओर बढ़ती है, यह अंधविश्वास और माँ की अतुलनीय ममता का बेमिसाल दस्तावेज़ बनती जाती है। संकलन की अगली कहानी 'चुप रहो तुम' मानव मन का बारीकी से विश्लेषण करती है। कहानी की आत्मा इन शब्दों में प्रकट होती है, "चुप रहो तुम", ये साधारण शब्द नहीं हैं। ये मुँह पर लगा दिया गया तिहरा टेप है, जो मुँह से निकलते शब्दों पर रोक लगाता है, बोलने का अधिकार छीनता है, भावनाओं का क़त्ल करता है, विचारों का गला घोंटता है और अंदर ही अंदर ऐसी छटपटाहट भर देता है, जिससे असह्य घुटन पनपती है और मनोमस्तिष्क पर पाला सा छा जाता है।"

'दादी किताब पढ़ने बैठ गई होगी' दादी के उस मार्मिक अतीत की कहानी है, जिसे उन्होंने बड़े जतन से अपने सीने में छुपा रखा था। भावावेश में जब वह अपने अतीत के पन्ने अपनी पोती

के सामने खोलती है तो वह दादी की संवेदनाओं की छुअन अपने भीतर तक महसूस करने लगती है। यह कहानी जहाँ दादी के साथ हुए सलूक के प्रति आक्रोश उपजाती है, वहीं उनकी संवेदनाओं के साथ एकाकार होकर द्रवित भी करती है।

राजा होने का मतलब प्रजा को अपना ग़ुलाम मानना और संवेदनहीन होना नहीं है। कहा जाता है कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि होता है। प्रजा के दु:ख-दर्द को समझना, न्याय करना, रक्षा करना और उसकी सुख-सुविधा का ख्याल रखना उसकी ज़िम्मेदारी होती है। ख़ुद को शासक और प्रजा को शासित की तरह देखने वाला राजा निर्दयी और कठोर बन जाता है और कभी भी प्रजा का सम्मान हासिल नहीं कर पाता। "राजा साहब" कहानी का राजा प्रजावत्सल है। यह कहानी मनोरंजक तो है ही, आज के तथाकथित राजाओं को अपनी ज़िम्मेदारियाँ समझने और जनता के प्रति उचित व्यवहार करने का गूढ़ संदेश भी देती है।

संकलन की एक अन्य कहानी 'किसी और मिट्टी की बनी' एक अनाम और अनजान रिश्ते की बेहतरीन कहानी है। सचमुच कभी-कभी खून के रिश्तों से भी बड़े हो जाते हैं ऐसे रिश्ते जिनकी नींव नि:स्वार्थ प्रेम और ममत्व पर टिकी होती है।

बढ़ती उम्र मनुष्य के भीतर शारीरिक कमज़ोरियों के साथ मानसिक कमज़ोरियाँ भी बढ़ाती जाती है और यहाँ तक कि उसकी दृढ़ मान्यताओं को भी खंडित कर जाती है। कहानी 'भीतर से कितना कमज़ोर है आदमी' इस सत्य को बहुत सलीक़े से उद्घाटित करती है। यह कहानी जीवन के यथार्थ को तो सामने लाती ही है, वृद्धावस्था में अकेलेपन और उससे उपजे डर का मार्मिक चित्रण भी करती है।

'डबडबायी आँखों की मुस्कान' उस पत्नी की कहानी है जो अपने पति और उसके बड़े भाई के बीच बिगड़े संबंधों को बहाल करने में अपना जी-जान लगा देती है। पर, अपने बड़े भाई से बुरी तरह नाराज़ पति को मनाने में हर बार असफल रहती है। अन्तत: हठी पति के एक छोटे से कदम में उसे आशा की किरण दिखाई देती है और पति का यह कदम उसकी आँखों में आँसुओं के साथ मुस्कान भी दे जाता है।

अनावृष्टि एवं अतिवृष्टि के फलस्वरूप उत्पन्न अकाल के कारण किसानों की आत्महत्या पर आधारित कहानी 'बित्तेभर की चिड़िया' किसानों के मर्मांतक दर्द को सामने लाने के साथ-साथ उन्हें आत्महत्या के बजाय जीवन की स्वरलहरियों को सुनने की प्रेरणा देने वाली उत्कृष्ट कहानी है।

'मेरे हीरो:काशी भैया' चरित्र प्रधान कहानी है। सुदर्शन युवक काशीनाथ अपनी ख़ूबसूरती पर भरोसा करके हीरो बनने मुंबई तो पहुँच जाता है, किन्तु वहाँ की गन्दगी उसे रास नहीं आती और वह अपने शहर लौट आता है। लोगों के ताने सुनकर उसकी ज़िंदगी अजाब हो जाती है। वह अपनी ज़िंदगी से हताश होने लगता है। लेकिन, उसे ख़ुद भी पता नहीं था कि वह छोटा-मोटा नहीं, बहुत बड़ा हीरो बनने के लिए पैदा हुआ है।

'खुशी ढूँढ़ते हुए' कहानी गाँव में रहने वाले मजदूर परिवार माँगी लाल, उसकी पत्नी शामली और किशोर बेटी फूलमती की कहानी है। फूलमती पर जमींदार की बुरी नज़र को लक्ष्य कर यह परिवार रातोंरात गाँव छोडकर शहर आ जाता है। शहर में माँगीलाल को धर्मशाला में चपरासी एवं उसकी पत्नी को साफ़-सफाई का काम मिल जाता है और फूलमती को धर्मशाला के सेठ द्वारा चलाए जाने वाले स्कूल में नि:शुल्क पढ़ाई की सुविधा। वह पढ़-लिखकर ख़ूब कमाना और सारी खुशियाँ अपने और अपने माता-पिता के दामन में डालने का लक्ष्य लेकर चलती है। वह एयर होस्टेस बन भी जाती है। लेकिन, खुशियाँ ढूँढ़ने के इस क्रम में वह लक्ष्य पाने के लिए स्वयं को हर खुशी से दूर कर लेती है। इस कहानी में जीवन के इस महत्त्वपूर्ण पहलू को शिद्दत से उभारा गया है कि किसी एक लक्ष्य को पाने के लिए सिर्फ उसी में डूब जाना सारी खुशियों के झोली में आ जाने की गारंटी नहीं हो सकता। कहानी की ये पंक्तियाँ बहुत कुछ सोचने-समझने को मजबूर कर देती हैं, "खुशी के पैमाने वक्त के साथ बदलते हैं माइ फ्लावर। मैं मानता हूँ कि पास में पैसा हो तो ज़िंदगी को बेहतर बनाया जा सकता है, पर ज़िंदगी को सही ढंग से जीना ही उसे खुशनुमा बना सकता है। छोटी-छोटी खुशियाँ भी बहुत मायने रखती हैं, लेकिन जब हम केवल एक लक्ष्य पर ही अपनी सारी खुशियाँ टिका देते हैं तो ख़ुद को अकेला कर लेते हैं..... जैसे छोटी-छोटी बूँदों से सागर बनता है, वैसे ही ज़िंदगी का सागर भी इन छोटी-छोटी खुशियों की बूँदों से आकार लेता है।"

ईदी' कहानी जहाँ आतंकवाद का पर्दाफाश करती है, वहीं एक मासूम प्रेम कहानी भी है। गंगा-जमुनी तहज़ीब और एकता का बयान करती यह सकारात्मक सोच की बेहतरीन प्रस्तुति है। इसमें उर्दू शब्दों का प्रयोग बहुतायत से हुआ है, लेकिन इससे कहानी के प्रवाह में कहीं भी बाधा नहीं आई है, बल्कि उसे प्रामाणिकता ही मिली है। इसी संकलन की एक अन्य कहानी 'मुट्ठी भर इंद्रधनुष' एकतरफा प्रेम की अनूठी कहानी है। इसे पढ़ते समय पाठक को अपना ज़माना याद आए बिना नहीं रहता।

संकलन की अंतिम कहानी 'घिरा हुआ वज़ीर' प्राइवेट इंटर कॉलेज में फिजिक्स पढ़ाने वाले शिक्षक कृष्णदयाल उपाध्याय की कहानी है। यह कहानी उस शिक्षक की कहानी है जो सारी ज़िंदगी ईमानदारी पढ़ाता रहा और ईमानदारी जीता रहा। पर, परिस्थितियाँ उसे इस कदर मजबूर कर देती हैं कि वह अपने अंतर्मन की आवाज़ के विरुद्ध जाकर कॉलेज के चेयरमैन की ग़लत बात मानने के लिए बाध्य हो जाता है। कहानी में उपाध्याय जी और उनके शिष्य के बीच का यह वार्तालाप बहुत कुछ कह जाता है, "जब वज़ीर चारों तरफ से घिर जाता है तो मात निश्चित होती है। पर सर, सिर्फ एक मात से कुशल खिलाड़ी घबरा नहीं जाता, जीतने के लिए वह फिर से सन्नद्ध हो जाता है, फिर से बिसात बिछाता है और सामने वाले के लिए चुनौती बनकर खडा हो जाता है, वह जीतता है सर"। इस संकलन की सभी कहानियाँ अच्छी हैं।

000

पुस्तक समीक्षा

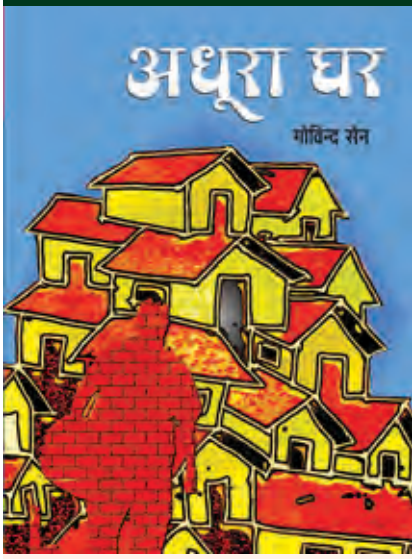

(कहानी संग्रह)

अधूरा घर

समीक्षक : डॉ. हंसा दीप

लेखक : गोविंद सेन

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर

Dr. Hansa Deep
22 Farrell Avenue
North York, Toronto
ON – M2R1C8, Canada
Mobile- 001 647 213 1817
Email- hansadeep8@gmail.com

गोविंद सेन जी विविध विधाओं में लिखने वाले सुपरिचित हस्ताक्षर हैं। आपके दो ग़ज़ल संग्रह, दो निमाड़ी हाइकु संग्रह, दोहा संग्रह, व्यंग्य संग्रह और तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। गद्य और पद्य दोनों में आपकी लेखनी निरंतर सक्रिय रही है। कई सम्मान भी आपके खाते में हैं। अधूरा घर कहानी संग्रह आपकी अद्यतन पुस्तक है। इस संग्रह की कहानियों को पढ़ते हुए कथाकार के कहन की गहराई से पाठक का परिचय होता है। साथ ही, कथाकार की प्रवाहपूर्ण भाषा शैली और सहजता से की गई क़िस्सागोई पाठक को अनवरत बाँधे रखती है।

सशक्त कथाकार गोविंद सेन जी की तकरीबन हर कहानी को पढ़ने का सौभाग्य मुझे मिला है। इन रचनाओं में अभिव्यक्त भावों की अनुभूति को मैंने महसूस किया है। शायद यही वजह रही है कि उनके लेखन से गहरे तक जुड़ना मेरे लिए संभव हुआ। परिवेश की समानता के साथ सोच की समानता अगर मिल जाए तो लेखक और पाठक के बीच तादात्म्य स्थापित होना आसान हो जाता है। मध्यप्रदेश के झाबुआ और धार जिले से मेरे जीवन का गहरा संबंध रहा है। इसी पृष्ठभूमि से जुड़ी गोविंद जी की कहानियाँ मुझे निरंतर अपनी और खींचती रही हैं। ज़मीनी सच्चाइयों को उकेरती ये कहानियाँ सहज ही मन को आंदोलित करने का माद्दा रखती हैं।

पुस्तक की शीर्षक कहानी अधूरा घर दाम्पत्य जीवन की वह दास्तान है जहाँ पति-पत्नी साथ रहते हुए, अपने साथी की महत्ता को शायद महसूस न करें लेकिन जैसे ही कुछ समय का अलगाव होता है, अपने साथी की हर बात कानों में गूँजती प्रतीत होती है। घर के हर कोने में, उसकी उपस्थिति का बरबस ही अहसास होता है। पति-पत्नी के रिश्ते की गहराई को सरल शब्दों में बुनती यह कहानी पत्नी के बगैर, घर के अधूरेपन को बारीकी से चित्रित करती है। अधूरा घर का नायक पत्नी की अनुपस्थिति में घर की हर चीज़ में पत्नी को ढूँढ़ता है। उसके हर क्रिया-कलाप उसकी आँखों के सामने से गुज़रते हैं। पत्नी को याद करने का उसका तरीका ऐसा है मानो उसके बिना घर की संपूर्णता में कई रुकावटें हों। पात्र की बेचैनी प्रभावपूर्ण ढंग से शब्दों में चित्रित हुई है- "वह पराठे तो खा गया पर शुगर की गोली लेना भूल ही गया। सुधा घर होती तो निश्चित ही याद दिला देती। वह होती तो उसे किसी बात की चिंता ही नहीं करना पड़ती। उसके पास हर समस्या का समाधान होता है। उसे तीव्रता से लग रहा था कि सुधा के बिना यह घर पूरा नहीं है। सुधा के बिना उसे घर अधूरा लग रहा था।"

कथापाठ ऑडियो पत्रिका में मैंने 'दाढ़ी कहानी' का पाठ किया था जिसे सर्वाधिक पसंद किया गया था। भाषा हो, रंग हो या फिर रहन-सहन, इन सबको धर्म से जोड़ा जाता है, इस कहानी में लेखक ने दाढ़ी को धर्म से जोड़कर संप्रदायों के आपसी दुराव-छिपाव को बेहतरीन

तरीके से प्रस्तुत किया है। इंसान के रूप-रंग और आकार के कारण दंगों में आए दिन निर्दोष लोग मारे जाते है। यह छलावा दाढ़ी भी रच सकती है, इसी कटु सत्य को इस कहानी में चित्रित किया गया है। बरसों से इंसान जाति, धर्म और संप्रदायों में बँटता हुआ आपसी बैर भाव रखकर लड़ता रहा है। धार्मिक स्थान किसी एक, विशेष संप्रदाय की बपौती बनते रहे लेकिन प्रकृति कभी इस बँटवारे को स्वीकार नहीं कर पायी। लेखक ने इस पक्ष को करारे तंज के साथ ख़ूबसूरती से अभिव्यक्त किया है- "पक्षी मस्जिद के गुंबद पर भी बैठते हैं और मंदिर के कलश पर भी। उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। इस बात से मंदिर और मस्जिद को भी फ़र्क नहीं पड़ता। पर इंसान को फ़र्क पड़ता है।"

कहानी इडी संबंधों को तराजू में तौलने की सघन अभिव्यक्ति है। वक्त का फायदा उठाकर नायक एक लड़की से संबंध जोड़ लेता है। लड़की उसे अपना सच्चा प्यार मानकर लंबे समय से उसके लिए प्रतीक्षारत है। नायक को उस रिश्ते में अपना कोई भविष्य नज़र नहीं आता। क्षणिक शारीरिक संबंधों से उपजे भावनात्मक रिश्तों को लेखक ने कहानी इडी में बख़ूबी सँजोया है। साथ ही नायक की अवसरवादिता को स्वर देकर उसके द्वारा भुला दिए गए रिश्ते की कड़ी को लगातार जोड़ने की कोशिश भी की है। एकतरफा रिश्ते ज़्यादा देर नहीं टिकते। अगर टिक भी जाएँ तो जोड़-तोड़ के गणित में स्वाहा हो जाते हैं।

कहानी 'तोतिया स्कूटर बनाम ग़रीबी का कच्चा चिट्ठा' इस कहानी में अभावों से जूझता परिवार अपनी आकांक्षाओं, अपेक्षाओं को मद्देनज़र रखते सपने भी देखता है और सपनों को पूरा करने की कोशिश भी करता है परंतु अंतत: परिस्थितियों से हार मानकर सपनों का परित्याग करके पुन: अपनी सामान्य जीवन शैली अपनाने को मजबूर हो जाता है। यह मजबूरी कहानी में नायक की बेबसी को मार्मिक ढंग से चित्रित करती है- "उसी जगह पर जहाँ पर पहले तोतिया स्कूटर खड़ा किया करता था। वह बहुत ख़ामोशी से साइकिल साफ करने लगा था।"

बेघर एक विवश स्त्री की कहानी है जो सब कुछ होते हुए भी बेघर हो जाती है। रिश्तों के स्वार्थी पहलुओं से जूझते हुए एक स्त्री का अनवरत संघर्ष इस कहानी को दमदार बनाता है। संवेदनाओं और कर्कशताओं के बीच झूलती इंसानी प्रवृत्ति हर क्षण मानवीयता को तराजू पर तौलती नज़र आती है- "न ऊपर आसमान है और न नीचे धरती है। न पाँव रखने के लिए ज़मीन बची है और न सर उठाने के लिए आसमान बचा है।" खोखली पारिवारिक कड़ियों पर लगता ज़ंग धीरे-धीरे आपसी जुड़ाव को ढीला करते हुए अलगाव की ओर ले जाता है। और तब एक अकेला निरा इंसान अपनी ही धरती पर दो गज़ ज़मीन के लिए तरस जाता है। कहानी पढ़ते हुए मन बहुत व्यथित होता है। मार्मिकता से भरपूर यह कहानी खून के रिश्तों पर कई सवाल उठाती है।

धूप में पिता कहानी पिता-पुत्र के संबंधों का बारीकी से रेखांकन करती है। अकसर देखा गया है कि माँ की छवि ममतामयी, स्नेह की प्रतिमूर्ति के रूप में होती है, और पिता को निष्ठुर और कठोर दिल वाला मान लिया जाता है। लेकिन जब परत-दर-परत इसी की पड़ताल की जाए तो इसके पीछे भावनाओं का आवेग किसी न किसी रूप में पिता की मजबूरी को प्रतिध्वनित करता है। लेखक ने कुछ इसी तरह पिता-पुत्र के संबंधों का, माँ और पिता के संबंधों का बेबाकी से वर्णन किया है- "कई बार लगता है कि पिता माँ की कठपुतली हैं। कठपुतली की अपनी कोई इच्छा नहीं होती। वह तो नचाने वाले की इच्छा के मुताबिक नाचती रहती है।"

काल्या का मेमो, जालिमसिंग की बेटी, भगोड़े, कहानियाँ अपने आप में अनूठी हैं। घटनाक्रम का सूक्ष्म विवरण लेखक गोविंद सेन जी की विशिष्ट पहचान है। बड़ा होता सपना में जहाँ कथाकार सपनों की ऊँचाइयों को नापते हुए उन्हें साकार होते देखना चाहता है वहीं खेवनहार कहानी धैर्य और परिस्थिति के अनुकूल निर्णय लेने की क्षमता को गहराई से अनुभूत करवाती है।

'घंटी' कहानी वर्तमान राजनैतिक परिवेश, धार्मिक पाखंड और अवसरवादिता के हथकंडों को तीखे और धारदार लहजे से उजागर करती है। लोग तो लोग, मंदिर भी अभागे होते हैं जो देखरेख के अभाव में हर कहीं से बिखरते हुए अपने अस्तित्व की रक्षा नहीं कर पाते लेकिन अपने भक्तों को ज़रूर आबाद करते हैं। ऐसा मंदिर जहाँ बजाने के लिए घंटी भी न हो वहीं आकर राजनेता अपने सुनहरे भविष्य को सजाते हैं। "जो महादेव जब एक मामूली आदमी को तीन बार विधायक बनवा सकते हैं। पंद्रह साल में उसकी संपत्ति पंद्रह गुना बढ़वा सकते हैं।" तो आख़िर उनके लिए घंटी की चिंता क्यों की जाए। लेखक का यह हास्य-व्यंग्य लहजा पाठक को प्रभावित करता है।

इस कथा संग्रह की सभी कहानियाँ पाठक को उद्वेलित करती हैं। ज़मीनी सच्चाइयों को, मानवीय उद्वेगों को और भीतर छुपी असंख्य संवेदनाओं के सागर को गोविंद सेन जी ने अपनी इन रचनाओं में बख़ूबी चित्रित किया है। अपने आसपास हो रही घटनाओं से लेखक का मन कचोटते हुए, पात्रों और संवेदनाओं के जरिए अपने मन की बात कह जाता है। एक संदेश दे जाता है। देशज शब्दों और संवादों का खुलकर प्रयोग किया गया है। यही वजह है कि पाठक इन कहानियों के पात्रों को अपने आसपास देखता है, महसूस करता है और कहानी पढ़ते हुए उन्हें जीने लगता है।

कहानी की सार्थकता देश और सीमाओं से परे संवेदनाओं से जुड़ी होती है। गोविंद जी की कहानियों में धरती से जुड़ा आदमी सपने भी देखता है, उन्हें पूरी करने की कोशिश भी करता है और अपनी विवशताओं से लड़ता भी है। पारिवारिक, सामाजिक और धार्मिक विसंगतियों का पर्दाफाश करती ये कहानियाँ अधूरा घर कहानी संग्रह को पूर्णता प्रदान करती हैं। इस नए कहानी संग्रह के लिए गोविंद सेन जी को हार्दिक बधाई। उम्मीद करती हूँ कि उनकी रचनाएँ पाठकों द्वारा बहुत पसंद की जाएँ और कलम अबाध गति से चलती रहे। उनके इस साहित्यिक अवदान के लिए मेरी ओर से असीम शुभकामनाएँ।

000

पुस्तक समीक्षा

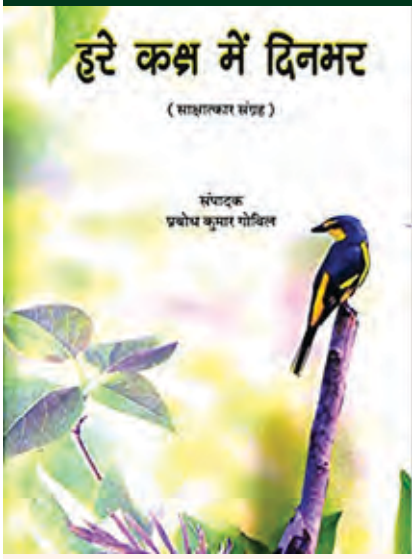

(साक्षात्कार संग्रह)

हरे कक्ष में दिन भर

समीक्षक : रमेश खत्री

लेखक : प्रबोध कुमार गोविल

प्रकाशक : मोनिका प्रकाशन, जयपुर

रमेश खत्री
53/17, प्रतापनगर,
जयपुर 302033, राजस्थान
मोबाइल- 9414373188
ईमेल- sahityadarshan.@gmail.com

"मनुष्य अपने भावजगत् की रचना स्वयं करता है, किन्तु वह इस कार्य को देशकाल की किन्ही परिस्थितियों में ही सम्पन्न करता है, और ये परिस्थितियाँ उसकी इच्छा पर निर्भर नहीं होती। ...बाह्य जगत् का इंद्रिय बोध और मनुष्य के मन का भावजगत् एक ही यथार्थ के दो पक्ष हैं जो एक दूसरे से पूर्णत: स्वतंत्र न होकर परस्पर संबद्ध हैं।"

-डा. रामविलास शर्मा

हिन्दी में साक्षत्कार साहित्य का भण्डार बहुत समृद्ध नहीं है फिर भी वर्तमान समय की पत्र-पत्रिकाओं में यदाकदा साहित्यकारों के साक्षात्कार छपते रहते हैं। उन साक्षात्कारों में कुछ ऐसे भी होते हैं जो लम्बे समय तक स्मृति में बने रहते हैं और वो रचना की और रचनाकार की सोच की दिशा को स्पष्ट करते नज़र आते है। "हरे कक्ष में दिन भर" प्रबोध कुमार गोविल के संपादन में मोनिका प्रकाशन, जयपुर से विगत दिनों प्रकाशित साक्षात्कार संग्रह प्रकाशित होकर आया है जिसमें हिन्दी साहित्य के 56 मूर्धन्य रचनाकारों के साक्षात्कार संग्रहित हैं जो अपने आपमें महत्त्वपूर्ण है। यह साक्षारत्कार राही सहयोग संस्थान के द्वारा करवाये गए ऑनलाईन सर्वेक्षण की विगत तीन सालों की सूची में से चयनित वो साहित्यकार हैं जिन्होंने तीनों वर्षों की सूची में स्थान बनाये रखा था। ऐसे सौ रचनाकारों में से छप्पन रचनाकारों के साक्षात्कारों को इस किताब में संग्रहित किया गया है।

इस किताब के समकालीनता पर बात करते हुए सम्पादक ने अपनी बात में कहा है, "मेरे दिमाग़ में ये बात आई कि हिन्दी में बहुत सारे बेहद महत्त्वपूर्ण ऐसे साहित्कार भी हैं, जिन्होंने सार्थक और नायाब आधुनिक साहित्य रचा है, निरंतर लिख भी रहे हैं पर इस बात से बिल्कुल बेख़बर हैं कि उनने काम को सामने लाया जा रहा है या नहीं। ऐसे में मुझे लगा कि आधुनिक साहित्य में से महत्त्वपूर्ण काम को चुनकर एक निष्पक्ष, विचारधारा विहीन पद्धति से कुछ समर्थ पाठकों, लेखकों, शिक्षकों, विद्यार्थियों, संपादकों, समीक्षकों, पुस्तकालयाध्यक्षों, पुस्तक विक्रेताओं, पत्र- पत्रिकाओं, इंटरनेट सर्फर्स, सजग बुद्धिजीवियों से सहयोग लेकर हर साल कुछ अच्छे और बड़े लेखकों की सूची तैयार की जाय।"

समीक्ष्य साक्षात्कार संग्रह में जिन 56 साहित्यकारों के साक्षात्कार संग्रहित है, उनमें प्रमुख है नरेन्द्र कोहली, काशीनाथ सिंह, हेतु भारद्वाज, कृष्णा सोबती, नामवर सिंह, मराठी के महत्त्वपूर्ण रचनाकार दामोदर खड़से, रत्नकुमार सांभरिया, डा. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, मैत्रैयी पुष्पा, रूपसिंह चंदेल, अशोक वाजयेयी, डा. प्रणव भारती, असगर वजाहत, नासिरा शर्मा, लीलाधर मंडलोई, सूरज प्रकाश, तेजेन्द्र शर्मा, प्रो. माधव हाड़ा, अनामिका, दूधनाथ सिंह, कात्यायनी, विश्वनाथ त्रिपाठी, केदारनाथ सिंह, पंकज बिष्ट, ज्ञानरंजन, विनोद कुमार शुक्ल, ममता कालिया, विष्णु खरे, राजेश जोशी, सुधीश पचौरी, मेनेजर पाण्डेय, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, भागीरथ परिहार, गोविन्द माथुर, डा. सुदेश बत्रा, गीरिश पंकज, नंद भारद्वाज, हरिराम मीणा, प्रेमचंद गाँधी, कुसुम खेमानी, सुधा अरोड़ा, डा. सत्यनारायण, रजनी मोरवाल, संतोष श्रीवास्तव, मन्नू भण्डारी, उर्मि कृष्ण, कृष्णा अग्निहोत्री, राजी सेठ, मालती जोशी, सूर्यबाला, डा. कुसुम अंसल, लालित्य ललीत, जयप्रकाश मानस, मिथिलेश्वर, प्रेन जनमेजय और सम्पादक स्वयं भी सम्मिलीत हैं।

इन साक्षात्कारों की खिड़की से आती हुई हवा में विचारों की ताज़गी तो नज़र आती ही है साथ ही यह भी पता चलता है कि वर्तमान समय में क्या रचा जा रहा है और वह कितना पढ़ा जा

रहा है इसके साथ ही उसकी रचना प्रक्रीया क्या थी इस पर रचनाकारों में विस्तार से प्रकाश डालने की आवश्यकता को महसूस किया है। नामवरजी स्वयं कहते हैं, "फिराक साहब का ग़ालिब का बहुत असर है। मीर तो मीर ही है। ग़ालिब ख़ुद मानते थे, "हम हुए तुम हुए कि मीर हुए, उसकी जुल्फों के सब असीर हुए।" जो सादगी मीर में हैं, ग़ालिब में नहीं। यह मीर और ग़ालिब का फ़र्क है। मीर को उर्दू में ख़ुदा-ए-सुखन कहा जाता है। यदि मीर नहीं होते तो ग़ालिब नहीं होते। लेकिन मीर के दीवान में सारी चीज़ें देखने पर काफी 'कूड़ा' मिलेगा। ग़ालिब में एक भी कच्चा शेर नहीं आने दिया अपने दीवान में। यह सावधानी बरती है, वैसे ग़ालिब यह भी कहते हैं, "रेख्ता के तुम ही उस्ताद नहीं हो ग़ालिब, सुनते हैं अगले ज़माने में कोई मीर भी था।" तो वहीं दूसरी ओर नरेन्द्र कोहली एक सवाल के जवाब में कहते हैं, "हिन्दुओं ने अपना इतिहास कभी नहीं लिखा। भारत का इतिहास हमेशा विदेशियों द्वारा लिख गया और विदेशियों ने भारत का आत्मगौरव बढ़ाने के लिए नहीं लिखा बल्कि इसलिए लिखा कि भारतीयों का आत्मविश्वास, आत्मगौरव ध्वस्त हो। इसलिए भारतियों को चाहिए कि वे अपना इतिहास स्वयं लिखें व रचें।" उपन्यासकार काशीनाथ सिंह भी एक सवाल के जवाब में 'काशी का अस्सी' और 'रेहन पर रग्धू' पर बात करते हुए कहते हैं, "इसमें दो राय नहीं कि यह बड़ी खतरनाक चीज़ है, जो भाषा "काशी का अस्सी" में है वह भाषा 'रेहन पर रग्घू' में नहीं है। इस देश की जो विदेशों में प्रतिष्ठा है, हिन्दू राष्ट्र के रूप में नहीं है। बहुलतावाद इसकी प्रकृति में रहा है। आरंभ में तो आक्रमणकारी लौट भी जाते थे और बस भी जाते थे। जहाँ तक मुग़लों का सवाल है बहुत से लोग यहाँ रह गए। और इसे ही अपना देश मान लिया। बहुत से हिन्दुओं ने इस्लाम से प्रभावित होकर धर्म परिवर्तन किया। जिस दिन बहुतलावाद ख़त्म हो जाएगा भारत भारत नहीं रहेगा।" कात्यायनी महिलाओं की वकालत करते हुए कहती है, "एक आम स्त्री पारम्परिक सामाजिक-पारिवारिक जीवन में यदि एकदम पारदर्शी और सहज हो जाए तो उसका जीना मुहाल हो जाएगा, पुरुष सत्ता का भेड़िया उसे खा जाएगा। रहस्य आम स्त्री का प्रतिरक्षा कवच है लेकिन एक स्त्री जब एक बार रूढ़ियों-परम्पराओं के विरूद्ध विद्रोह करके लड़ने और रचने के संकल्प के साथ बाहर निकल पड़ती है तो संघर्ष और सृजन के लिए कम से कम कुछ हमसफ़रों के साथ अपनेपन का रिश्ता, कुछ दोस्ती कुछ प्यार तो चाहिए ही होता है।" तो वहीं दूसरी तरफ विनोद कुमार शुक्ल कहते हैं, "आलोचक का धर्म रचना को बतलाने का होना चाहिए। रचना को खारिज करने या स्थायित्व करने का काम आलोचक का नहीं है। यह काम पाठक का है। आलोचक की बताई हुई दिशा में कोई रचनाकार जा रहा हो, ऐसा मुझे कोई नहीं दिखता।" राजेश जोशी समकालीन साहित्य पर बात करते हुए कहते हैं, "समकालीन साहित्य में जनतांन्त्रिक स्पेस बड़ी है। वह अधिक सामाजिक हुआ है। उसकी श्रेष्ठ रचना को विश्व की किसी भी भाषा के श्रेष्ठ रचना के समकक्ष रखा जा सकता है।" दामोदर खड़से लेखन प्रक्रिया के बारे में चर्चा करते हुए कहते हैं, "समग्र लेखन को लेकर किसी भी लेखक की सन्तुष्टि उसकी लेखकीय गति में अवरोध है। क्योंकि लेखन एक सतत प्रक्रिया है, जिसे चलते रहना है और चलते रहना चाहिए। लेकिन जहाँ तक कुछ रचनाओं का प्रश्न है, मुझे भी अपनी कुछ कहानियाँ, कविताएँ अच्छी लगती हैं, जिनको लेकर मुझे संतुष्टि का अनुभव होता है।" तो वहीं दूसरी ओर दलित लेखक रत्नकुमार सांभरिया अपनी रचना प्रक्रिया पर बात करते हुए बताते हैं, "जीवन, जज़्बा और जिजीविषा के फलस्वरूप मेरी कहानियों के पात्र ना हताश होते हैं, ना निराश होते हैं ना थकते-हारते हैं। विषम परिस्थितियों का सामना करते मान-सम्मान, स्वाभिमान और मर्यादा का जीवन जीते हैं। मेरा मानना है कि कहानी का पात्र जाति से चाहे कितना ही छोटा हो, उसकी प्रकृति पीपल के बीज जैसी होनी चाहिए। पीपल का एक छोटा सा बीज पत्थर को फाड़कर उग जाता है और अपना आकार लेता जाता है।" अशोक वाजपेयी अपनी बात कहते हुए बताते हैं, "मेरा साहित्य संसार के अनुराग से उपजता है और मैं उसकी अनेक विडम्बनाओं के साथ उसका गुणगान ही करता रहा हूँ। रति, शृंगार, देह आदि पर रचने की भारत में लम्बी और प्राचीन परम्परा है, मैंने अपने समय में उसे पुनरायन करने की कुछ चेष्ठा की है।" तो वहीं दूसरी ओर तेजेन्द्र शर्मा अपनी रचना प्रक्रिया पर बात करते हुए बताते हैं, "रचना प्रक्रिया हर कहानी की अलग होती है। कोई कहानी एक सिटिंग में पूरी हो जाती है तो कोई-कोई महीनों सालों घिसटती रहती है। ...हिन्दी में हाथ से लिखने का अभ्यास नहीं था। बड़े-बड़े अक्षर लिखता था और लाइन खींचता था। कहानी के साथ साथ मेरी हैंण्डराइटिंग भी विकसित होती गई।"

समीक्ष्य किताब में 56 साक्षात्कार संग्रहित हैं जो अपने आपने अनूठे हैं। इनमें वर्णित विचार बेशक अलग-अलग दिशाओं की ओर हमारा ध्यान ले जाते है लेकिन इन सबके बीच से आता हुआ मूल स्वर हमें एक ही लगता है और वह है वर्तमान समय के इस आपाधापी वाले युग में साहित्य को और संस्कृति को कैसे बचाया जा सकता है। ये रचनाकार बेशक अलग-अलग परिवेश से आते हैं और उनकी भाषा शैली और कहन के अंदाज़ में काफी विविधता हो सकती है किन्तु लगभग सभी रचनाकारों के मन में विश्व साहित्य के समकक्ष हिन्दी की रचनाओं के फलक में आए बदलाव को रेखांकित ज़रूर किया गया है।

कहना न होगा कि 'हरे कक्ष में दिनभर' में सम्मिलित साक्षात्कार के माध्यम से रचनाकार के अध्ययन कक्ष में झाँकने का प्रयास किया गया है और इसके बनिस्बत निथरकर आए ये साक्षात्कार अपने आपने अनूठे हैं और समय की आँच में तपकर हीरे की तरह अपने समय को निथारकर बाहर आए हैं।

निश्चित तौर पर यह किताब अपने समकाल को चुनौती देती और पाठक के लिए नई सोच के रास्ते खोलेगी। जिसे देर तक और दूर तक चिह्नित किया जाएगा।

000

पुस्तक समीक्षा

(साक्षात्कार संग्रह)

पारिजात

समीक्षक : प्रियंवदा पाण्डेय

लेखक : पंकज त्रिवेदी

प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर

प्रियंवदा पाण्डेय
देवरिया,
उत्तर प्रदेश 274001
मोबाइल– 7068595353
ईमेल- priyambdapandey1170@gmail.com

कवि हृदय, में जब भी, कोई तार टूटता है, कविता का कल-कल निनाद ध्वनित होने लगता है। मन का दरकना, कविता को जन्म देता है, कविता कभी मन के अवगुण्ठन खोलती है, तो कभी विसंगतियों पर प्रहार करती है, कभी तरल होकर आँख से झरती, तो कभी ओज की गर्जना करती है। हृदय सागर के मंथन से उद्भूत नवनीत होने के साथ-साथ कविता एक गुरुतर दायित्व भी है। आदिकाल से कवि और कविता ने कभी राजाओं के साथ युद्ध लड़ा तो कभी प्रेमी युगल के हृदय का उद्गार बनी। कविता ने कभी प्रकृति का शृंगार किया तो कभी प्रलय की बात की। समय परिस्थिति के अनुरूप कविता ने अपनी धार बदली, और सहृदय की प्रेरणा, सखा, सहचर और मार्गदर्शक की भूमिका अदा की। यहाँ इस संग्रह में भी वेदना तरल होकर कविता हो चली है। और कविता ने पुस्तक का रूप ले लिया है।

तुम्हें / ख़ुश देखकर / मैं भी ख़ुश हो गया / क्योंकि / तुझमें मैंने परम तत्व / को महसूस किया / शायद / तुमने भी महसूस किया / और हम दोनों खिल उठे / फूलों की तरह।

प्रणयीजन का पुष्प की तरह खिलना उतना ही अलौकिक है, जैसे प्रकृति में फूलों का प्राकट्य सरल शब्द का यह अर्थगौरव चकित करने के साथ ही एक काल्पनिक दुनिया की सृष्टि में समर्थ है। अनायास ही मानस पटल पर फूलों की घाटी सा दृश्य उपस्थित हो जाता है। सभी पुष्प एक दूसरे से प्रणय को आतुर, एक दूसरे में पगे और आह्लाद में झूमते दिखाई देते हैं। कविता जब चित्र उपस्थित कर देती है मन का पक्षी उसमें विहार करने लगता है, कल्पना भंग होती है, तब समझ में आता है यह पंकज त्रिवेदी की इस सरल कविता का स्वप्नलोक था।

पुस्तक में विभिन्न भावबोध की कविताओं के साथ प्रेम, उसकी प्यास, आशा, समर्पण एक विरहाकुल हृदय की व्यंजना अधिक मुखर है। कहीं वह अपनी प्रिया से प्रेमालाप तो कहीं स्वयं से एकालाप करती दिखाई देती हैं।

एक कविता में पंकज त्रिवेदी लिखते हैं- हाँ, तुम ज़रूर आओगी! / मुझे मालूम है / न समय तय है न तिथि / बस एक उम्मीद बाँध बैठा हूँ / जो दूर-दूर तक दीये की तरह / टिमटिमाती हुई नज़र आती है मुझे / मैं उम्मीद पर अब भी कायम हूँ / हाँ, तुम ज़रूर आओगी!

यह एक लंबी कविता है जिसमें कवि ने अपनी प्रेयसी के प्रति एक अंधा विश्वास जो उनके जीवन की प्रेरणा है, उसे व्यक्त किया है वह कहते हैं - क्योंकि / झील में पानी होता है / मछलियाँ होती हैं / और सीवर भी / तुम शायद / सीवर का शिकार हो गई हो।

समझा जा सकता है कि कवि को यह विश्वास है, यद्यपि कि उनकी प्रिया तमाम तरह के जाल में फँसी हुई हैं, तथापि उन सभी बंधन से आज़ाद होकर वह उनके पास अवश्य आएगी। पूरी कविता में पंकज त्रिवेदी ने अपनी समस्त इच्छा, उदात्त प्रेम और उम्मीद के विविध आयाम को अत्यंत सरलता के साथ लिखा है। कविता प्रेम के उन सभी रास्तों से गुज़रती है, जिस पर कहीं काँटे, कहीं फूल, कहीं धूप, कहीं धूल, कहीं पहाड़ तो कहीं पठार पड़ते हैं, कवि फिर भी अपना धीरज नहीं खोता और बोल पड़ता है- हाँ तुम ज़रूर आओगी।

एक और कविता है- मैं निरंकुश हूँ। / तुम जिसे अनुशासन कहती हो / मैं उस अनुशासन में जी नहीं सकता / क्योंकि मैं इंसान हूँ इसलिए हमेशा अनुशासन में जी नहीं सकता / तुम मुझे प्यार नहीं करती / मुझ पर अंकुश रखती हो शायद। / प्यार करना वैसे तो इस समाज में अनुशासन तोड़ना ही है। / यह कविता उतनी ही सच्ची है लगती है, जितना रात दिन का होना।

उतनी ही निर्मल जितनी गंगा की धार, यह सच है, कि प्रेम बंधन और, अनुशासन का नाम नहीं, वह उन्मुक्त पवन है, प्रेमीजन का एक दूसरे को स्वतंत्र छोड़ना ही प्रेम है। जैसे गोपालक अपनी गायों को छोड़ दिया करते हैं, जंगल में, स्वतंत्र विचरण के लिए, और शाम ढलने के साथ ही वह चली आती बिना बुलाए क्योंकि, वह स्नेह के अटूट बंधन से बँधी होती हैं। प्रेम भागता नहीं वह विश्राम चाहता है, उदात्त कोटि के प्रेमीयुगल एक दूसरे में ही पूर्णता को प्राप्त होते हैं, ऐसे में अविश्वास और अनुशासन की भूमिका कैसी?वह तो पानी और रंग की प्रकृति लिए होते हैं सदा विलेय। कविता की सचबयानी उसका सौन्दर्य है।

एक और कविता में अपनी प्रेयसी से संवाद करते हुए आप कहते हैं- सुनो, / मैं तुमसे इतना प्यार करता हूँ कि / माँ की गोद में जब बच्चा सोता है तब / वो नहीं पूछता- / माँ, मुझे कितना प्यार करती हो? / प्रेम का इससे उदात्त रूप क्या हो सकता भला?

इसे पढ़कर आचार्य रजनीश का वह प्रसंग याद हो आता है, जिसमें उन्होंने कहा था--स्त्री का प्रेम तब पूर्णता को प्राप्त होता है जब वह अपने पति अथवा प्रेमी की माँ बन जाए। माँ से तात्पर्य संपूर्ण पोषण, सुरक्षा तृप्ति सब एक साथ, सबसे बढ़कर उसकी ग़लती, उसके कमज़ोर पक्ष को सहर्ष स्वीकार करते हुए स्नेह से सींचना।

कुछ कविताएँ चकित करती हैं जैसे- मैंने अपना / नया रूप धारण कर लिया / प्यार की जड़ें गाड़ दी तुझमें / और / तुम धीरे-धीरे विस्तरती रही / एक एहसास बनकर। / मैं सोच रही यह प्रेम की पराकाष्ठा नहीं तो और क्या?

जड़ें गाड़ देना, तिरोहित हो जाना है। किसी में संपूर्ण व्यक्तित्व, सत्ता, प्राणपण से, उसमें कहीं कोई दूसरा क्षण भर के लिए भी दखलअंदाज़ नहीं हो सकता। कविता में प्रेम की जो निर्मल धार है, वह किसी को भी प्रेमार्णव में गोते लगाने को विवश कर दे। यह प्रेम परिपक्व हो चला है, और कवि ईश्वरोन्मुख हो चला है। ईश्वर से प्रेम का मार्ग, मनुष्य प्रेम से ही प्रशस्त होता है। जो व्यक्ति मनुष्य से प्रेम नहीं कर सकता वह ईश्वर से कदापि प्रेम नहीं कर सकता। पुरुष स्त्री के प्रेम में पगकर कैसे ईश्वर को प्राप्त करता है इसके दर्शन भी कई कविताओं में हो रहे हैं।

एक कविता में आप कहते हैं- कुछ भी हो जाए, / तुम्हारी यह आँखें सदा मेरे साथ रहेंगी / क्योंकि तुम्हारी आँखों में झाँकते हुए / मुझे ईश्वर के दर्शन होते हैं।

यह कथ्य साधारण होते हुए भी असाधारण है जीव से ब्रह्म का सफर है यह। लौकिक प्रेम कब अलौकिक प्रेम की सीमा में प्रवेश कर जाता है, पता ही नहीं चलता। पुस्तक अपने नाम पारिजात को धन्य करती हुई आपके पारिजात प्रेम से ओत-प्रोत है। पारिजात आपके लिए महज वृक्ष नहीं, शान्ति, समर्पण मन के आह्लाद के साथ-साथ मित्र, सखा और सहचर तो कहीं स्वयं आपका प्रतिरूप बन आपके जीवन से कविता में आहरित हुआ है।

जब आप कहते हैं- एक काम करो न! / तुम्हें जब लगे कि मुझसे बात करनी है / कर लो न मन ही मन, मिलूँगा

या हरसिंगार को छू लो एकबार!

कौन सहृदय इसे पढ़कर उदात्त प्रेम प्रकृति के साधारणीकरण को समझ न सकेगा, आँख को नम हृदय को कातर कर देने वाली पंक्ति है- हरसिंगार को छू लो एकबार! कितना विकल्पविहीन असहाय निरुपाय होकर कोई अपने प्रिय के स्पर्श का सुख वृक्ष में प्राप्त करेगा। कल्पना ही हृदयविदारक है। कुल मिलाकर यह पुस्तक संवेदनशील और प्रेमासिक्त मन का ख़ूबसूरत दस्तावेज़ है।

000

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीऍफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे किसी अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद

संपादक

shivnasahityiki@gmail.com

पुस्तक समीक्षा

(व्यंग्य संग्रह)

भीड़ और भेड़िये

समीक्षक : दीपक गिरकर

लेखक : धर्मपाल जैन

प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली

दीपक गिरकर
28-सी, वैभव नगर, कनाडिया रोड,
इंदौर- 452016
मोबाइल- 9425067036
ईमेल- deepakgirkar2016@gmail.com

"भीड़ और भेड़िए" चर्चित वरिष्ठ कवि-साहित्यकार धर्मपाल महेन्द्र जैन का चौथा व्यंग्य संग्रह हैं। धर्मपाल जैन के लेखन का कैनवास विस्तृत है। वे कविता और गद्य दोनों में सामर्थ्य के साथ अभिव्यक्त करने वाले रचनाकार हैं। धर्मपाल महेन्द्र जैन की प्रमुख कृतियों में "सर क्यों दाँत फाड़ रहा है", "दिमाग़ वालों सावधान", "इमोजी की मौज में" (व्यंग्य संग्रह), "इस समय तक", "कुछ सम कुछ विषम" (काव्य संग्रह) शामिल हैं। इनकी रचनाएँ निरंतर देश की लगभग सभी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। धर्मपाल महेन्द्र जैन की गिनती आज के चोटी के व्यंग्यकारों में है। इनका व्यंग्य रचना लिखने का अंदाज़ बेहतरीन है। व्यंग्यकार ने इस संग्रह की रचनाओं में वर्तमान समय में व्यवस्था में फैली अव्यवस्थाओं, विसंगतियों, विकृतियों, विद्रूपताओं, खोखलेपन, पाखण्ड इत्यादि अनैतिक आचरणों को उजागर करके इन अनैतिक मानदंडों पर तीखे प्रहार किए हैं। साहित्य की व्यंग्य विधा में धर्मपाल जी की सक्रियता और प्रभाव व्यापक हैं। व्यंग्यकार वर्तमान समय की विसंगतियों पर पैनी नज़र रखते हैं। लेखक अपनी व्यंग्य रचनाओं को कथा के साथ बुनते हुए चलते हैं।

"भीड़ और भेड़िए", "प्रजातंत्र की बस", "दो टाँग वाली कुर्सी", "भैंस की पूँछ", "पहले आप सुसाइड नोट लिख डालें", "लाचार मरीज़ और वेंटिलेटर पर सरकारें", "कोई भी हो यूनिवर्सल प्रेसिडेंट", "हाईकमान के शीश महल में", "लॉक डाउन में दरबार", "देश के फूफा की तलाश", "चापलूस बेरोज़गार नहीं रहते" "संविधान को कुतरती आत्माएँ" जैसे रोचक और चिंतनपरक व्यंग्य पढ़ने की जिज्ञासा को बढ़ाते हैं और साथ ही अपनी रोचकता और भाषा शैली से पाठकों को प्रभावित करती हैं। "भीड़ और भेड़िए" समकालीन राजनीति की बखिया उधेड़ता एक रोचक व्यंग्य रचना है। रचना "भीड़ और भेड़िए" व्यंग्य में लेखक लिखते है सत्तारूढ़ राजनेता या मोक्ष बुकिंग एजेंट जिस तरह भीड़ का भावुक हृदय जीतते हैं वह सबके बस की बात नहीं है। वे भीड़ में घुसी भेड़ों में यह आत्मविश्वास जमा देते हैं कि वे अपनी आत्मा की आवाज़ सुन कर वहाँ हैं। जो प्रायोजित भीड़ दैनिक भत्ते पर आती है वह पेशेवर भेड़ों से बनी होती है। ये भेड़ें तय अवधि के लिए आँखें बंद कर अपनी आत्मा किराए पर उठा देती हैं। दाम दो और आत्मा ले लो। आदमी से बनी भेड़ का चरित्र आदमी जैसा ही रहता है, संदिग्ध। आदमी पशु बनकर भी पशु जैसा वफादार नहीं बन सकता।

"प्रजातंत्र की बस" लोकतांत्रिक प्रवृत्तियों पर करारा और सार्थक व्यंग्य है। बस को धक्का लगाने के लिए सरकार ने बड़ा अमला रखा है। दायीं तरफ से आईएएस धक्का लगा रहे हैं। बायीं तरफ से मंत्रीगण लगे हैं। पीछे से न्यायपालिका दम लगा के हाइशा बोल रही है और आगे से असामाजिक तत्व बस को पीछे ठेल रहे हैं। लोग सात दशकों से पुरज़ोर धक्का लगा रहे हैं पर गाड़ी साम्य अवस्था में है। गति में नहीं आती, इसलिए स्टार्ट नहीं होती। प्रजातंत्र की बस सिर्फ चर्र-चूँ कर रही है।

"दो टाँग वाली कुर्सी" व्यंग्य लेख वर्तमान परिस्थितियों में एकदम सटीक है तथा यह व्यंग्य लेख अवसरवादी राजनीति पर गहरा प्रहार करता है। जिस कुर्सी पर आपको बैठना हो उसके

लिए यदि कोई और उत्सुक दिखे तो अपना दावा ठोक दें। प्रतिद्वंद्वी को आप ख़ुद नहीं ठोकें। अपने चार लोगों को इशारा कर दें। वे उसकी ठुकाई करेंगे और आपका ज़ोर-शोर से समर्थन भी। प्रतिद्वंद्वी समझ जाएगा कि वह कुर्सी सिर्फ आपके लिए बनी है। हर कुर्सी में सिंहासन बनने की निपुणता नहीं होती। कुछ लोग जो अपनी कुर्सी को नरमुंडों और मनुष्य-रक्त की जैविक खाद देकर पोषित कर पाते हैं, वे अपनी कुर्सी को सिंहासन बना पाते हैं।

"भैंस की पूँछ", "पहले आप सुसाइड नोट लिख डालें" जैसे व्यंग्य धर्मपाल जैन के अलहदा अंदाज़ के परिचायक है। धर्मपाल महेन्द्र जैन के कहनपन का अंदाज़ अलग है। "बिन बारूद की तीली" धड़ाधड़ व्यंग्य लिखने वालों पर कटाक्ष है। "भैंस की पूँछ" बहुत ही मजेदार और चुटीला व्यंग्य है। आप रसीलाजी को नहीं जानते तो पक्का सुरीलीजी को भी नहीं जानते होंगे। वे महान् बनने के जुगाड़ में जी जान से लगे थे पर पैंदे से ऊपर उठ नहीं पा रहे थे। उन्हें पता था कि विदेश में रहकर महान् बनना बहुत सरल है। हिन्दी नाम की जो भैंस है बस उसको दोहना सीख जाएँ तो उनके घर में भी घी-दूध की नदियाँ बह जाएँ। ("भैंस की पूँछ") "पहले आप सुसाइड नोट लिख डालें" यथार्थ को चित्रित करता बेहतरीन शैली में तराशा गया एक सामयिक प्रभावशाली व्यंग्य है जो पुलिस की कार्यशैली पर भी सार्थक हस्तक्षेप करती है। व्यंग्यकार दृश्य चित्र खड़े करने में माहिर हैं। एक बार फिर चेक कर लें कि आप ने सुसाइड नोट लिखकर अपनी ऊपरी जेब में विधिवत रख दिया है। पुलिस की नज़र का कोई भरोसा नहीं है। विटामिन एम खाया हो तो वे सुसाइड नोट पाताल में भी खोज सकते हैं। यदि उन्हें विटामिन का पर्याप्त डोज़ न मिले तो वे आँखों के सामने पड़ा सुसाइड नोट भी नहीं देख पाते।

व्यंग्य "लाचार मरीज़ और वेंटिलेटर पर सरकारें" एक बेहतरीन रचना है, जिसमें लाचार मरीज़ों की मन:स्थिति, उनकी पीड़ा, उनकी मजबूरियों का यथार्थ चित्रण किया गया है और साथ ही सरकार की कार्यशैली का कच्चा चिट्ठा खोला गया है। इस व्यंग्य रचना में अस्पतालों की बदहाल स्थिति का पोस्टमार्टम किया गया है। यह व्यंग्य रचना हमारी चिकित्सा व्यवस्था की पोल खोलती है। देश बीमार है। वेंटिलेटर मिल गया है पर उसका एडॉप्टर नहीं है। इसे अस्पताल की ऑक्सीजन लाइन से जोड़ें कैसे ! अधिकारियों का काम थोक में वेंटिलेटर खरीदना था, उन्होंने वह कर दिया। वेंटिलेटर आँकड़ों में दर्ज कर दिए। राजनेता गए, फीता काट कर बटन दबा आए। वे कोई तकनीकी आदमी तो थे नहीं कि जाँच करते कि वेंटिलेटर इंस्टाल हुआ या नहीं। टेक्निकल भर्ती की माँगे सचिवालयों के स्वास्थ्य विभागों में दबी पड़ी हैं। देश में बेरोज़गारों की भीड़ है। ("लाचार मरीज और वेंटिलेटर पर सरकारें") "हम जीडीपी गिराने वाले" रचना के माध्यम से लेखक ने सामाजिक विषमता / वर्ग विभेद पर करारा व्यंग्य किया है। "आइंस्टीन का चुनावी फार्मूला" माफिया तंत्र को उकेरती एक सशक्त व्यंग्य रचना है। "इसे दस लोगों को फॉरवर्ड करें" सोशल मीडिया पर गहरा तंज़ है। "हाईकमान के शीश महल में" व्यंग्य रचना में करारे पंच के साथ गहराई से वर्तमान सियासत पर तंज़ कसा गया है। "संविधान को कुतरती आत्माएँ" राजनेताओं की यथार्थ स्थिति को उद्घाटित करती हुई एक उम्दा रचना है जिसमें राजनीतिज्ञ अपनी आत्मा को हाईकमान की तिज़ोरी में रखकर पद हथियाते हैं। फिर ये आत्माएँ संविधान को कुतरती हैं। "वैशाली में ऑक्सीजन कंसंट्रेटर" एक रोचक रचना है जिसमें राजा को अमेरिका से मिले पोर्टेबल ऑक्सीजन कंसंट्रेटर गिफ्ट राजा से महारानी, महारानी से उसके प्रेमी सेनापति, सेनापति से सेनापति की प्रेयसी विपक्षी नेत्री, विपक्षी नेत्री से उसके प्रियतम एंकर, एंकर से वैशाली की नगरवधू और नगरवधू से वापस राजा के पास आ जाता है। "डिमांड ज़्यादा है, थाने कम" रचना में व्यंग्यकार ने थानों की बिक्री को निविदाओं से जोड़कर अनूठा प्रयोग किया है। लेखक समाज में व्याप्त विसंगतियों को चुटीलेपन के साथ उजागर करते हैं। "लॉकडाउन में दरबार" रचना में लेखक के सरोकार स्पष्ट होते हैं। इस रचना को लेखक ने एक नाट्य के रूप में प्रस्तुत किया है। व्यंग्यकार ने लॉकडाउन के दौरान सरकारी कार्यप्रणाली पर गहरा प्रहार किया है।

"हम जीडीपी गिराने वाले", "साठोत्तरी साहित्यकार का खुलासा", "लॉकडाउन में दरबार", "पशोपेश में हैं महालक्ष्मीजी", माल को माल ही रहने दो, "हिन्दी साहित्य का कोरोना गाथाकाल" इत्यादि इस संग्रह की काफी उम्दा व्यंग्य रचनाएँ हैं। संग्रह की रचनाओं के विषयों में नयापन अनुभव होता है। संग्रह की विभिन्न रचनाओं की भाषा, विचार और अभिव्यक्ति की शैली वैविध्यतापूर्ण हैं। इस व्यंग्य संग्रह की भूमिका बहुत ही सारगर्भित रूप से वरिष्ठ व्यंग्यकार ज्ञान चतुर्वेदी ने लिखी है। व्यंग्यकार ने इस संग्रह में व्यवस्था में मौजूद हर वृत्ति पर कटाक्ष किए हैं। लेखक के पास सधा हुआ व्यंग्य कौशल है। धर्मपाल जैन की प्रत्येक व्यंग्य रचना पाठकों से संवाद करती है। चुटीली भाषा का प्रयोग इन व्यंग्य रचनाओं को प्रभावी बनाता है। धर्मपाल जैन की व्यंग्य लिखने की एक अद्भुत शैली है जो पाठकों को रचना प्रवाह के साथ चलने पर विवश कर देती है। व्यंग्यकार ने अपने समय की विसंगतियों, मानवीय प्रवृतियों, विद्रूपताओं, विडम्बनाओं पर प्रहार सहजता एवं शालीनता से किया है। व्यंग्यकार धर्मपाल जैन के लेखन में पैनापन और मारक क्षमता अधिक है और साथ ही रचनाओं में ताजगी है। लेखक के व्यंग्य रचनाओं की मार बहुत गहराई तक जाती है। धर्मपाल जैन अपनी व्यंग्य रचनाओं में व्यवस्था की नकाब उतार देते हैं। लेखक की रचनाएँ यथास्थिति को बदलने की प्रेरणा भी देती है।

आलोच्य कृति "भीड़ और भेड़िए" में कुल 52 व्यंग्य रचनाएँ हैं। भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित 136 पृष्ठ का यह व्यंग्य संग्रह आपको कई विषयों पर सोचने के लिए मजबूर कर देता है। यह व्यंग्य संग्रह सिर्फ पठनीय ही नहीं है, संग्रहणीय भी है। आशा है यह व्यंग्य संग्रह पाठकों को काफी पसंद आएगा और साहित्य जगत् में इस संग्रह का स्वागत होगा।

000

पुस्तक समीक्षा

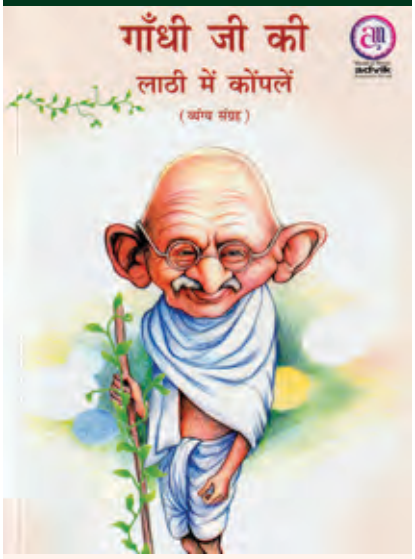

(व्यंग्य संग्रह)

गांधी की लाठी में कोंपलें

समीक्षक : शैलेन्द्र शरण

लेखक : जवाहर चौधरी

प्रकाशक : अद्रिक पब्लिकेशन, नई दिल्ली

शैलेन्द्र शरण
79, रेल्वे कॉलोनी, इन्दिरा पार्क के पास
आनंद नगर, खंडवा 450001 (मप्र)
मोबाइल- 8989423676, 9098433544
ईमेल- ss180258@gmail.com

प्रेमचंदजी साहित्य के उद्देश्य के संबंध में कहते हैं कि - "निस्संदेह काव्य और साहित्य का उद्देश्य हमारी अनुभूतियों की तीव्रता बढ़ाना है, पर मनुष्य का जीवन केवल स्त्री-पुरुष प्रेम का जीवन नहीं है। साहित्य उसी रचना को कहेंगे, जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो, जिसकी भाषा प्रौढ़, परिमार्जित और सुंदर हो तथा जिसमें दिल और दिमाग पर असर डालने का गुण हो।

साहित्य की विधा कोई भी हो वह साहित्य तभी होगी जब वह हमारी अनुभूतियों की तीव्रता को बढ़ाती हो, दिल और दिमाग़ पर असर डालती हो। जवाहर चौधरी का व्यंग्य संग्रह "गांधीजी की लाठी में कोंपलें" पढ़ते हुये प्रेमचंद के यही शब्द याद आ गए। जवाहर चौधरी के व्यंग्य इस कसौटी पर खरे उतरते हैं। उनके व्यंग्य उद्वेलित करते हैं, अनुभूतियों को कुरेदते हैं तथा मन और मस्तिष्क में हलचल सी पैदा करते हैं।

उनकी एक रेखांकित करने वाली योग्यता यह है कि उनके व्यंग्य बमुश्किल दो पृष्ठों से बड़े नहीं होते किन्तु इतने मज़बूत होते हैं कि इससे अधिक कहने की उन्हें आवश्यकता ही महसूस नहीं होती और न पाठक को यह अवसर मिल पाता है कि वह कह सके कि इस विषय का अमुक पक्ष छूट गया। विषय चयन के बाद आरंभ करने के लिए उन्हें बस एक पंक्ति के सहारे की ज़रूरत होती है उसके बाद पंक्ति-दर-पंक्ति जो वे कहते हैं वह किसी चमत्कार की तरह हमें विस्मित करती चलती है। पूरे व्यंग्य को छोटी-छोटी की पंक्तियों में लिखते हुये वे सच इस तरह कहते चले जाते हैं जैसे बात-चीत कर रहे हों। प्रत्येक दूसरी पंक्ति में निहित, ऐसे कटाक्ष बमुश्किल ही अन्य कहीं देखने को मिलते हैं। ये पंक्तियाँ सूत्र वाक्य की तरह होती हैं। याद रह जाती हैं जैसे- "निर्णय लिया कि नहीं खाएँगे दलित के घर, लेकिन पता नहीं कैसे-कैसे गांधीछाप विचार आते रहे।"

"राजनीति में भरोसा गले में बँधा ताबीज़ होता है"

"आप आज़ाद हैं, इस बात का अनुभव करने का सबसे अच्छा तरीका ये हैं कि मुँह बंद

रखिए। बोलिए मत। बोले कि अनुभव ख़त्म।"

"करते करते बैल भी सीख जाता है।"

"समय के साथ शक्ल इतनी बदल जाती है कि आदमी ख़ुद अपने आप से परायापन महसूस करने लगता है।"

"तू चैनलवालों से जायदा अक्कलवाली हो गई है क्या।"

"धार्मिक विद्वानों ने कहा है कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि होता है और लोगों ने इस झूठ को श्रद्धापूर्वक पचा लिया। इसी को राष्ट्रप्रेम कहते हैं।"

"राजनीति कुर्सी के पाये से बँधी कुतिया है। जिसे बैठना हो उसे कुतिया की पीठ सहलाना ही पड़ती है।" ऐसे उदाहरण जवाहर चौधरी के प्रत्येक व्यंग्य में बहुतायत से पढ़ने को मिलते हैं।

लेखक मनोभावों को भी व्यंग्य में बड़ी कुशलता से व्यक्त करते हैं। "रॉयल्टी ! ये क्या होता हैं ?" शीर्षक व्यंग्य में इसका सटीक उदाहरण देखने को मिलता है। "रॉयल्टी! ये क्या होता है ?" प्रकाशक ने पाण्डुलिपि पर रखे पेपरवेट को उठाकर किनारे किया।"

उनके व्यंग्य के कंटेंट हमेरे मन-मस्तिष्क को आलोकित करते चलते हैं और मुखमंडल को प्रफुल्लित, जैसे हमें जो बात कहनी थी वह बात लेखन ने सटीक उसी तरह कह दी हो। उनके व्यंग्य के विषय विविध हैं। लगभग सभी विषयों पर उनकी कलम चली है और ख़ूब चली है।

इस संग्रह के पहले ही व्यंग्य "नए अंधों का हाथी" की आरंभिक पंक्तियाँ बेहद सशक्त और निर्भीक हैं वे लिखते हैं "अंधे वे भी होते हैं जिनकी आँखें होती हैं। जैसे खोपड़ी होने का यह मतलब नहीं कि आदमी में दिमाग़ भी होगा। कहते हैं अनुभव से आदमी सीखता है। अंधे स्पर्श से अनुभव करते हैं.... अब हाथी देखने को नहीं मिलते हैं। सुना है राजनीति में आ गए हैं। राजनीति में सारे हाथी नहीं होते हैं ; घोड़े, गधे, लोमड़, सियार ही नहीं मेंढक भी होते हैं। राजनीति अगर ठीक से खेली जाए तो मेंढक ही आगे चलकर हाथी हो जाता है।" उनकी दृष्टि में राजनीति खेल की तरह है जिसमें मेंढक भी वक़्त पड़ने पर कमाल दिखा सकता है। यह व्यंग्य वर्तमान राजनीति की पड़ताल भी करता है और राजनीतिक विदुपताओं पर उँगली उठाने से नहीं चूकता, न ही किसी तरह का संकोच करता है। जबकि ऐसी निडरता से अधिकतर लेखक बचते नज़र आते हैं। ऐसी निर्भीक अभिव्यक्ति में जोखिम होता है किन्तु जवाहर चौधरी उठाते हैं और सच कहने से गुरेज नहीं करते। वे इस जोखिम से वाकिफ़ भी हैं इसलिए किताब की छोटी सी भूमिका में कह देते हैं कि "अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता पर पहरे बहुत हैं लेकिन व्यंग्य प्राय: पकड़ से बाहर रहता है, जब तक कि कोई हाथ धोकर ही पीछे न पड़ा हो। जवाहर चौधरी विनम्र भी हैं, वरिष्ठ, अनुभवी और स्थापित व्यंग्यकार होकर भी बड़ी विनम्रता से कहते हैं- "हिन्दी में बड़े-बड़े व्यंग्य लेखक सक्रिय हैं; मध्यप्रदेश तो व्यंग्य का गढ़ ही है। इनके बीच 'जवाहर चौधरी' नाम तो बहुत छोटा है।" फलदार पेड़ की तरह है उनकी यह विनम्रता।

उनका यह संग्रह कोविड काल की उपज है। यह एक ऐसा समय था जब दुनिया भय और अनिश्चितता से भरी हुई थी। घर के सदस्य कोविड नियमों का पालन करते हुये घर में ही एक दूसरे से दूरी बनाए हुये थे। जवाहर चौधरी इस विषय में लिखते हैं कि पिछले कुछ वर्षों से बहुत उथल-पुथल सी मची रही मन में। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक वातावरण विचलित करने वाला बना रहा। कुछ ऐसा घट रहा था जो मंज़ूर नहीं था लेकिन हो रहा था .... कितने ही संबंधी, मित्र, परिचित कोविड की भेंट चढ़ गए। जो साथ उठते-बैठते रहे, उनके अंतिम दर्शन तक संभव नहीं हुये। अख़बारों और सोशल मीडिया में असंख्य जलती चिताओं को देखकर दिल डूबने लगता है। हर पल संशय, पता नहीं कौन, कब चला जाए। एक छींक से घर का कोना-कोना सहम जाए। ज़िंदगी जैसे खिड़की पर बैठी गौरैया है, ज़रा, आहट से फुर्र हो जाएगी। लोग इतना डर गए कि हवाओं से भी उन्हें ख़तरा महसूस होने लगा। यह संवेदना, यह करुणा जवाहर चौधरी के व्यंग्यों में भी यत्र-तत्र उभरकर अलग से दिखाई पड़ती है। सिर्फ कविता ही करुणा से नहीं उपजी, लेखन की प्रत्येक विधा का आवश्यक तत्व है करुणा।

उनके व्यंग्य की अंतिम पंक्ति किसी व्यंग्योक्ति की तरह होती है जो हमें विचारों में जकड़ लेती है। इस स्थान पर वे अधिकतम श्रम करते प्रतीत होते हैं क्योंकि यह विशेषता उनके प्रत्येक व्यंग्य में परिलक्षित होती है। शीर्षक व्यंग्य 'गांधीजी की लाठी में कोपलें' के अंत का उदाहरण देखें :

"इधर देर से चुप बैठी चौधरानी बोल पड़ी, "पीपल जब मुँडेर पर उग सकता है तो गांधीजी की लाठी पे क्यूँ नहीं ! चौधरी ने घुड़क दिया, ओए चुप कर...। तू चैनलवालों से ज़्यादा अक्कलवाली हो गई है क्या !

गांधीजी की लाठी पर निकल आई कोपलों को लेकर मीडिया के घमासान को जवाहर चौधरी इस व्यंग्य में बड़े प्रेम से घेरते हैं और जनसामान्य के भीतर जो बातें चल रही होती हैं, वह सब कह देते हैं।

जवाहर चौधरी ने व्यंग्य का जो शिल्प गढ़ा है उसमें वे अलग से पहचाने जा सकते हैं। उनकी भाषा भी उनके नाम की ओर संकेत कर देती है। कम लिखकर अधिक कह जाने की यह कला सबके पास नहीं होती। कोई भी लेखक विषय पर आने के बाद उसे तराशता है, इस तराशने और अपनी बात के समर्थन में दो चार वाक्य अधिक लिख ही देता है। जबकि जवाहर जी के साथ ऐसा नहीं है। वे छोटे-छोटे वाक्यों से लेख को बाँधते हैं और विषय से कतई नहीं दूर नहीं होते। समालोच्य किताब में ऐसा कोई भी व्यंग्य ऐसा नहीं है जो महत्त्वपूर्ण न हो। जिसे पढ़ा जाने से टाला जा सके। भाषा पर उनकी मज़बूत पकड़ है, इसी भाषा से वे समाज की विषमताओं की नब्ज़ पकड़ते चलते हैं यहाँ तक कि वे पाठक की नब्ज़ पर भी बराबरी से पकड़ बनाए रखते हैं। समान्य और असामान्य विषयों पर छोटे-छोटे यह व्यंग्य अत्यधिक कसावट लिए हुये तो हैं ही, साथ ही इनकी मारक क्षमता इन्हें पढ़कर ही महसूस की जाना चाहिए।

000

पुस्तक समीक्षा

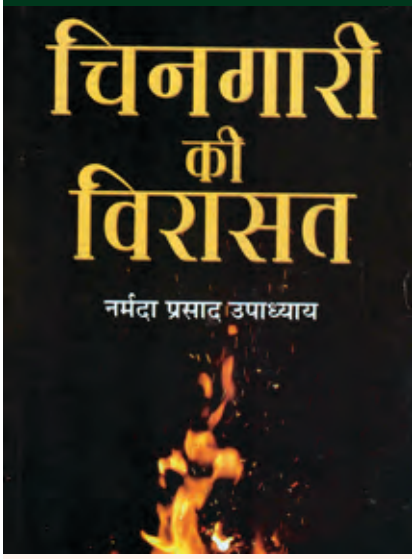

(निबंध संग्रह)

चिनगारी की विरासत

समीक्षक : अरुण सातले

लेखक : नर्मदा प्रसाद उपाध्याय

प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली

अरुण सातले
ए-13, एल.आई.जी. कॉलोनी
रामेश्वर रोड, खण्डवा 450001
मोबाइल- 9425495481

समीक्षित कृति में विभिन्न प्रकृति के निबंध हैं। साहित्य के साथ ही नृत्य, संगीत, नाटक, चित्र, शिल्प आदि सभी कलाएँ हैं। इन सभी के केंद्र में लोक जगत् ही है। लोक से ही इनका रचाव है। लेखक नर्मदा प्रसाद उपाध्याय जी स्वयं ललित निबंधकार होने के साथ साथ पेंटिंग्स, लघुचित्र परंपरा, भित्ति चित्र, उत्तखनन से प्राप्त शिल्पों के गहन अध्येता हैं। उनके लेखन के केंद्र में भारतीय सौंदर्य दृष्टि तथा विविध कलाओं के अंतरसंबंध जैसे शोध परक विषय होते हैं। विविध कलाओं के बीच अन्तरानुशासन, अंतरसंबंधों पर उनके निबंधों में मात्र ब्यौरे न होकर, भाषा लालित्य के कारण ये निबंध हमें अपने लालित्य भाव से, बोध के स्तर पर हमें अपनी उस विरासत से जोड़ते हैं।

विचार, चिंतन के निष्कर्ष का अमूर्त रूप है। यह सोचने की ऐसी परिणति है जो कभी आगे चलकर क्रियान्वयन में मूर्त हो उठती है। विचार जुगनू भी है, दीपशिखा भी और सूरज भी। प्रकाश का हर ऐसा स्रोत जो अंधेरे से लड़ने को तत्पर है। विचार एक लहर है जिसके पास रेत पर अपनी पहचान करने की संकल्प शक्ति है। वह छेनी है। वह तूलिका भी है जो उस रूप को रचती है, जो अपना सा लगता है। वह ऐसा दर्पण है, जिसमें प्रतिबिंब उल्टे नहीं दिखते। ऐसी परछाँई है, जो सूरज ढलने के बाद घटती नहीं, और लंबी होती चली जाती है। सुबह दूब पर बिछे ओस के कण हैं विचार तो ज़मीन पर बिछे धरती को महकाते हरसिंगार के फूल जो केवल धरती का सिंगार बने रहना चाहते हैं, उन्हें आकाश के ऊँचाई की दरकार नही।

फ्लैप पर उल्लेखित कथन पढ़कर ही हमें भारतीय मनीषा की वैचारिक ऊर्जा और उसके उदात्त भाव स्वरूप का संज्ञान होता है, जबकि आज हमारी दृष्टि कितनी कंगाल है कि हम सिर्फ और सिर्फ समूची सृष्टि का दोहन कर स्वहित में उपभोग करना चाहते हैं।

अपने पहले ही निबंध में वे जीवन के अधूरेपन को ही पूर्णता मानते हुए लिखते हैं कि अधूरापन प्रेरणा है, जीवन में आगे बढ़ने की, निरंतरता की। वे राम के सीता हरण के विछोह और अयोध्या लौटने पर चिरविछोह होने का उद्धरण के साथ कृष्ण के जीवन में भी उनके अधूरे होने के प्रसंगों का उल्लेख करते हैं, क्योंकि कृष्ण कभी भी - न गोकुल के, न मथुरा और न ही द्वारका के हो पाए।

हम रचते हैं, किसके लिए ? हमारी सर्जना के केंद्र में लोक होना चाहिए। लोक, व्यक्ति को नहीं विचार को प्रतिष्ठित करता है। "साँझ परे घर आयो" निबंध में अम्माँ भी यही कहती है कि- साँझ बिरयाँ घर के बाहर नई जानो, दीया बाती टेम घर रेनो। क्योंकि दीये की लौ की सामर्थ्य कितनी भी कम हो किन्तु अंधेरे के ख़िलाफ़ लड़ने का संकल्प बहुत प्रबल है।

हमारी आस्थाएँ, संवेदना की आँख बन जाती है। देह लौटती है, मन वहीं रहता है। यह संस्कार है। "चित्रकूट में बसत है, रहिमन अवध नरेश" निबंध में निसर्ग का मनोरम चित्रण है जो हमें निसर्ग के प्रति आस्थावान बनाता है। राम व्यक्ति नहीं रस है। इसका आस्वाद आस्था ही कर सकती है। "चित्रकूट के निसर्ग" का शब्द चित्रण बाल्मीकि और तुलसी ने विशद रूप से किया है। "रावण रथी बिरथ रघुवीरा" निबंध में रावण के रथ पर होने और राम के बिना रथ होने को लेकर वर्तमान के राम रथियों के लिए बहुत संदेशप्रद बात कही है। मेघनाथ के बान से से मूर्छित लक्ष्मण का मार्मिक प्रसंग है। ये अमूर्त भाव ही हैं। ऐसे जीवन मूल्यों का जहाँ रथ होता है, वहाँ राम ही विजयी होता है। रथियों की भीड़ में आज के समय में राम विवश दर्शक होकर रह गए हैं। यह कितना उदात्त भाव है।

जन जन के राम भारतीय अस्मिता के मूल में है। "लोक जनजाति जीवन, संस्कृति कला और साहित्य में राम" निबंध अपने स्वरूप में वृहद विचार समेटे है जिसमें लोक के श्रम और संघर्ष के राम, जनजाति जीवन में राम-हे खग,मृग, हे मधुकर श्रेनी, तुम देखी सीता मृगनयनी, यह वनवासी प्रेम है, जो मानवीय विकलता को दर्शाता है। कला में राम चरित के सारे प्रसंगों को लेकर जो भित्ति चित्र मिले हैं, आज तक उत्तखनन में राम के जीवन चरित्र का बहुतायत से मिलना यही दर्शाता है कि राम का स्वरूप विराट है। लेखक ने इस निबंध में शोध में प्राप्त चित्रों,

शिल्पों का विस्तार से शोध परक चित्रण लालित्य भाव से किया है, जो हमारे लिए एक अनमोल धरोहर है। लोकसाहित्य तो राम मय है।

लोकगीत, लोक कथाएँ, राम चरित्र से अलंकृत है। आदि कवि वाल्मीकि, महाकवि कालिदास, भवभूति, तुलसी इत्यादि कवियों ने राम कथा से भारतीय साहित्य को समृद्ध किया है। रस ने रास की सृष्टि की। रासलीला ने ब्रज क्षेत्र से पूरे देश को रस सिक्त किया है। इस निबंध में विशेष यह है कि ब्रज से रासलीला निकल कर महाराष्ट्र के खानदेश, जो जलगाँव, धूलिया, नाशिक जिलों की सीमाओं तक का क्षेत्र है, वहाँ तक कैसे पहुँची उसके संबंध में लेखक ने शोध परक जानकारी प्रस्तुत की है। भाषा विज्ञान के आधार पर इसे कान्ह देश कहा गया है। यहाँ राधा, कानबाई के रूप में प्रतिष्ठित है। इस क्षेत्र में गीतगोविन्द के सस्वर गान की परंपरा है। रासलीला मंडलाकार नृत्य है। जो देश में विविध नामों से समूह में किया जाता।

अब तक इतिहास हार जीत का ही लिखा गया है। इतिहास में घटनाओं के ही पदचिह्न होते हैं। इस सन्दर्भ में लेखक ने एक अनूठे व्यक्तित्व के बारे में उल्लेख किया है, वह किवदंतियों में आज भी जीवंत है। उसकी ऐतिहासिकता नहीं किन्तु ओरछा के लक्ष्मी महल की भित्तियों पर उकेरे गए उसके अंकन में वह प्राणवान हो उठी, और ओरछा के भग्न प्रवीण राय महल के फ़र्श पर उसके घुँघरुओं की ध्वनि से गुँथी पदचाप आज भी सुनाई देती है, और दीवारों पर नृत्य मुद्राएँ। अपनी ललित भाषा में ये निबंध हमें अपनी विरासत से साक्षात्कार कराते हुए भारतीय सौंदर्य बोध और विभिन्न कलाओं के अंतर संबंधों की पड़ताल कर हमें समृध्द करते हैं। ऐसा ही एक निबंध है, भारतीय कला दृष्टि-परिक्रमा नहीं, यात्रा। बहुत अद्‌भुत और ज्ञानवर्धक विचार हैं। कला - संवाद है तो रूप - उसकी भाषा। भारतीय सौंदर्य दृष्टि ही यहाँ की कला दृष्टि है। यह परिक्रमा नहीं महान् संकल्प की अनवरत यात्रा है।

संगीत हमारे यहाँ मात्र मनोरंजन न होकर ईश्वर की आराधना है। नाद ब्रम्ह। सामवेद को तीसरा वेद कहा गया है... जिसमें संगीत है। संगीत की उत्त्पत्ति से लेकर उसके वर्तमान तक कि यात्रा पर महत्त्वपूर्ण विश्लेषात्मक विवरण लिखे हैं। संगीत की उत्पत्ति ब्रम्हा से शिव, शिव से सरस्वती से नारद, किन्नर, गंधर्व और अप्सराओं ने सीखा। भरत नारद, हनुमान इसे पृथ्वी पर लाये। इसे गंधर्व विद्या का नाम दिया गया। साम गान ध्रुपद से ख़याल गायन सूफ़ी परंपरा की गायन वादन शैलियों का विस्तार से वर्णन किया है। संगीत के रागों की उत्पत्ति पर प्रकाश डाला गया है। दत्तिल, नंदी, कोहिल, भरत और मतंग से लेकर गुरु ग्रंथ साहिब तक रागों के संबंध में विस्तार से उल्लेख है। भैरव, हिंडोल, दीपक, श्री, मेघ, मालकौंस ये प्रमुख राग हैं, इनके राग पुत्र ,राग वधुएँ हैं।

"विरासतें जड़ नहीं जीवंत" निबंध में हमारी वर्तमान पीढ़ी का सोच उभर कर आया है। आज इन विरासतों का मूल्यांकन उनसे जुड़ी गाथाओं से न होकर, उनमें जड़े पत्थर और धातुओं से उनकी कीमत आँकी जाती है। मूल्य के स्थान पर कीमतें प्रतिस्थापित हो गई हैं। बिस्मिल्ला ख़ाँ की शहनाई चोरी होने के प्रसंग में लेखक ने कहा कि बिस्मिल्ला शहनाई के पर्याय हैं। इस कृति में नव वर्ष को लेकर भी बहुत ही सुंदर ललित निबंध हैं।

नव प्रभात का सूर्य... गुड़ी पड़वा और गुड़ी पड़वा पर पृथक से भी एक निबंध है, संभावनाओं का इंद्रधनुष और मधुर मधुर मेरे दीपक जल जैसे निबंध हमारी उत्सवधर्मी संस्कृति के प्रतीक हैं। उत्सवों की यही उजास हमारी विरासत है।

लेखक ने "साहित्यकार / ललित निबंधकार विवेकी राय साहित्य के मंगल भवन" शीर्षक निबंध में बहुत सुंदर लिखा है। विवेकी जी ग्रामीण संवेदना के सच्चे अक्षर थे। लोक पर तथा उनकी रचनाओं के माध्यम से, उनके जीवन संघर्ष से उनका स्मरण करते हुए लिखते हैं- विवेकी जी, देह से अक्षर देह हो गए। वे अक्षरों में सदैव प्राणवान बने रहेंगे। इसी तरह अक्षर देह का जन्म शीर्षक से बालकवि बैरागी जी की लोक चेतना का स्मरण करते हुए उनकी आत्म कथा 'मंगते से मिनिस्टर' में उनके जीवन संघर्ष को याद किया है। इसका एक संस्मरण हृदय को द्रवित कर जाता है। लिखते हैं- बैरागी जी बचपन में जब एक घर के सामने भीख के लिए खड़े होते हैं, और जब कुछ न मिला तो वे रोने लगे,तब उनकी माँ ने कहा बेटा ग़रीबी बड़ी रुपहली होती है, हम तो रूपवती का मान रखते हैं रोते नहीं। यह माँ का दिया संस्कार ही है, बैरागी जी को। मनुष्य नहीं हुआ पुराना में कहते हैं कि मनुष्य कभी पुराना नहीं होता। वह नित सृजनरत रहता है। अरस्तू ने कहा है जितना सोचा जा सकता था, वह सोचा और लिखा जा चुका है। लेकिन लिखना आज भी जारी है।

वास्तव में हम आज भी लिखा हुआ पढ़ते हैं या सुनते हैं वह हमें झकझोर जाता है। यह उसके प्रस्तुतिकरण का कमाल है, जो हमें सदा आकर्षक लगता है। हू-ब-हूपन दोहराव है, प्रस्तुतिकरण नहीं। सूर्योदय, सूर्यास्त, चाँदनी, नदी, बारिश ये सब हमारी चेतना में समाये हैं। इन्हें देखकर ऊबते नहीं। निराकार का कोई आख्यान नहीं।

जिस शीर्षक से किताब का नामकरण हुआ उस निबंध "चिनगारी की विरासत" में लिखते हैं कि चिनगारियाँ ओझल होने के लिए ही बनती है। बहुत अर्थगर्भी पंक्ति है।

चिनगारी अपनी चमक से रोशनी की राह दिखाती है। मृत राख में धड़कन की उम्मीद जगा देती है। क्षणिक होते हुए भी वह सामर्थ्यवान है।

चिनगारी की क्षणभंगुरता, दीर्घ कालिकता से बहुत बड़ी होती है। शंकराचार्य से विवेकानंद तक सभी अग्निस्फुरलिंग हैं, जो इतिहास के पन्नों पर जगमगाते हैं। इसलिए लंबी उम्र का भरोसा नहीं रखना चाहिए। विरासतें छोड़कर जाने का अर्थ क्या ? हर संतति अपने कर्म से अपनी चमक रचे। चिनगारी का यही संदेश है। यह किताब हमारी विरासतों का जीवंत और मूल्यवान दस्तावेज़ है। जिसकी ललित भाव यात्रा हमें बार बार अपनी विरासतों से जुड़े रहने के लिए हमें न्यौता दे रही है।

000

पुस्तक समीक्षा

(कहानी संकलन)

21 श्रेष्ठ नारी मन की कहानियाँ

समीक्षक : डॉ. कुमारी उर्वशी
लेखक : डॉ. अनिता रश्मि
प्रकाशक : डायमंड पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली

डॉ. कुमारी उर्वशी
सहायक प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग,
रांची विमेंस कॉलेज, रांची,
झारखंड, 834001
मोबाइल- 9955354365
ईमेल- urvashiashutosh@gmail.com

डायमंड बुक्स से 2022 में अनिता रश्मि के संपादन में भारत कथा माला के अंतर्गत "21 श्रेष्ठ नारी मन की कहानियाँ" (झारखंड के कहानीकारों की कहानियों का संग्रह) प्रकाशित हुई है। सुंदर सरल ढंग से परिस्थितियों को प्रस्तुत करती भावपूर्ण कथाएँ इस संग्रह को सुशोभित कर रही हैं। 21 कहानियों के संग्रह में डॉ. रोज़ केरकेट्टा की गंध, डॉ. विद्याभूषण की सरे राह चलते-चलते, डॉ. माया प्रसाद की शापमोचन, डॉ. सी. भास्कर राव की हत्यारिन, पूर्णिमा केडिया 'अन्नपूर्णा' की सिद्धि, जयनंदन की सेराज बैंड बाजा, डॉ. महुआ माजी की इलशेगुंड़ि, अनिता रश्मि की लाल छप्पा साड़ी, कलावंती सिंह की शिप्रा एक्सप्रेस, डॉ. कविता विकास की नाम में क्या रखा है, रश्मि शर्मा की मनिका का सच, नीरज नीर की सभ्यता के अँधेरे, ममता शर्मा की औरत का दिल, डॉ. विनीता परमार की कोख पर कैंची, रेणु झा रेणुका की सुखद पड़ाव, सत्या शर्मा 'कीर्ति' की दुनिया फिर भी ख़ूबसूरत है, डॉ. अनामिका प्रिया की अनुबंध, सारिका भूषण की प्रेम की परिधि, मीरा जगनानी की वो तीन दिन, कल्याणी झा 'कनक' की एहसास तथा प्रतिभा सिंह की वापसी शामिल हैं।

राज्य के श्रेष्ठ साहित्यकारों में शामिल डॉ. माया प्रसाद की कहानी 'शापमोचन' पढ़ते हुए आँखें कई बार भीग गई। इतने संवेदनशील मुद्दे पर लिखी गई यह कहानी जाने कब तक प्रासंगिक बनी रहेगी। रायबर्न के अनुसार- "स्त्रियों ने ही प्रथम सभ्यता की नींव डाली है और उन्होंने ही जंगलों में मारे-मारे भटकते हुए पुरुषों को हाथ पकड़कर अपने स्तर का जीवन प्रदान किया तथा घर में बसाया।" बावजूद इसके उनकी सामाजिक स्थिति हमेशा ही दोयम दर्जे की रही।

डॉ रोज़ केरकेट्टा की कहानी 'गंध' स्त्रियों के साथ सबसे ज़्यादा घटित होने वाले और मामूली समझे जाने वाले दुर्व्यवहार 'छेड़खानी' के मुद्दे पर लिखी गई है। इसे पढ़कर अख़बार में पढ़ी एक घटना बरबस याद आ गई। जिसमें लिखा था कि बिहार के जहानाबाद जिले में गुरुवार को युवक को अपनी बहन के साथ छेड़खानी कर रहे बदमाशों का विरोध करना महँगा पड़ा तथा विरोध करने पर बदमाशों ने युवक को चाकू से गोदकर गंभीर रूप से घायल कर दिया और मौके से फरार हो गए।

डायन प्रथा के बढ़ते प्रभाव के मद्देनज़र झारखण्ड जैसे राज्यों ने पहले ही कानून बना लिए हैं। अब छत्तीसगढ़, राजस्थान और हरियाणा भी इसी राह पर हैं। कुछ सामाजिक कार्यकर्ताओ का कहना है कि मौजूदा कानून के तहत भी कार्रवाई की जा सकती है, मगर पुलिस इसमें कोई रुचि नहीं लेती। डायन प्रथा के नाम पर महिलाओं के उत्पीड़न की घटनाएँ रह-रहकर सर उठाती रही हैं। बहुत छोटी-छोटी बात के लिए औरत को ज़िम्मेदार बताकर डायन करार दे दिया

जाता है जैसे गाय ने दूध देना बंद कर दिया, कुँए में पानी सूख गया, किसी बच्चे की मौत हो गई तो अन्धविश्वास के चलते औरत को डायन घोषित कर दिया जाता है। कई मामलों में सम्पत्ति हड़पने की नीयत से भी महिलाओं को डायन करार दिया जाता है। इसी मुद्दे पर कहानी है अनिता रश्मि की 'लाल छप्पा साड़ी' तथा रश्मि शर्मा की 'मनिका का सच'। 'लाल छप्पा साड़ी' कहानी की नायिका बुधनी पढ़ने लिखने की इच्छा लेकर डॉ. निशा के घर जाने वाली महिला है। यह वह महिला है जो एक लाल छप्पा साड़ी की आस लगाए बैठी है। जिस दिन लाल छप्पा साड़ी के लिए अपने पति जीतना को बाज़ार जाते वक्त रुपये देती है उम्मीद लगाए घर पर बैठी है और उसका पति दामोदर नदी में बह जाता है। साड़ी घर नहीं आती बुधनी की आस अधूरी ही रह जाती है जो प्रेमचंद के 'गोदान' के होरी की याद दिलाती है। जिसकी गाय की आस अधूरी ही रह जाती है। अपने बच्चों के संग अकेली बुधनी जीवन के लिए संघर्ष कर रही है ऐसी महिला को समाज डायन घोषित कर देता है।

'मनिका का सच' कहानी की नायिका मनिका डायन घोषित है। जानकर आश्चर्य होगा कि स्वयं मनिका ने ख़ुद को डायन घोषित करवाया है क्योंकि पति की मृत्यु के बाद गाँव वाले उसकी इज़्ज़त नहीं बख्शते अगर वह डायन घोषित नहीं होती। शकुन बुआ मनिका की तकलीफ जानती है उसकी मृत्यु के बाद वह बताती है कि रोज़ कोई न कोई उसके पास आधी रात को दरवाज़ा खटखटाने चलाता था। यहाँ तक की सिलाई के लिए कपड़े लेकर आने वाला आदमी भी उसका फायदा उठाना चाहता था। इशारों में भद्दी बातें करता। मनिका यह जानती थी कि उसकी बात पर यकीन करने वाला कोई नहीं है। उसकी सुंदरता ही आज उसकी दुश्मन बन गई है। और वह अपने पति के बनाए घर को छोड़ना भी नहीं चाहती थी। ख़ुद को सुरक्षित रखने के लिए डायन बनने के अलावा उसके पास कोई रास्ता नहीं बचा था।

डॉ. महुआ माजी की 'इलशेगुंड़ि' रूपकुमारी की कहानी है। 'इलशेगुंड़ि' बाँग्ला का शब्द है और इसकी अर्थध्वनि कहानी में मौजूद है। लेखिका ने कहा है कि बारिश की महीन-महीन या छोटी-छोटी बूँदे नदी की सतह पर जब पड़ती हैं तो हिल्सा मछली गहरे जल से सतह पर आ जाती है। इसी तरह रूपकुमारी की तकलीफ़ भी सतह पर आती है। रूपकुमारी अपने पति के छल का शिकार बन जाती है वह उससे दूसरी शादी कर मौज लूट गाँव से भाग जाता है। भोली भाली रूपकुमारी उसके इस छल से असावधान है और उसकी प्रतीक्षा करती रहती है, लेकिन वह आता नहीं। इसी प्रतीक्षा के दौरान कालीपॉदो से पहचान बनती है।

कालीपॉदो भी उसके पति को खोजता है। एक दिन वह सूचना देता है कि उसका पति तो शहर में किसी और स्त्री के साथ है। इसके बाद रूपकुमारी गाँव से शहर जाती है उस तथाकथित पति के घर। वहाँ सौत से झगड़ा होता है और फिर वह अपने गाँव चली आती है। कालीपॉदो भी इसी ताक में था। अंतत: कालीपॉदो उसे अपने घर में पनाह देता है और इसकी कीमत भी वसूलता है।

कालीपॉदो के घर रहती रूपकुमारी सब कुछ झेल रही होती है। एक शादीशुदा मर्द के घर उसके साथ जो हुआ वो बस हुआ। इसके बाद गाँव में बाढ़ का प्रकोप आया और सभी बेघर हो गए। त्राण शिविर में कालीपॉदो रूपकुमारी का परिचय नहीं दे पाता। शिविर के बचावकर्मी सबका नाम रजिस्टर में लिखते हैं। वह रूपकुमारी से भी पूछते हैं। रूपकुमारी कुछ कहती है लेकिन कालीपॉदो बोल उठता है कि वह कुछ नहीं लगता। रूपकुमारी जो उसके घर सौत बनकर हर दुख सहते हुए रह रही होती है। वह कालीपॉदो जो रूपकुमारी पर पति की तरह अधिकार रखता था कह देता है कि वह कुछ नहीं लगता। रूपकुमारी समझ नहीं पाती कि "क्या वाकई भरपेट भोजन-कपड़े के लिए ही उसने सोच-समझकर कालोपॉदो को फाँसा? वह ख़ुद ही से पूछती। यह उस़की पेट की क्षुधा थी या देह की ? या फिर मन की? क्यों प्रत्याख्यान नहीं कर पायी वह उसके प्रेम-निवेदन का... देह-आमंत्राण का...? ये कैसी पहेली है ठाकुर! ये मन की ग्रंथियाँ इतनी जटिल क्यों हैं? क्या एक पुरुष-मानुष के बिना जीना वाकई इतना मुष्किल था? वह सोचती। फिर सबकुछ भूलकर कालीपॉदो की गृहस्थी में मन रमाने की कोशिश करती। चूल्हा-चौका... बड़े-बुज़ुर्गों की सेवा... बच्चों पर लाड़ जताना... गाय-गोरू की देखभाल... रिश्तेदारों की तिमारदारी... क्या कुछ नहीं करती वह। सबका दिल जीतने का प्रयास करती। लेकिन हरेक के बर्ताव में उसके लिए हिकारत...सिर्फ हिकारत...। बड़ों की देखा-देखी मासूम बच्चे भी उसे दुत्कारना सीख गए थे। एक अछूत-सी ही हैसियत थी उस घर में उसकी।" रूपकुमारी की इस व्यथा को महुआ माजी ने बेहद संवेदनशीलता के साथ उभारा है।

'कोख पर कैंची' डॉ. विनीता परमार की एक ऐसी संवेदनशील कहानी है जिसमें महिलाओं को इंसान नहीं समझे जाने के सामाजिक पहलू को उभारा गया है। लेखिका ने एक गंभीर मुद्दा इस कहानी से उठाया है। इस कहानी में हैं ग़रीबी से हताश लोग और उनका फायदा उठाते लोग जो इंसान कहलाने के भी काबिल नहीं है। बीड़ जिले में जहाँ पानी के लिए हमेशा त्राहिमाम मचा रहता है। क़र्ज़ में पूरा गाँव डूबा है। बेरोज़गारी का यह आलम है कि ठेकेदार जो कह दे वह मान लिया जाता है। यहाँ तक की महिलाएँ माहवारी के दिनों में काम की हानि ना करें इसके लिए महिलाओं के गर्भाशय निकाल देने का फरमान ठेकेदार जारी करता है और लोग मान भी लेते हैं। ठेकेदार की कठपुतली बने गाँव वाले सिर्फ सहना जानते हैं क्योंकि ठेकेदार के ख़िलाफ़ बोलने का मतलब है भूखा मरना। इस परंपरा से विद्रोह करती है अपनी कोख खो चुकी नंदिनी। इस सशक्त नारी की कथा है कोख पर कैंची।

संग्रह की अधिकांश कहानियों में झारखंड की खुशबू रची बसी है। झारखंड की नैसर्गिक ख़ूबसूरती यहाँ के साहित्य में भी पुरज़ोर झलकती है यह बात इस संग्रह की कहानियों से स्पष्ट होती है।

000

पुस्तक समीक्षा

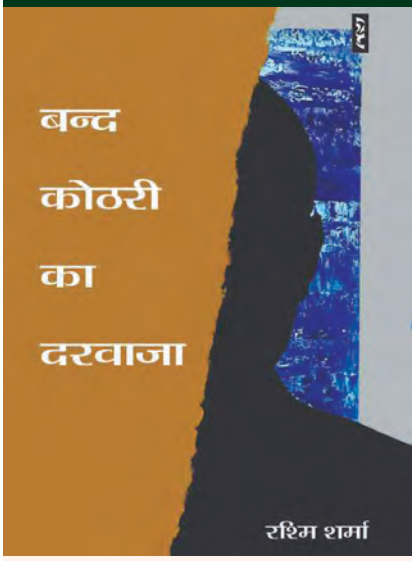

(कहानी संग्रह)

बंद कोठरी का दरवाज़ा

समीक्षक : रमेश शर्मा
लेखक : रश्मि शर्मा
प्रकाशक : सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली

रमेश शर्मा
92 श्रीकुंज, बोईरदादर,
रायगढ़, छत्तीसगढ़ 496001
मोबाइल- 7722975017

रश्मि शर्मा की ज़्यादातर कहानियाँ स्त्री की दुनिया के इर्द गिर्द बुनी गई हैं। 'स्त्री की दुनिया' कह देने भर का अर्थ यह कदापि नहीं है कि इन कहानियों का केनवास छोटा है। स्त्री की दुनिया को जो ठीक-ठीक परिभाषित कर सकते हैं वे यह भी ठीक-ठीक जानते समझते होंगे कि इस स्त्री की दुनिया की परिधि के बाहर की जो दुनिया है उस बाहरी दुनिया की दखल अन्दाजी उसके भीतर इस कदर सघन रूप में विद्यमान है कि उसे स्त्री की दुनिया से विलग करके बिलकुल भी नहीं देखा जा सकता। इस अर्थ में रश्मि शर्मा की स्त्री की दुनिया का भूगोल बहुत व्यापक है जिसकी नाप-जोख रश्मि अपनी कहानियों में करती हुई नज़र आती हैं।

इस संग्रह की कहानी हादसा में भदेस होती जा रही इस दुनिया का जो चित्रण है वह हमारे भीतर एक डर पैदा करता है। स्कूल जाती हुई एक छोटी बच्ची नंदिनी के मन के भीतर रोज़मर्रा के जीवन में आसपास घटित हो रहीं अपहरण और बलात्कार की घटनाओं का मनोवैज्ञानिक असर किस कदर भयावह हो सकता है, यह कहानी उसे बयाँ करती है। यह भयावहता अमूर्त रूप में उसके साथ इस कदर गतिमान है कि वह उसे आँखों के सामने हमेशा मूर्त होता हुआ महसूस करती है। यह कहानी स्त्री की दुनिया के विस्तृत भूगोल को ठीक ढंग से परिभाषित करती है और पाठक को एक किस्म की बेचैनी से भर देती है।

रश्मि की कहानियों में बाज़ार के साथ स्त्री जीवन में आ रहे बदलाव की आहट को भी उसके मौलिक स्वरूप में महसूसा जा सकता है। संग्रह की कहानी "चार आने की खुशी" इसका एक सुन्दर उदाहरण है। इस कहानी में एक पात्र है 'बड़ा'। बड़ा यानी बड़ी माँ। एक उम्रदराज विधवा ब्राह्मणी औरत जिसकी कोई संतान नहीं और वह अपने देवर देवरानी के परिवार के साथ रहती आई है, पर साथ रहते हुए भी एकदम अकेले, एक झोपड़ी में अलग-थलग रहने जैसा है बड़ा का जीवन। व्यवहार से थोड़ी कर्कश जिसे वे छुपाने की कोशिश भी नहीं करतीं। उन्हें एक ही आदत थी कि वे चाय बहुत पीती थीं। बिना दूध और ज़्यादा चीनी वाली चाय सुड़क सुड़क कर पीते हुए देखना कहानी की सूत्रधार (लेखिका) को अच्छा लगता था। एकदम लोक रंग में रचा पगा था उनका जीवन।

बड़ा के पास बकरियाँ थीं जिन्हें वह चराने जातीं। एक छोटी सी मगर मजबूत छड़ी उनके हाथ में हमेशा मौजूद रहती। सुबह एक बार जंगल से लौट आने के बाद वह गाँव में बकरियाँ छोड़ देतीं और घर से लगे गोबर लिपे पिंडे पर बाहर बैठी रहती। शायद यह उनका शौक था, शायद उनकी ज़रूरत या शायद मजबूरी। सूत्रधार (लेखिका) ने कई जगह इस पात्र को लेकर बड़ा दिलचस्प वर्णन किया है कि बड़ा जो है अपनी झोपड़ी में रखे दो चार बर्तन को बहुत रगड़ रगड़ कर माँजती। एकदम साफ चमकदार बर्तन।

बड़ा के पास कुएँ के अगल-बगल में बाड़ी थी जहाँ पुदीने के पत्ते उगते थे। साग भाजी ऊगा करती थी। बड़ा के बाड़ी में सीताफल के पेड़ होते थे जहाँ पके फलों को देखकर सूत्रधार(लेखिका)और उसकी सहेली मनु का मन उन्हें खाने को होता था पर बड़ा से वे बहुत डरती थीं। लेखिका ने एक जगह ज़िक्र किया है कि उसकी पसंद की चीज़ें बड़ा के कब्जे में थी और वह उन्हें बड़ा से नहीं ले पाती थीं।

एक बार बड़ा ने लेखिका और उसकी सहेली को अपने पास बुलाकर बड़े प्रेम से कहा था कि क्या उन्हें शरीफा चाहिए ? फिर बड़ा ने चुपके से कहा कि इसके बदले उन्हें चवन्नी देनी पड़ेगी। दोनों सहेलियाँ अपने घरों से चवन्नी लाकर शरीफा खरीद लेती थीं। बड़ा उन्हें कहती थी कि शरीफा को छुपा कर ले जाना। बड़ा ऐसा क्यों कहतीं थीं उन्हें उन दिनों समझ में नहीं आता था। यह काम वर्षों होता रहा जब तक बड़ा जिंदा रहीं। अपने बचपन में लेखिका और उसकी सहेली मनु अपने पड़ोस की बड़ा को इस तरह देखा करतीं थीं। उनके अनुभव बहुत निराले थे। बड़ा में लोक जीवन के सभी रंग, राग द्वेष, कर्कशता के पीछे प्रेम का छुपा हुआ रंगरूप भी था जिसे दोनों सहेलियाँ महसूस करती हुई बड़ी हुई थीं।

कहानी में एक जगह लेखिका लिखती हैं- "बड़ा अकेली थी। विधवा होने के बाद उनके

देवर देवरानी ने उनकी ज़मीन की लालच में उन्हें आजीवन खाना कपड़ा देना स्वीकार किया था। एक कोने में पड़ी दो वक्त की रोटी निगल कर अपने मरने का इंतजार कर रही बड़ा को सिर्फ एक ही शौक था - चाय का। अपने उस शौक के लिए वे देवरानी या किसी अन्य के आगे हाथ भी नहीं फैलाना चाहती थीं।"

फिर बड़ा इस दुनिया से चली गई। एक स्वाभिमानी पात्र बड़ा। दोनों सहेलियाँ भी बड़ी हो गईं। बरसों बाद जब कहानी की सूत्रधार (लेखिका) गाँव के अपने घर में बैठी हुई थीं तो उसे बड़ा का घर याद आया , बड़ा बहुत याद आई, पर वहाँ सब कुछ बदल चुका था। ना बड़ा की वह बाड़ी बची थी ना वहाँ शरीफे से लदे हुए पेड़ बचे थे। उस जगह अब मोबाइल के टावर लग गए थे। उसके देवर देवरानी ने बड़ा का सब कुछ बेच दिया था। अब वे सारे दृश्य बदल गए थे। शरीफा खरीद कर खाने की वह जो चार आने की खुशी थी वह बड़ा के जाने के बाद अब कहीं गुम हो चुकी थी।

माँ शब्द अपने आप में बहुत ख़ूबसूरत है। यह शब्द एक समूचा संसार अपने साथ लिए चलता है। इस संसार में क्या स्त्री , क्या पुरूष, सब कुछ इस तरह समाहित हैं कि उसके बिना मनुष्य का जीवन अधूरा सा है। केंसर जैसी ब्याधि से पीड़ित माँ जो अब-तब विदा लेने की स्थिति में है, उस माँ की दुनियाँ से विलग होने के इस अधूरेपन को पुरूष के दुखद अनुभवों के माध्यम से जब एक स्त्री लेखिका व्यक्त करती है तो उसका सम्प्रेषण बढ़ जाता है। संग्रह की कहानी 'उसका जाना' पढ़ते हुए इस अनुभव से हम दो चार होते हैं। यह कहानी ख़ूबसूरत संवादों के माध्यम से भाषायी संवेदना, मर्म और लालित्य की मौलिकता को भी सामने रखती हुई चलती है। जीवन के आकाश में फैले हुए रिश्तों के सुख-दु:ख यहाँ तारों के समान सुन्दर प्रतीत होते हैं। न केवल सुख के क्षणों में बल्कि दु:ख के क्षणों में भी यह कहानी मन को गुदगुदाती हुई आगे बढ़ती है।

प्रकृति में फैली सुन्दरता को जीवन के हर कोनों से जोड़ लेना कुछेक मनुष्य की एक ख़ास विशेषता होती है। प्रकृति के साथ इस अंतर्संबंधित रिश्ते को ख़ूबसूरती से शब्दों के माध्यम से बयाँ करना, जीवन के कठोर सत्य के करीब खींच कर ले जाने जैसा उद्यम है। रश्मि जिनके व्यक्तित्व में रोज़मर्रा के जीवन में कूद फांदकर प्रकृति की गोद में बैठ जाने की एक ज़िद नज़र आती है, उनके भीतर बैठे रचनाकार में प्रकृति की ख़ूबसूरती के साथ जीवन के कठोर सत्य को जोड़कर दिखाने का एक अतिरिक्त हुनर है। कश्मीर की डल झील और बनारस की गंगा नदी को जीवन के कठोर यथार्थ से जोड़कर देखने-दिखाने की उनकी लेखकीय कुशलता का आभास 'महाश्मशान में राग विराग' जैसी कहानी पढ़ने के बाद होने लगता है। जीवन में प्रेम और प्रकृति का विस्तार अनंत है। उनके साथ जीने और चलते चले जाने का अपना सुख भी है पर स्थूल रूप में प्राप्य कुछ भी नहीं। प्रेम और प्रकृति मनुष्य को बंधन से मुक्ति की दिशा में ले जाते हैं। 'महाश्मशान में राग विराग' कहानी एक लड़की की दुनिया के इसी मुक्ति पथ पर गतिमान यात्रा की कहानी है। यहाँ कश्मीर के डल झील में जावेद के साथ बिताये हुए ख़ूबसूरत पल हैं। यहाँ बनारस में गंगा घाट पर अयन के साथ बिताई हुई स्मृतियाँ हैं। यहाँ कश्मीर से लेकर बनारस तक प्रेम का अनंत विस्तार है। कहानी इस सत्य को उजागर करती है कि जीवन में प्राप्य की कामना तकलीफदेह है जबकि प्रकृति और प्रेम की संगति में ख़ूबसूरत पलों को जी लेना जीवन की मुक्ति है। इस कहानी में कथा लेखिका का सूफियाना अंदाज़ कई जगह चकित भी करता है।

प्रेम और प्रकृति की संगत में जीवन की यात्रा पर गतिमान एक लड़की के भीतर की ख़ूबसूरत दुनिया को रश्मि एक पंक्ति में व्यक्त कर जाती हैं जो उनके भाषायी कौशल को दिखाता है। यह कहानी प्रकृति, प्रेम और जीवन के अंतिम सत्य मृत्यु को ठीक-ठीक ढंग से परिभाषित करने में सक्षम है और उसका सम्प्रेषण भी बेहतर रूप में पाठकों तक पहुँचता है।

संग्रह की शीर्षक कहानी 'बंद कोठरी का दरवाज़ा' बहुत पहले समालोचन में आई थी। कहानी शादीशुदा स्त्री के जीवन में समाविष्ट एक नए किस्म की समस्या की ओर इशारा करती है। यह समस्या एक पति की देन है जो 'गे' है, जिसे एक शादीशुदा स्त्री झेलने को अभिशप्त है। 'गे' जैसे कथ्य पर कम कहानियाँ लिखी गई हैं, क्योंकि ऐसी घटनाओं को स्वीकार कर पाने के लिए हमारा समाज आज भी तैयार नहीं दिखता। कई बार सत्य अकल्पनीय होता है पर उस सत्य को उजागर करना रचनाकार का दायित्व हो जाता है। रश्मि इस अकल्पनीय सत्य को न केवल उजागर करने की हिम्मत दिखाती हैं बल्कि बंद कोठरी के उस दरवाज़े को खोलकर बाहर निकलने पर ज़ोर भी देती हैं।

यह शीर्षक केवल एक कहानी तक सीमित नहीं है बल्कि उनकी ज़्यादातर कहानियाँ 'मनिका का सच', 'नैहर छुटल जाए', 'जैबो झरिया लैबो सड़िया' इत्यादि का भी प्रतिनिधित्व करता है। इन कहानियों में एक स्त्री की दुनियाँ का संघर्ष, उनके सुख दु:ख और उनकी बेहतरी का सपना अपने सांगीतिक लय के साथ विद्यमान है।

'निर्वसन' कहानी भारतीय समाज में प्रचलित पिंडदान जैसे पारंपरिक बिषय को कथ्य के रूप में प्रस्तुत करने का एक लेखकीय उद्यम है जहाँ राम, सीता और दशरथ जैसे मिथकीय पात्रों के बहाने वास्तविक जीवन की सच्चाईयों को सामने रखने की कोशिश हुई है। संवादों के बेहतर तालमेल और भाषायी कुशलता के साथ यह कहानी भी प्रभावित करती है।

रश्मि जी की सभी कहानियाँ पूरी संवेदना के साथ मानवीय मर्म को स्पर्श करती हुईं आगे जाती हैं। उनकी कहानियों के स्त्री पात्र वैचारिक और जुझारू होते हुए भी भीतर से अत्यंत कोमल और संवेदनशील हैं। ख़ास बात यह है कि ये पात्र दुनियाँ की ख़ूबसूरती को हर हाल में बचाए रखने का एक सन्देश देती हैं। इस संग्रह के लिए रश्मि जी को बहुत बधाई।

000

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

कहाँ है मेरा आकाश?

समीक्षक : प्रो. नव संगीत सिंह
लेखक : नीलम पारीक
प्रकाशक : बोधि प्रकाशन, जयपुर

प्रो. नव संगीत सिंह
स्नातकोत्तर पंजाबी विभाग
अकाल यूनिवर्सिटी
तलवंडी साबो-151302
बठिंडा, पंजाब
मोबाइल- 9417692015
ईमेल- navsangeetsingh1957@gmail.com

नीलम पारीक एक हिन्दी लेखिका हैं। उन्होंने अंग्रेज़ी और राजस्थानी साहित्य में एमए के साथ-साथ बी.एड. भी किया है और वर्तमान में एक अंग्रेज़ी शिक्षका के रूप में काम कर रही हैं। उन्होंने हिन्दी और राजस्थानी भाषाओं में कविताएँ और कहानियाँ लिखी हैं और कुछ लघुकथाएँ भी लिखी हैं।

उनकी एकमात्र पुस्तक 'कहाँ है मेरा आकाश' (काव्य संग्रह) में कुल 83 कविताएँ हैं, जिनमें से सभी बिना शीर्षक वाली हैं और इनमें केवल क्रम संख्या लिखी है। नीलम ने यह संग्रह अपने पापा-मम्मी को समर्पित किया है और वह लिखती हैं- पापा, जिन्होंने सिखाया सपने देखना, उन्हें साकार करने के लिये अपना आकाश तलाशना/आकाश में उड़ान भरने का हौसला दिया तो शिक्षा के पंख भी दिये उड़ान भरने को। मम्मी ने सिखाया धैर्य, हर परिस्थिति में अपने को ढालने का हुनर, सहनशीलता का गुण, माँ के जैसा स्नेह बाँटना।

चूँकि नीलम स्वयं एक महिला हैं, इसलिए ये कविताएँ नारीवादी छवि को दर्शाती हैं। कहीं यह महिला बेटी, कहीं बहन, कहीं माँ, कहीं पत्नी तो कहीं प्रेमिका। इस तरह एक महिला को विभिन्न रूपों में चित्रित किया है - नीलम ने। बेटी के लिए उनके विचार कितने प्रेरक हैं और वह अपनी बेटी को कितने विशिष्ट रूप से चित्रित करती हैं : बेटा है गेंदा तो / गुलाब हैं बेटियाँ, / बेटा आफ़ताब / महताब हैं बेटियाँ, / बेटा न समझ पाए शायद / ज़ुबान भी / पढ़ लेती चेहरे की / किताब हैं बेटियाँ।

यद्यपि इस संग्रह की शीर्षक कविता बहुत ही संक्षिप्त (केवल नौ पंक्तियों की) है, लेकिन इसमें प्रस्तुत भाव नारी-मन के अंतरतम भाग को रेखांकित करता है। इसमें कवयित्री माँ को सम्बोधित होकर अपने अस्तित्व के बारे में पूछती है: माँ / तू तो कहती थी / बेटियों तो होती हैं चिड़िया / उड़ जाती हैं इक दिन / पर माँ / चिड़िया तो उड़ती हैं / खुले आकाश में / मैं चिड़िया हूँ तो / कहाँ है मेरा आकाश...?

जैसे उपरोक्त कविता में नीलम अपनी माँ से अपने आकाश के बारे में जानकारी माँगती है, तो इस कविता के जवाब में कवियत्री स्वयं अपने पिता को संबोधित होती है और अपने आकाश को प्राप्त करने की जानकारी देती है। इस लंबी कविता में, कवियत्री पहले अपने पिता से कुछ प्रश्न पूछती है, फिर अपने पिता के माध्यम से अपनी संभावनाओं को प्रकट करती हुई देखती है।

जहाँ कवियत्री ने जीवन को प्रेरणा देती कविताओं की रचना की है: जब तुम मेरी मौत के / साधन जुटा रहे थे / मैं कोयल संग / गीत कोई गुनगुना रही थी।

वहीं उसने मौत को भी परिभाषित किया है। वह मौत को नींद का दूसरा नाम देती है: मौत ...! / तुम क्या हो? / तुम भी तो बस नींद ही तो हो / कुछ पल की, या बरसों की / या फिर सदियों की / फिर तुम से कैसा डर, कैसा भय / होगा अवश्य जीवन उस पार भी।

इस संग्रह की सभी कविताएँ पारिवारिक, सामाजिक, प्राकृतिक और सांस्कृतिक हैं। वास्तव में नीलम ने नारी-मन के दर्द को बड़े ही सौहार्द और स्वतंत्रता के साथ व्यक्त किया है और मेरे विचार से यही इन कविताओं की उपलब्धि है। इस संग्रह में अतीत की कड़वी-मीठी यादें, भविष्य के रंगीन सपने, समाज/देश को सकारात्मक दिशा में ले जाने वाली आकांक्षाएँ शामिल हैं।

साधारण और सामान्य बोली जाने वाली हिन्दी भाषा में लिखी गई इन कविताओं का हर पाठक आनंद ले सकता है। लेकिन एक कविता में संस्कृत के शब्दों की भी भरमार है: आकाशात् पतितं तोयं / सागरम् प्रति गच्छति... / सागरम् प्रति गच्छति...। यह संसार दर्शन को व्यक्त करने वाली पंक्तियाँ हैं। जैसे जल समुद्र से बादल बनकर आसमान की ओर जाता है और फिर बादल से बरसकर जल धरती पर आ जाता है। धरती पर नदियों के साथ प्रवाहित होता हुआ फ़िर से समुद्र में चला जाता है। इसी प्रकार मनुष्य संसार में जन्म लेता है और पुन: ईश्वर में लीन हो जाता है।

000

पुस्तक समीक्षा

(संस्मरण)

70 + की महिलाएँ

समीक्षक : डॉ. अनूप सिंह

लेखक : सुधा गोयल

प्रकाशक : नमन प्रकाशन, नई दिल्ली

डॉ. अनूप सिंह
सम्पादक बुलंद प्रभा
ग्राम- दौलतगढ़, पोस्ट- मिर्जापुर
ज़िला- बुलंदशहर उप्र

70 प्लस की महिलाएँ पुस्तक सुधा गोयल की आत्मकथात्मक शैली में अतीत की स्मृतियों का स्मरण है। जीवन की यह तमाम अनुभूतियाँ जो आनंद का अनूठा साम्राज्य होती हैं। संवेदनाओं की हर छोटी बड़ी लहर जो जीवन को सजाती सँवारती है, ज़िंदगी का हर वह सपना जो खुली आँखों देखा जाता है सब कुछ को लेकर चलती है। यह आत्मकथा बचपन एवं और वृद्धावस्था के तमाम रंगीन यात्रा संस्मरण किसी के भी जीवन की सच्ची अनुभूति हो सकते हैं। आत्मीयता का प्रत्येक कोना इस कथा-मन का पड़ाव है। ये स्मृतियाँ इतना बोलती हैं जितना वर्तमान नहीं बोल सकता। इन ठहराव के क्षणों में इतना गहन गत्यात्मक प्रवाह है कि इनके साथ बहते हुए कभी थकान नहीं होती।

सुधा गोयल की यह जीवन स्मृतियाँ अतीत को सामने उपस्थित कर पीढ़ियों के अंतर को ही समाप्त कर देती है। एक खुलापन वाकई चौंकाने वाला सच समेटे 70 प्लस जीवन का बेहतरीन हलफ़नामा कहा जा सकता है। स्वीकृति का भी अपना एक अलग आनंद होता है। स्वयं को देखना, पढ़ना और समझना क्या इतना आसान होता है। सुधा गोयल ने यही तो किया है। स्वयं को 70 प्लस में आकर देखा है। अपने अतीत में झाँका है। उसकी स्मृतियों में स्वयं को डुबोया है। डूब कर लिखना सुधा गोयल के लेखन का अंग है जो प्रस्तुत पुस्तक में दृष्टिगोचर हो रहा है। शालीनता के साथ स्त्री के अंत:करण को पाठकों के सामने खोल कर दिखाना उसके अम्मा, दादी, नानी, बहू- बेटी, पत्नी आदि तमाम रूपों का दिग्दर्शन कराना तथा जीवन के तरल स्वरुप का सहजता के साथ अनुभूत कराना इस पुस्तक की विशेषता है। अपने मूल रूप में सुधा गोयल ने तीन पीढ़ियों की गाथा एक साथ बुनी है। एक नारी जन्म से लेकर किन-किन पड़ाव को पार करती हुई 70प्लस पार की उम्र में कहाँ पहुँचती है? नारी जीवन यात्रा के उन तमाम पहलुओं का लेखा-जोखा करते हुए लेखिका एक संगीतमय सृष्टि करती हुई जान पड़ती है। पुस्तक एक सुखद एहसास उत्पन्न करती हुई नारी जीवन को दिखाती है। कहीं भी करुणा जनित अवसाद का चित्रण लेखिका ने नहीं किया है जिससे मन दुखी हो उठे। एक प्रसन्नता की लहर उत्पन्न करती हुई तथा अपने समस्त प्रभाव को पाठक पर उड़ेलती है, जिससे पाठक उसके यथार्थ से भिज्ञ होकर रसमय हो उठता है।

सुधा जी गोयल नारी संस्कृति की एक सरल संस्कृति विकसित की है। धर्म और आस्था के आत्मीय अनुबंध पर उन्होंने अपनी पारिवारिक संस्कृति को रचा है। जीवन संगीत की भाँति उनके समस्त लेखन में व्याप्त है। एक परिवार की तीन पीढ़ियों को साथ लेकर जीवन यात्रा का सफर नारी संस्कृति है।

सुधा गोयल ने अपने इस अनुबंध पत्र को सभी के सामने उजागर कर एक सामाजिक हित की बात की है। समाज हित के लिए अपने जीवन के तमाम उतार चढ़ाव दिखाते हुए लेखिका ने नारी संस्कृति का सुंदर चित्रण किया है। बेहद सौम्य और सुसभ्य नारी संस्कृति। यहाँ टकरावों का न होना ही दर्शाता है कि नारियों को कैसा होना चाहिए।

समाज तथा परिवार निर्माण का ज़िम्मा एक नारी पर होता है अत: नारी अपने संस्कृति की रक्षा करने उसका निर्माण करने में स्वतंत्र होती है। वह पीढ़ियों का आँचल है। 70 प्लस इसी आँचल के लिए अपना जीवन समर्पित करता है। सुधा गोयल ने अपनी माँ, सासू माँ, नानी आदि के द्वारा तथा स्वयं आज इस उम्र में अपने द्वारा अपने आँचल की रक्षा करने की चेष्टा की है। पुस्तक में "मन्नत के धागे ", "चिट्टियाँ", "तलाश सुकून के पलों की", "पायजेब " "रिश्तों के पार", " बचपन का बचपना" और "मोक्ष "आदि अन्य कथाएँ भी लेखिका की जीवन स्मृति ही है। यह कथाएँ भी उनका अपने जीवन का भोगा हुआ यथार्थ है। इन्हें भी 70 प्लस के साथ जोड़कर देखें तो जीवन का एक सघन परिदृश्य जिया जा गया जान पड़ेगा। यह सब भी सुदीर्घ जीवन यात्रा के पड़ाव और पहलू हैं जिन्हें इस उम्र की महिला जीती है। सुखद स्मृतियों के ताने बाने से बुना गया उनका यह आँचल सभी को आह्लादित आच्छादित करता है।

000

पुस्तक समीक्षा

(कविता संग्रह)

अभी बहुत कुछ बचा है

समीक्षक : ब्रजेश कानूनगो
लेखक : दुर्गाप्रसाद झाला
प्रकाशक : अंतिका प्रकाशन, नई दिल्ली

ब्रजेश कानूनगो
503, गोयल रिजेंसी, चमेली पार्क
इंदौर 452018 मप्र
मोबाइल- 9893944294
ईमेल- bskanungo@gmail.com

मैं जानता हूँ/ मेरे कहने से/ दुनिया नहीं बदल जाएगी/ फिर भी आदमी हूँ तो /उसे बदलने की कोशिश करता रहूँगा /जीवन भर। उक्त पंक्तियाँ वरिष्ठ एवं वयोवृद्ध कवि डॉ. दुर्गा प्रसाद झाला की कविता ज़िंदा होने की पहचान से उद्धृत है। झाला जी का नया और बारहवाँ कविता संग्रह 'अभी बहुत कुछ बचा है ' हाल ही में उम्र के नब्बे वें वर्ष में अंतिका प्रकाशन से आया है। डॉ. झाला न सिर्फ एक विचारशील और प्रतिबद्ध कवि हैं बल्कि वे आज भी किसी युवा की तरह लगातार सृजनरत हैं। उनकी रचनात्मक सक्रियता अधेड़ होते जा रहे रचनाकारों के अलावा युवा पीढ़ी के लिए भी प्रेणास्पद है।

आमतौर पर उम्र के इस दौर में व्यक्ति वैचारिक तौर पर अधिक लचीला, समझौतावादी और संतोषी होता जाता है। किंतु झाला जी की कविताओं में बुज़ुर्गियत का वैसा लिजलिजापन और स्थितियों के प्रति भावुक समर्पण दिखाई नहीं देता। उनकी कविताओं में प्रेम है, प्रकृति और जीवन को देखने की युवा और प्रौढ़ दृष्टि एक साथ दिखाई देती हैं। पृथ्वी गाती है/ प्रेम गीत/और हवा में उसकी लय/ लहराती हुई / पहुँच जाती है घर-घर/ उसके गीतों से/ आकाश तरंगित हो उठता है/ नदी की लहरें/ एक दूसरे को आलिंगन में बाँधने लगती हैं/और पेड़ पौधे बताएँ नाचने लगते हैं। (पृथ्वी का प्रेम गीत)

राजनीति के वर्तमान दौर और प्रजातंत्र के क्षरण को लेकर कवि के भीतर का उद्वेलन और आक्रोश कविता में रिसकर बाहर आने लगता है। तमाशा हो रहा है/ प्रजातंत्र का/ जादूगर दिखा रहा है/अजीब अजीब रूप / वह मिट्टी को दिखा देता है सोना/ आकाश में बिछा देता है बिछौना/ सब चकित से देखते रहते हैं /वह अपनी आँखें मलते रहते हैं/ वह बजाता है नगाड़े/ बाँसुरी की आवाज़/ उसमें खो जाती है/ इस तमाशे में हो रही है/राजा की जय जयकार / प्रजा का हो रहा है हाल बेहाल। (प्रजातंत्र का तमाशा)

उनकी कविताओं के केंद्र में कवि के बाहर और भीतर की संवेदनाओं की काव्यात्मक अभिव्यक्ति होती ही है बल्कि समाज में आ रहे बदलाव और बाज़ार के प्रभावों पर भी टिप्पणियाँ दिखाई देती हैं। उल्लेखनीय पक्ष यह है कि कविताओं में कविता कहीं भी दर्शन और आध्यात्म में नहीं बदलती बल्कि कहीं न कहीं प्रतिरोध का काम करती है। पाठक को सचेत और जागरूक करने का काम करती है। जब मैं जाऊँ जहाँ/ वहाँ एक सरोवर हो/ जिसमें हंस तैर रहे हों/ वहाँ एक खेत हो/ जिसमें फसलें लहरा रही हों/ वहाँ एक घर हो/ जिसमें सब घरों की सुगंध हो/ वहाँ वे लोग हों / जिनकी आँखों में सबके लिए प्रेम छल छला रहा हो/ वहाँ एक चरागाह हो/ जहाँ ग्वाला गायों को चरा रहा हो/ जब मैं जहाँ जाऊँ/ वहाँ एक पेड़ हो /जिसकी छाया में हारे थके लोग/ खुशी-खुशी आपस में बतिया रहे हों/ जब मैं जाऊँ जहाँ /वहाँ मैं नहीं हम हों। (मेरी चाह)

आदमी एक अनवरत यात्रा है/ वह नहीं है स्थगित अपने समय में /वह बन जाता है ठूँठ से कोंपल/ जब तब/ पहाड़ से रिस रिस पड़ता है झरना/ जब तब/ शिराओं में उभर आती हैं आकृतियाँ/जब तब/ उमड़ आता है माँ के स्तनों में दूध/ जब तब/ वह संपूर्ण प्रकृति का छंद है/ आसमान और धरती को/ जोड़ने वाला बंद है...।

डॉक्टर दुर्गा प्रसाद झाला के कविता संग्रह की कविताएँ निराशा और हताशा की कविताएँ नहीं हैं। वे जीवन जीने का रास्ता दिखाती हैं। कठिनाइयों से घबराने की बजाए संघर्ष से उनसे पार पाने की बात करती हैं। जो कुछ अच्छा बचा है उसे सहेजने की बात करती है। उम्मीद की रोशनी दिखाती है। हमारे भीतर आत्म विश्वास का उजियारा संचारित करने का उपाय करती हैं।

अंत में शीर्षक कविता की पंक्तियाँ देखें-

बचे हैं अभी सपने /जारी है सत्य की खोज /बचा है धरती में सृजन का बीज/ बची है आदमी की आँखों में नमी/ बची है राख में दबी आग/ बची है हवा की साँस/बची है ठूँठ में हरी पत्ती/ बची है जीवन की रेख/ सब कुछ ख़त्म नहीं हुआ है/ बच्चों में एक नई भाषा जन्म ले रही है। अभी बहुत कुछ बचा है।

000

(शोध आलेख)

समकालीन उपन्यासों में चित्रित ग्रामीण समाज

शोध लेखक : डॉ. सुप्रिया सिंह

डॉ. सुप्रिया सिंह
सहायक आचार्य
सेंट क्लारेट कॉलेज, बैंगलोर
मोबाइल- 9886184007
ईमेल- supriya@claretcollege.edu.in

भारत को गाँवों का देश कहा जाता है। भारतीय संस्कृति की आत्मा आज भी गाँवों में निवास करती है। आज़ादी के बाद से लेकर वैश्वीकरण के विस्तार तक गावों की संरचना, संस्कृति, संवेदना आदि में व्यापक परिवर्तन देखने को मिला है। यद्यपि भारतीय ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक परिवर्तन हुए हैं, फिर भी सांस्कृतिक रूप से उसकी विशिष्टताएँ बरकरार हैं। इन्हीं विशिष्टताओं को समय-समय पर साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया है। इस लेख में कुछ बिंदुओं के तहत ग्रामीण जीवन, उसकी संवेदनाओं और समस्याओं को देखने-परखने की कोशिश की गई है।

भारतीय किसान -

भारत का किसान भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ की हड्डी है। उसका पूरा जीवन ग्रामीण संस्कृति से अनुप्राणित है, किसान का जीवन चाहे कितने भी दुखद या संघर्ष से भरा क्यों न हो वह किसी भी त्योहार आदि को बड़े ही हर्षोल्लास से मनाता है फिर चाहे होली का फाग हो या आषाढ़ का आल्हा, सावन की कजरी हो या संस्कारों पर गाए जाने वाले लोकगीत। उसके जीवन में सामाजिकता और सामूहिकता की भावना बनी रहती है। वैश्वीकरण के फलस्वरुप भारतीय ग्रामीण जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव से किसान भी अछूता नहीं रहा है। वह अब पहले की तुलना में ज़्यादा जागरूक हुआ है। जहाँ पहले हल और बैल के बिना खेती की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी, वहाँ अब औद्योगिकरण के प्रसार से कृषि क्षेत्र में भी नई तकनीक अपनाई जाने लगी है। जुताई, बुवाई और कटाई के लिए आधुनिक यंत्र मौजूद हैं। इसके प्रभाव से जहाँ किसानों को सुविधा मिली है वहीं खेती के लिए पूँजी की आवश्यकता भी बढ़ी है। इसके परिणाम स्वरूप किसान क़र्ज़ लेने को बाध्य हुआ है। यद्यपि इस संबंध में सरकार ने कई सारी योजनाएँ बनाई हैं, जिनमें आसानी से क़र्ज़ प्राप्त हो जाता है, लेकिन क़र्ज़ लेकर उसे चुकाना हर बार किसान के लिए संभव नहीं हो पाता। कभी मौसम की मार, कभी जानवरों और टिड्डीयों का प्रकोप, कभी फसल का संरक्षण आदि ऐसे अनेक विषय हैं जिनसे उसकी आर्थिक स्थिति ऋण देने की दशा में नहीं आ पाती।

उपन्यासकार डॉ. विवेकी राय जी नमामि ग्रामम उपन्यास में लिखते हैं - मेरे बेटे साल प्रारंभ होते ही ऋण लेने की योजना बनाने लगते हैं। गाँव के कुछ नमक चाटकर धनी बन जाने वाले लोगों की पाँचों उँगलियों के लिए वह अनायास ही घी बन जाता है। लाइसेंसशुदा महाजन के अतिरिक्त अब तक बैंक और को- ऑपरेटिव सोसाइटीयाँ भी ऋण देने लगी हैं। ऋण चक्र से मुक्ति किसान की नहीं। ..... अच्छे दिन आ रहे हैं, इस आशा में वह जीवन सागर को हेलता, मचलता, एड़ी का पसीना चोटी करता चलता है, किंतु भाग्य के निष्ठुर हाथ उसे कभी वरदान या सहायता नहीं देते। 1

कई बार ये किसान कोऑपरेटिव सोसाइटी के भ्रष्टाचार के शिकार भी हो जाते है। श्रीलाल शुक्ल ने राग दरबारी उपन्यास में कोऑपरेटिव सोसाइटी के घोटाले का जिक्र किया है और इसके लिए अप्रत्यक्ष रूप से मैनेजिंग डायरेक्टर वैद जी को ज़िम्मेदार बताया है। विश्रामपुर का संत उपन्यास में कोऑपरेटिव फार्म को मिले क़र्ज़े का भुगतान उसके सदस्य मजदूरों की मजदूरी काट कर दिया जाता है। लेकिन फिर भी जब सब करके क़र्ज़े भरपाई नहीं हो पाती है तो किसानों को अपनी ज़मीन रेहन पर रखनी या बेचनी पड़ती है- "राम लोटन में कुछ शोर मचाया था। उसने कहा कि कागज पर मेरा अँगूठा लिया, मेरा खेत भी ले लिया पर रेहन का रुपया मुझे मिला ही नहीं। तब दुबे ने जवाब में उसे गाली दी और कहा, तो क्या उस कापरेटिव वाले क़र्ज़ का भुगतान तुम्हारे बाप ने किया है? यह इसी रुपये से तो हुआ है। 2

ज़मीन जाने के बाद किसान मजदूर बनने को विवश होने लगता है गाँव में काम न मिलने से वह पलायन के लिए मजबूर हो जाता है। गाँव की मजदूरनी मन्दाकिनी अपनी व्यथा को व्यक्त करते हुए कहती है - स्थानीय मजदूर रखते नहीं है लोग डरते हैं कि कहीं संगठन ना बना ले। एक मिट्टी से जन्मे लोग एक होकर उनके विरुद्ध ही हाथ न छोड़ दें बस यही एतिहाद बरतते हुए

ठेकेदारों ने भूखों के मुँह से रोटी छीन ली।3

जो भी हो अंत में नुकसान तो किसान का ही होता है।

ग्रामीण शिक्षा-

वर्तमान समय में शिक्षा मानव जीवन का एक आवश्यक और अनिवार्य अंग है। लेकिन आज भी अधिकांश गावों में शिक्षा को लेकर उतनी जागरूकता नहीं है। ग्रामीण समस्याओं के मूल में शिक्षा का अभाव एक प्रमुख कारण है। आज सरकार के प्रयासों के बावजूद भी भारत के गाँव समान शिक्षा के मानकों पर खरे नहीं उतर पाते हैं। ग्रामीण शिक्षकों में घटते मूल्यों को दर्शाते हुए श्रीलाल शुक्ल जी ने विश्रामपुर का संत में लिखा है - पिछले दो दिनों में उन्होंने जो देखा था वह सिर्फ खिझाने वाला था। सबसे पहले यहाँ की ज़बान ! हायर सेकेंडरी स्कूल के अध्यापक, या अल्लाह !आज के अध्यापक अब ऐसे हो गए हैं। वे आपस में और छात्रों से भी गँवारू ज़बान में बोलते हैं। छात्र उनसे भी ज़्यादा गवार !और छात्राएँ शहर की छात्राओं की नकल करने में मशगूल।4

छात्रों के शैक्षिक विकास में विद्यालय के महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। गाँवों में विद्यालयों की दशा को युद्ध स्थल उपन्यास में देखा जा सकता है। वर्तमान गाँवो के अनेक स्कूल आज भी दुरावस्था में है। एक उदाहरण देखा जा सकता है - गाँव से बाहर बच्चों के पढ़ने के लिए पाठशाला का निर्माण किया गया है। पाठशाला में सिर्फ दो कमरे हैं और एक बरामदा। उसकी हालत ऐसी है कि एक कमरे में तो गुरुजी ने अपने मवेशियों का भूसा रख दिया है और दूसरे कमरे को तो कमरा कहना कमरों का उपहास उड़ाना होता है। उसका छप्पर उजड़ चुका है, दीवारें नूनी लगने की वजह से झड़ रही हैं तथा खिड़कियाँ और दरवाज़े कभी के गायब हो चुके हैं। बच्चे या तो इसी कमरे में बैठकर पढ़ते हैं या बरामदे में। लेकिन थोड़ी सी धूप बढ़ जाने और हल्की सी आँधी-पानी आ जाने पर गुरुजी को पाठशाला बंद करने का बहाना मिल जाता है।5

21वीं सदी में ग्रामीण लड़कियों की शिक्षा का ज़्यादा प्रचार -प्रसार हुआ। बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ के नारे ने भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। रामदरश मिश्र जी अपने उपन्यास बीस बरस में लिखते हैं -गाँव से बाहर निकलकर बगीचे की ओर चला तो देखा तमाम बच्चे स्कूल की ओर जा रहे थे। उनमें अच्छी-ख़ासी संख्या लड़कियों की थी और बड़ी-बड़ी लड़कियाँ भी थी। यानी दर्जा सात -आठ में पढ़ने वाली लड़कियाँ। दर्जा चार तक तो कन्या पाठशाला भी खुल गई है, जिसमें सुखदेव जी की भांजी भी पढ़ाती है। सुना है जवार के लोग कोशिश कर रहे हैं कि वह स्कूल भी हाईस्कूल तक हो जाए। लेकिन यह इतना आसान तो है नहीं। जब होगा, तब होगा, तब तक लड़कियाँ सह शिक्षा ले रही हैं। यह देखकर अच्छा लगा कि लड़कियों की शिक्षा के मामले में बदलाव आया है। हर आदमी बच्चियों को स्कूल भेज रहा है। वे कहाँ तक पढ़ पा रही है यह अलग बात है।6

इसके साथ ही गाँव की शिक्षा प्रणाली भी कमोबेश दोषपूर्ण है। वर्तमान समय में इस दिशा में काफी बदलाव का प्रयास किया जा रहा है, लेकिन यह प्रयास ग्रामीण शिक्षा के संबंध में कहाँ तक सफल होगा यह तो आने वाला भविष्य ही तय करेगा।

शिक्षित बेरोज़गारी-

नमामि ग्राम्म, भीम अकेला और बीस बरस आदि उपन्यासों में बेरोज़गारी की समस्या को दर्शाया गया है। उपन्यासों में पात्रों के शिक्षित होने पर भी उन्हें रोज़गार नहीं मिलता। भीम अकेला उपन्यास में प्रधान जी का लड़का, बी ए पास है वह घर पर रहता है, बेकार है। काम कहीं मिलता नहीं है। बगैर काम के बच्चे को घर से बाहर भेजे तो कहाँ भेजें।7

रामदरश मिश्र अपने उपन्यास बीस बरस में रोज़ी-रोटी की तलाश में शहर जाते ग्रामीण मजदूरों की बेबसी का चित्रण करते हुए लिखते हैं - क्या ज़िंदगी है इनकी भी। इनका अपना गाँव तो है ही लेकिन वह ना उन्हें रोटी दे सकता है ना सामाजिक सम्मान। दूसरे गाँव या स्थान रोटी तो देते हैं किंतु वह अपनापन नहीं दे पाते जो जीने के लिए बहुत ज़रूरी है। रोटी और अपनेपन के बीच झूलती इनकी ज़िंदगी यूँ ही बीत जाती है।8

आज भी देखा जा सकता गाँव के शिक्षित युवक शहरों में मजदूरी करने को विवश है। कोविड-19 के भयावहता के समय ये प्रवासी मजदूर फिर से अपने गाँव, अपनी मिट्टी में जाने को विवश हो गए, लेकिन वहाँ भी उन्हें अपना आने वाला कल अंधकार में ही दिखाई पड़ रहा था।

शिक्षित बेरोज़गारी का नकारात्मक पक्ष यह है कि अब ग्रामीणों में पढ़ने को लेकर उत्साह नहीं रह गया है। इस स्थिति को बताते हुए ज्योतिष जोशी अपने उपन्यास सोनबरसा में कहते हैं - गाँव में निरक्षरता का साम्राज्य है किसी की भी रुचि पढ़ने लिखने में नहीं है। लोगों का यही मानना है कि जब पढ़ने लिखने से नौकरी ही नहीं मिलने वाली, तो फिर पढ़कर पैसा, समय और दिमाग ख़राब करने की ज़रूरत ही क्या है।9

संयुक्त परिवार का विघटन –

गावों से काम की तलाश में निकले युवक वापस अपने गाँव नहीं आना चाहते। वे ज़िंदगी की जद्दोजहद में इतना आगे निकल जाते हैं कि उन्हें माँ-बाप, रिश्तेदार दिखाई नहीं देते। इसलिए वृद्धावस्था की समस्या ग्रामीण जीवन में भी बढ़ रही है। 'रेहन पर रग्घू' में काशीनाथ सिंह बुजुर्ग पात्र रघुनाथ के माध्यम से लिखते हैं-"रघुनाथ भी चाहते थे कि बेटे आगे बढ़े। वे खेत और मकान नहीं है कि अपनी जगह ही न छोड़ें। लेकिन यह भी चाहते थे कि ऐसा भी मौका आए जब सब एक साथ हो, एक जगह हो, आपस में हँसे, गाएँ, लड़े-झगड़े, हा-हा हू-हू करे, खाएँ-पिएँ घर का सन्नाटा टूटे। मगर कई साल हो रहे हैं और कोई कहीं है, कोई कहीं। और बेटे आगे बढ़ते हुए इतने आगे चले गए हैं कि वहाँ से पीछे देखे भी तो न बाप नज़र आएगा न माँ।" 10

इस पलायन का परिणाम यह हुआ कि संयुक्त परिवार बिखरने लगा। परिवार बढ़ने के साथ-साथ कृषि-ज़मीन उसी अनुसार कम होती गई।

डॉ. हेमराज 'निर्मम' के मुताबिक- "सर्वप्रथम कृषि-भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटने लगी। निजी संपत्ति बना सकने के वैध

अधिकार ने शताब्दियों से चली आ रही संयुक्त परिवार प्रथा को प्रबल धक्का दिया। भाईयों में आपस में ज़मीन बँटने लगी। जिस भूमि को संयुक्त परिवार में सभी जोतते थे, वह अब अलग-अलग बोई जाने लगी।"11

अंधविश्वास-

अशिक्षा के कारण ग्रामीण समाज में अंधविश्वास की जड़ें काफी गहरी हैं। चाक, युद्धस्थल, विश्रामपुर का संत, औरत, यह अंत नहीं आदि उपन्यासों में ग्रामीण जीवन में व्याप्त अंधविश्वास का भी चित्रण किया गया है।

धनराज भाई, मैं अभी पिछले साल की बात बता रहा हूँ। ..... रामशरण की बहू एक दिन कहीं जा रही थी। रास्ते में ठेगुआ का कुत्ता उन्हें देखकर भौंकने लगा। उन्होंने एक दो बार डाँट लगाई। लेकिन वह नहीं माना। तब उन्होंने आँखें तरेर कर उसकी ओर ताकते हुए अपने आँचल की छोर से कुछ खोल कर उसके ऊपर फेंकना शुरू किया। मैंने तो अपनी आँखों से देखा नहीं, लेकिन जिन लोगों ने देखा है, वे कहते हैं कि कुत्ता वही गिरकर छटपटाने लगा। उसके बाद हफ्ते भर भी नहीं जी सका। मुँह से खून फेंकते -फेंकते मर गया। मेरी तो इतनी लंबी उम्र हो गई लेकिन रामचरण की बहू की तरह पक्की डायन मैंने और कहीं नहीं देखी। 12

गावों में अक्सर बच्चे के जन्म के बाद उसके गले में काला सूत और माथे पर काला टीका लगा दिया जाता है। इसके पीछे मान्यता है कि ऐसा करने से बच्चे को नज़र नहीं लगती।

गाँव में चले आ रहे अंधविश्वास का एक उदाहरण देखा जा सकता है- "गाँव के लड़के ज़मीन पर पानी डालकर, उसके कीचड़ में लोट-पोट कर 'काले मेघा पानी दे नहीं तो अपना नानी दे' गाते हुए पूरे गाँव में घूम आए। सुनाई पड़ा है कि बगल के गाँव में औरतों ने आधी रात के अंधेरे में नंगी होकर हल भी चलाया। लेकिन सारे टोटकों के बावजूद अभी तक बारिश नहीं हुई।"13

गुटबंदी-

भारतीय गाँवो में गुटबंदी का प्रभाव आसानी से देखा जा सकता है। गुट के लोग राजनीति, ज़मीन, चुनाव आदि अनेक अवसरों पर एक दूसरे का विरोध करते हैं। कभी -कभी तो यह विरोध हिंसा का रूप भी ले लेता है और जिसका परिणाम अत्यंत भयावह होता है। मिथिलेश्वर में अपने उपन्यास युद्ध स्थल में ऐसी ही हिंसक गुटबंदी का जिक्र किया है - रामशरण ने चिल्लाकर कहा जितनी जल्दी हो सके, चमरटोली के लोगों को सबक सिखा देना चाहिए ..... पुश्तों से जो बात इस गाँव में नहीं हुई थी, वह बात अब संभव होने लगी है।

मुरारी सिंह ने कहा, आप सब लोग सिर्फ मेरी पीठ पर खड़े रहिए मैं मिनटों में चमरटोली के लोगों की गर्मी झाड़ दूँगा। 14

जाति व्यवस्था-

भारतीय गाँवों में जाति व्यवस्था आज भी अपनी पूरी कट्टरता से विद्यमान है। गाँव के लोग किसी भी रचनात्मक कार्य को करने में उतने संगठित नहीं होते जितना छुआछूत, अस्पृश्यता या पवित्रता को अपनाए रखने में होते हैं। चाक उपन्यास का पात्र रंजीत, सारंग को दुखी देखकर उसे समझाते हुए कहता हैं कि, -गाँव की निगाह में तुम रंजीत सिंह जाट की बहू हो, और यही तुम्हारी पहचान है और हम जिस कौम, जिस समाज से जुड़े हैं, उससे अलग वजूद नहीं रखते। बिरादरी से बाहर रहकर हमारी क्या औकात ?उसके नियम इसलिए ज़रूरी है। 15

मूल्य विघटन-

पुराने समय में गाँव के लोगों में परस्पर एकता और सौहार्द का भाव दिखाई पड़ता था। मुंशी प्रेमचंद की रचनाओं के गाँव इसका प्रमाण रहे हैं। लेकिन आज के दौर में सौहार्द का स्थान पारस्परिक वैमनस्य ने ले लिया है। एक उदाहरण द्वारा इसे देखा जा सकता है -

गाँव में नए किस्म के अलगाव, तनाव, सिकुड़न, स्वार्थपरता, संघर्ष, अहंकारपूर्ण विद्वेष, ऐठ, तिकड़मबाजी, फरेब और दुर्मति - दुर्भाग्य जम गए हैं। एक-दूसरे को देखकर जलेंगे और एक -दो को नहीं यह जलन सबको जलायेगी। आज हो भी यही रहा है। और तो और भाई -भाई में मनमुटाव है। व्यक्ति -व्यक्ति में वैमनस्य की ज्वाला धधकती है। एक का पैर फिसला तो दूसरा हँसता है। दूसरे पर वज्रपात होता है तो पहले का जी जुड़ाता है, और यह कि दोनों के सर्वनाश पर सारा ज़माना हँसता है। 16

निष्कर्ष-

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि वैश्वीकरण का प्रभाव शहरों के साथ-साथ गाँवो पर भी दिखाई पड़ रहा है। अब गाँव के समृद्ध परिवार के युवक बाहर पढ़ाई कर बड़े शहरों में नौकरियाँ कर रहे हैं। लेकिन कहीं न कहीं ग़रीब किसान और मजदूरों के बच्चे आज भी गाँव में ग़रीबी का जीवन जीने को अभिशप्त हैं। यद्यपि आज के गाँवों की दशा पहले से बेहतर हुई है और अधिकांश गाँवों तक पक्की सड़क और बिजली की सुविधा हो गई है। वर्तमान समय में पक्के मकान, स्कूल, कालेज, अस्पताल, बाज़ार, थाना आदि गाँवों की विकास यात्रा के प्रमाण है। हम आशान्वित हैं कि आने वाले भारत की ग्रामीण पीढ़ी पुरानी समस्याओं से निजात पाकर एवं तकनीकी का प्रयोग कर आधुनिक बनेगी और मूल्य परक शिक्षा द्वारा उनका शैक्षणिक और चारित्रिक विकास होगा।

000

संदर्भ-

1.डॉ विवेकी रॉय, नमामि ग्रामम, पृ.57, 2.श्रीलाल शुक्ल, विश्रामपुर का संत, पृ.123 -124, 3.मैत्रेयी पुष्पा, इदनमम, पृ.181 - 182, 4.श्रीलाल शुक्ल, विश्रामपुर का संत, पृ.84, 5.मिथिलेश्वर, युद्धस्थल, पृ.94, 6.रामदरश मिश्र, बीस बरस, पृ.114, 7.विद्यासागर नौटियाल, भीम अकेला, पृ.26, 8.रामदरश मिश्र, बीस बरस, पृ.115 -116, 9.ज्योतिष जोशी, सोन बरसा, पृ.9, 10. काशीनाथ सिंह : रेहन पर रग्घू, राजकमल प्रकाशन, पृ. 133, 11.डॉ. उत्तम भाई पटेल : स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में कृषक जीवन, पृ. 35, 12.मिथिलेश्वर, युद्धस्थल, पृ.87, 13.कमलाकांत त्रिपाठी : बेदखल, पृ. 122, 14.मिथिलेश्वर, युद्धस्थल, पृ.47 -48, 15.मैत्रेयी पुष्पा, चाक, पृ. 169, 16.डॉ विवेकी रॉय, नमामि ग्रामम, पृ.62

(शोध आलेख)

आदिवासी हिन्दी उपन्यासों में सांस्कृतिक जीवन

शोध लेखक : अखिलेश कुमार यादव, शोध-छात्र, हिन्दी विभाग
शोध निर्देशक : प्रो. राजेश कुमार तिवारी, हिन्दी विभाग, डी.ए-वी. कॉलेज, कानपुर, (उ.प्र.)

अखिलेश कुमार यादव
शोध-छात्र, हिन्दी विभाग
सी. एस. जे. एम. विश्वविद्यालय,
कानपुर, (उ.प्र.)

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का संसार में महत्वपूर्ण स्थान है। समस्त संसार की सभी संस्कृतियों का जन्म इतिहास में वर्णित आदिवासी समाज से माना जाता है। सांस्कृतिक दृष्टि से आदिवासी समाज समृद्ध एवं परिपूर्ण है। संस्कृति का जन्म एवं विकास मानव समाज के अभ्युदय के साथ ही आरम्भ हुआ। जनजातीय समाज मानव इतिहास में संस्कृति के उन आरम्भिक चरणों की ओर संकेत करते हैं, जहाँ से वे विकास की वर्तमान अवस्था तक पहुँची हैं, 'प्रत्येक मानव समूह की संस्कृति में विशिष्टता का यह रूप पाया जाता है कालान्तर में जब सरल समाज धीरे-धीरे जटिलता की ओर उन्मुख होते हैं तो यह विशिष्टता मात्र एक अतीत की वस्तु बनकर रह जाती है। जनजातीय समाजों के बारे में जब पूर्ण जानकारी हो सकती है, वह उसे विभिन्न सांस्कृतिक पक्षों के बारे में समझा जाये।1 आदिवासी संस्कृति का मूल और विस्तार उनके रीति-रिवाजों, प्रथाओं में दिखाई देता है। ऊपर से देखने पर आदिवासियों की प्रथाएँ विचित्र कौतूहलपूर्ण और आश्चर्यजनक लग सकती हैं, लेकिन नजदीक से देखने पर ये प्रथायें उनके जीवन के अनेक मिथकों, संस्कारों, परम्पराओं और व्यवहारों को खोलती हैं। धार्मिक विश्वासों, मान्यताओं, अदृश्य शक्तियों के रहस्यों और परास्वप्न स्मृतियों की खोज तक पहुँचती हैं। आदिवासियों की संस्कृति में ऐतिहासिक, सामाजिक, आर्थिक परम्पराओं का उल्लेख ही नहीं मिलता बल्कि उनके चरित्र के निर्माण और जातीय सीमाओं में बोध रखने का कार्य भी संस्कृति करती है।

आदिवासी समाज में लोक संस्कृति के विविध उपादान अत्यन्त विकसित अवस्था में देखे जा सकते हैं इनकी परम्परा में लोक नृत्य, लोक गीत एवं लोक वार्ताओं का बड़ा महत्त्व है आदिवासियों के लोक गीत व लोक नृत्य की समृद्धता भारत के सर्वाधिक विकसित आधुनिक कलाकारों को भी प्रेरणा एवं वैभव प्रदान कर सकती है। इनमें अज्ञान, अन्धश्रद्धा के कारण रूढ़ि प्रथा है। अग्नि प्रथा, जात पंचायत, नशापान, भोज देना, बलि प्रथा, बहु विवाह आदि परम्पराएँ व प्रथाएँ शोषण का आयाम हैं, हिन्दी आदिवासी कहानियों में इनके सांस्कृतिक जीवन की यथार्थ झलक दिखाई देती है। वे अपने इस सांस्कृतिक जीवन को पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुरक्षित रखने की भरसक कोशिश भी कर रहे हैं परन्तु वैश्वीकरण तथा भूमण्डलीकरण के दौर में अब आदिवासी लोक या सांस्कृतिक जीवन बिखरता जा रहा है।

जैसे–जैसे आदिवासी समाज सभ्य और संस्कृतनिष्ठ समाज के सम्पर्क में आने लगा है। वैसे-वैसे उसके आभूषण, खान-पान, रहन-सहन में भी बदलाव होने लगा है आभूषण के अतिरिक्त शरीर को अलंकृत करने के लिए उस पर कलात्मक चित्र बनवाए जाते हैं। राउतों में शरीर को गोदने का व्यवसाय प्रमुखत: स्त्रियों द्वारा किया जाता है गूँदना स्थायी आभूषण के रूप में विद्यामन होता है। अपने पति को प्रसन्न करने के लिए चित्र गुदवाना अनिवार्य माना जाता है। राउतों में गूँदना गुँदवाने की परम्परा को लेकर वीरेन्द्र जी कहते हैं – 'लेकिन जब–जब कोई गूँदना गुँदवाने आती है उसके पास, मौढ़ी नहीं जनी तब अपनी दशा पर फूली नहीं समाती फुलिया, तसल्ली पाती है। तब सोचती है कि भली रही जो मैं राग से निबटी। नहीं तो मोए भी अपने जन को रिझाने, तपाने की खातिर नित नये गूँदना गुँदवाने होते अंग-अंग पर।'2

आर्थिक दरिद्रता के कारण आदिवासी महिलाएँ कम आभूषण पहन पाती हैं। आदिवासी महिलाओं का मुख्य आभूषण मालाएँ ही होती हैं। 'उसके गले में डगर पोल द्वि गुरियों की माला, जो चेलिक को उसकी प्रेमिका मोटिभारी भेंट करती है।'3 हमारे देश में एक तरफ गरीब उपेक्षित एवं दलितों की अर्थहीन वैराग्य संस्कृति है वहीं दूसरी ओर पूँजीपतियों एवं प्रभवर्ग की भोगवादी संस्कृति है। जनसंस्कृति की रक्षा का दायित्व हमारे बुद्धिजीवी साहित्यकारों पर है। बस्तर के गोंड़ आदिवासियों के नर्तक सम्बन्धी पोषाक अत्यन्त आकर्षक होते हैं। ये लोग अपने सिर पर गौर पशु के सींगों तथा मोरपंख को धारण करते हैं। 'जंगल के फूल' उपन्यास में गोरे अधिकारी

द्वारा आदिवासी नर्तकों को देखा जाता है। 'पुरुष ने सिर पर मोरपंख और जंगली भैंसे के सींग बाँधे थे।'4 कबूतरा जनजाति की पोषाक अलग प्रकार की होती है। इनका पहनावा 'घाघरा-चोली' होता है। लेखिका ने कबूतरा जनजाति की पोषाक और आभूषण के बारे में लिखा है – 'गोरा उजला चेहरा छोटा माथ, सुतवा नाक। नाक में नगजड़ी मैली सी लौंग। आँखों में चमकदार नजर, अण्डाकार चेहरे की नुकीली ढोठी पर गुँदने की बूँद।'5 छोटे बच्चे लंगोटी तथा जालीदार बनियान पहनते हैं।

आदिवासियों के जीवन में धर्म के साथ-साथ उस पर आश्रित पर्व त्यौहारों का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। उनके पर्वों की धार्मिक महत्ता के साथ-साथ आर्थिक महत्त्व भी होता है। आदिवासी लोग अलग-अलग जाति के भिन्न-भिन्न पर्व त्यौहार मनाते हैं। इसके अतिरिक्त उनके कुछ पर्व पूर्वजों की याद में भी मनाये जाते हैं। इन पर्वों के अवसर पर लोग नृत्य, गाना और संगीत में डूब जाते हैं। इनके पर्व सरहुल, कर्मा, माघी, सोहराई, गहरियाड़ आदि कई प्रकार के होते हैं। 'गोंड आदिवासियों के पर्व तथा त्यौहार वर्ष भर मनाये जाते हैं। शायद ही कोई माह किसी उत्सव या पर्व के बिना रहता है। कभी देवता का त्यौहार होता है तो कभी अन्य या धरती अथवा कभी वर्षा की आकांक्षा से त्यौहार मनाये जाते हैं। कभी कभी अच्छी फसल की खुशी में, कभी नयी फसल की खुशी में उत्सव मनाया जाता है। सभी पर्व त्यौहार मनाने का ढंग लगभग एक जैसा है। सभी पर्वों में जानवरों या पक्षियों की बलि दी जाती है। लगभग सभी त्यौहारों में नृत्य और गीत का आयोजन होता है।'6

धार उपन्यास में संथाल आदिवासी सांस्कृतिक कार्यक्रम में संथाल का जागरण गीत नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए सभी लोगों को जागने का तथा नशे की खुमारी में नहीं पड़ने का गीत गाते हैं- 'दे वाहा-पे-ए लगन विराट पे ए / जापित रे दो आदो बोया वन वन ताहै ना।'7

आदिवासी जन-जीवन के पर्व-त्यौहार के सन्दर्भ में राकेश कुमार सिंह ने 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में लिखा है – 'अपने समस्त दुःखों, पीड़ाओं और दैन्य के बावजूद जंगल अपनी उत्सव धर्मिता को संजोए हुए है। बचाकर रखे हुए हैं अपने पर्व त्योहार।'8 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास में थारू जनजाति सहोदरा माई का पर्व त्योहार मनाते समय थारू-बालाएँ, किशोरियाँ तथा जवान सभी नंगे पाँव नाचते हैं- 'बाबा जइहैं हाजीपुर, भइया जइहैं पटना, / कि भइया जइहैं पटना / हो भइया जइहैं पटना / से सइहाँ जइहैं उहैबेतिया नौकरिया / सइहाँ जइहैं..... ।'9

इसी तरह 'जो इतिहास में नहीं है' उपन्यास में घुमकुडिया पर्व में दो भिन्न गांवों की भिन्न जातियों की लड़कियों का आपस में नृत्य करना, वन आदिवासी समाज में एकता की भावना को प्रसारित करना था, जिसे लेखक ने आदिवासी संथाल हारिल के माध्यम से चित्रित किया है- 'उराँव लड़कियों केसाथ नाचती संथाल कुंवारियों को एक घुमकड़िया में उपस्थित देखना हारिल मुरमु को जंगल की एकता का प्रतीक लग रहा था।'10

विवाह के समान मृतक संस्कार भी आदिवासी संस्कृति में विशिष्टता रखता है। जंगल के फूल उपन्यास में गोंडो में मृत्यु के बाद ढोल बजाना, देवता की पूजा करना, मुर्गी की बलि देकर खून से गड्डे को पवित्र करना, नाच-गाना, शराब पीना, पत्थर पर मृतक के जीवन के कारनामे खुदवाना आदि प्रमुखता से देखा जा सकता है। 'जंगल जहाँ से शुरू होता है' में विसराम की लड़की की मृत्यु होने से लाश को गंगा नदी में फेंका जाता है। 'मोरझाल' में भील जनजाति में अग्नि संस्कार करना, पाँच दिन मृतक के लिए घाट पर भोज ले जाना, स्मारक बनवाना, वहाँ गाय की मूर्ति रख कर पुरोहित द्वारा दिलाना, मृतात्मा का स्वर्ग में पहुँचना आदि का चित्रण प्रस्तुत है। आदिवासी जनजाति में मृतक संस्कार में सामूहिक भोज, बलि आदि का भी विवेचन मिलता है।

आदिवासी उपन्यास साहित्य में लोक संस्कृति के अन्तर्गत लोक कथाओं का भी वर्णन मिलता है। 'काला पादरी' उपन्यास में तेजिंदर ने उरांव जनजाति की वंश वृद्धि से सम्बन्धित लोक कथा का वर्णन किया है- 'भइया-बहन को धरमेस ने प्रजनन रहस्य का ज्ञान कराया। अब तक भइया-बहन के बीच लकड़ी का एक लट्ठा डालकर एक साथ सोया करते थे। धरमेस ने लड़के से कहा कि जब तुम यह लट्ठा पार करोगे तब मानव की वृद्धि होगी। जब भाई और बहन की गहरी नींद के बीच से धरमेस ने लकड़ी का लट्ठा हटा दिया और मनुष्य की प्रथम जोड़ी की शुरूआत की। वहाँ से मानव की वृद्धि शुरू हो गयी।'11

आदिवासी मुंडा जनजाति समाज में उनके इष्टदेव, सर्वशक्तिमान देवता 'सिंगबोगा' से सम्बन्धितलोक कथा प्राप्त होती है। सिंगबोगा अर्थात् सूर्य। राकेश कुमार सिंह के उपन्यास पठार पर कोहरा में मुंडा जनजाति को कष्टों से उबारने और उनकी सुरक्षा करने के लिए सूर्य अर्थात् सिंगबोंगा के अवतरण या अवतार की लोक कथा का वर्णन मिलता है। 'सिंगेल-दा में कभी भयानक आग बरसी थी। आसमान से आग की बरखा हो रही थी। मुंडा लोगों के दादा-परदादाओं पर। तब प्रकट हुए थे सिंगबोंगा। सर्वशक्तिमान देवता, मुंडा लोगों के रक्षक....। सिंगबोंगा ने मुण्डाओं के केकड़े के छिलके गढ़े में छुपा दिया था। मुण्डा लोगों की जान बचायी थी, नहीं तो आज मुण्डाओं के 'बंस-बिरिख' (वंश-वृक्ष) का नाश हो चुका होता।'12 इनके अलावा आदिवासी समाज में प्रकृति से सम्बन्धित हजारों लोक कथाओं का विवेचन प्राप्त होता है। इनकी लोक कथाओं में प्रकृति का विवेचन विशेष रूप से मिलता है।

बस्तर के गोंड आदिवासी नृत्य के समय अपने आपको ये विशेष अंदाज में प्रस्तुत करते हैं। बस्तर का जनजीवन, जंगल, जानवर, जनजाति बड़े आकर्षक और लुभावने है। सिर पर गोर के सींग और उन पर वन्य पक्षियों रंग-बिरंगे पंखों के तुर्रे जैसी कंलगी आंखों के सामने झूलते हुए आदिवासी खूब नाचते-गाते हैं। गोंड आदिवासी लोगों के नृत्य की गति वाद्य यंत्रों के साथ-साथ होती है। पुरुष एक-दूसरे के हाथ की जोड़ी बनाकर चारों ओर घेरा

बनाकर नृत्य करते हैं। 'देखते-देखते वहाँ नाच –गाने का खासा मजमा जम गया। मजमें में जब जब खो गए तो खुलकसाए ने गले से ढोल का फंदा निकालकर फगरू के गले में डाल दिया। फगरू के नंगे हाथ ढोल के चमड़े पर थाप देने लगे।'13 बस्तर का जन-जीवन और अन्य प्रकृति जितनी आकर्षक है उतना ही लुभावना आदिवासी नृत्य है। राजेन्द्र अवस्थी ने इनके लोक नृत्य का विवेचन करते हुए लिखा है- 'पर एनदाना देखते-देखते शायद वह अपने को भूल चुका था। अपने पैरों में समाई अतीत की झंकार, पहाड़ी झरने की तरह निकल पड़ी थी। नाचते-कूदते वह अफसर के सामने तक आ गया, तो अफसर को एकदम हँसी आ गई। वह जोर से अपने आप हँस पड़ा और उठकर खड़ा हो गया। उसके शरीर में एक अजीब गरमी आ गई थी।.....वैसे उसके पैरों में थिरकन बराबर देखी जा सकती थी। कुट्टुल पर बैठी रहना उसके लिए जैसे मुश्किल हो रहा था।'14

लोक गीतों के द्वारा आदिवासियों का उल्लास प्रकट होता है। राजेन्द्र अवस्थी के 'जंगल के फूल' उपन्यास के प्रारम्भ में गोंड आदिवासियों का लोकगीत प्रस्तुत हुआ है- 'रे रे रेलो रे रेलो रे, / रेला रे रे रे रेला रे ए ए ए ए ए।'15

गोंड आदिवासियों में 'घोटुल गीत' अपना एक विशिष्ट महत्व रखता है। घोटुल में गोंड पुरुष और महिलाएं मिलकर गाना गाते हैं। अंग्रेज अफसर के स्वागत में गोंड आदिवासियों द्वारा गीत गाया जाता है – 'तैना नामुर ना मुर रे ना रे नाना / तु भी नाका जोड़ा डोंगा, हामी ना कुंदे खड़क सरकार चो / रैयत के दंड पडली दरभा ठाना चो सड़क / हो तौ नाना मुरड्ड।'16

आदिवासी साहित्य घने जंगलों-पर्वतों में रहने वाले मनुष्यों की संस्कृति से जुड़ा साहित्य है। इस साहित्य में वेदना है, विद्रोह है और अपने ढंग की अभिव्यक्ति भी है। आदिम पुत्रों को वन-जंगलों, गिरि कुहरों में कैद करने वाली व्यवस्था के प्रति विद्रोह की भावना भी दिखाई देती है। प्रत्येक आदिम जन जाति का अपना विशेष तथा परम्परागत लोक साहित्य है जो विविधता से परिपूर्ण है। इनके प्रत्येक गीत के पीछे परम्पराएँ, प्रथाएँ, रीतियाँ व मान्यताएँ छिपी हैं। विवाह के समय कई गीत गाये जाते हैं, विवाह होते समय और विदाई के समय अलग। इसके अलावा नृत्य गीत, फसल के गीत, खेत-जोतने के गीत, वीरता गीत, शिकार गीत, जंगल गीत, प्रेम के गीत, देवी-देवताओं के गीत आदि गाये जाते हैं। राकेश कुमार सिंह कृत 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में रूदिया का विवाह होने के बाद उसकी विदाई का समय आता है। इस अवसर पर औरतें विदाई गीत गाती है- 'जिस गाँव में तू जाएगी ओ धिया, सूखे वृक्ष पत्तों से लद जाएँगे। बाँझ औरतों की गोद भर उठेंगी। बूढ़ी गायों के थन से दूध टपकने लगेगा। जहाँ तेरे पाँव पड़ेंगे धिया, उजड़े गाँव आबाद हो जायेंगे। सेमल और कपास के बीज मोतियों में बदल जायेंगे। रूबिया की सीलती आँखे.....। गीले होते कंधों का गीलापन संजीव को भीतर तक भिगोने लगा। मड़वे में लड़कियाँ गीत गाती हैं- 'केकर माथे लाल-सुन्नीर पगड़ी / केकर हाथे लाल गेंदा फूल / ओ मैना रे, / मति जाबे दूर बिदेस.....।'17

आदिवासी लोक गीतों के रचनाकार अधिकतर अशिक्षित होते हुए भी समय और परिस्थितियों के अनुकूल विषय की बड़ी जबरदस्त पकड़ रखते हैं। लोक नृत्यों के विविध रूप आज भी हमारे जन –जीवन में स्पंदन उत्पन्न करके हमें उल्लास और प्रभावित करते हैं। इन नृत्यों केसाथ गाये जाने वाले गीतों में पुरुष और नारी के तेज करारे, कर्ण प्रिय सशक्त स्वर श्रोताओं और दर्शकों पर अपनी अलग ही अमिट छाप छोड़ते हैं। इन गीतों में यहाँ की संस्कृति के स्वर झिलमिलाते हैं। नृत्य, गीत और संगीत इन लोगों का जीवन-मंत्र, जीवन यात्र का बहुमूल्य पाथेय है। यदि नृत्य, गीत और संगीत को इन लोगों से अलग किया जाये तो इन लोगों का जातीय जीवन निर्जीव हो जाएगा। इस प्रकार से आदिवासी ही लोक-संस्कृति, लोकगीत, लोक कथाएँ, लोक संगीत और लोक नृत्यों आदि की धरोहर आज तक सुरक्षित रखे हुए हैं।

निष्कर्षत: आदिवासी उपन्यासों में इनकी संस्कृति का विवेचन प्रकृति के आधार पर हुआ है। इनकी सामाजिक सांस्कृति व्यवस्था वन-पर्वतों पर निर्भर है। वे प्रकृति के साथ-साथ सांस्कृतिक विरासत को बचाने के लिए प्रतिबद्ध नजर आते हैं। इनके देवी-देवता हिन्दू देवता एवं जंगल से सम्बन्धित है। ये प्रकृति में रहकर जन्म, मृत्यु, विवाह, भोज, रहन-सहन, वेश-भूषा आदि को प्रकृतिमय ही रखना चाहते हैं। आज इनकी संस्कृति पर बाजारवाद, भूमण्डलीकरण-वैश्वीकरण का प्रभाव होने से अपसंस्कृति का योग देखा जा सकता है। हिन्दी आदिवासी उपन्यासकारों ने इनकी प्रकृतिमय संस्कृति को ही समाज के सामने रखा है। इसके साथ ही साथ उनकी नष्ट होती संस्कृति के दुष्प्रभावों का भी विवेचन किया है। वे आदिम जनजाति, प्रकृति पुत्र की संस्कृति को अपने उपन्यासों में उभारकर मुख्य समाज की बाजारवादी संस्कृति से तुलना करते भी देखे जा सकते हैं। अत: आज विश्व में केवल आदिवासी जनजातियों की ही संस्कृति में प्राचीनता और इतिहास सुरक्षित है। इस संस्कृति की रक्षा करना प्रत्येक आदिवासी अपना कर्तव्य और धर्म समझता है।

000

संदर्भ- द1 साठोत्तरी हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जन-जीवन, डॉ. श्यामराव राठौड़, पृष्ठ-216, 2 पार, वीरेन्द्र जैन, पृष्ठ-54, 3 जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृष्ठ-30, 4 वही, पृष्ठ-24, 5 अल्मा कबूतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृष्ठ-9, 6 हिन्दी में आदिवासी जीवन केन्द्रित उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. बी. के. कलासवा, पृष्ठ-166-167, 7 धार, संजीव, पृष्ठ-166, 8 पठार पर कोहरा, राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ-202, जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, पृष्ठ-17, 9जो इतिहास में नहीं है, राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ-96, 10 काला पादरी, तेजिन्दर, पृष्ठ-60, 11 पठार पर कोहरा, राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ-95, 12 जंगल के फूल, राजेन्द्र अवस्थी, पृष्ठ-16, 13 वही, पृष्ठ-19, 14 वही, पृष्ठ-13, 15 वही, पृष्ठ-111, 16 पठार पर कोहरा, राकेश कुमार सिंह, पृष्ठ-211।

(शोध आलेख)

प्रतिरोध की संस्कृति और सांस्कृतिक मूल्य 'महाभियोग' उपन्यास के संदर्भ में

शोध लेखक : डॉ. आशीष
सहायक प्राध्यापक (हिन्दी)
सेंट क्लारेट महाविद्यालय, बैंगलोर

डॉ. आशीष
89, 8 क्रॉस रोड
शारदाम्बा नगर, जलहल्ली
बैंगलोर कर्नाटक 560013
मोबाइल- 9958232816
इमेल- ashish@claretcollege.edu.in

संस्कृति परिवर्तनशील है। समय के साथ होने वाले परिवर्तन कितने संस्कृति के रूप में स्वीकार्य होंगे, यह भी कभी-कभी गभीर चर्चा का विषय बन जाता है। पहले संस्कृति के नाम पर कुछ कट्टर नियम एवं प्रथाएँ समाज में परोसी जाती थी तो उसका विरोध बहुत ही कम लोग कर पाते थे अन्यथा यह कह कर ही चुप्पी साध लेते थे कि यह तो हमारी संस्कृति ही है। देवेन्द्र इस्सर 'समकालीन साहित्य चिंतन' में लिखते हैं कि - "संस्कृति शब्द अपने आप में इतना लचीला है कि इसकी अनेक व्याख्याएँ की गई है। उन व्याख्याओं के जाल में न उलझकर यह कहा जा सकता है कि मानव की रक्षा और उत्कर्ष के लिए जो वैचारिक और भावात्मक प्रयत्न होते रहे हैं उनका सामूहिक रूप संस्कृति है। इसके अंतर्गत धर्म, दर्शन, साहित्य, कलाएँ सभी समाहित हो जाती हैं।"

समय के बदलाव के साथ संस्कृति भी बदली। अब कट्टर नियमों एवं प्रथाओं का पुरज़ोर विरोध होता है। अब सवाल किए जाते हैं, प्रतिरोध किया जाता है। अंजली देशपांडे कृत 'महाभियोग' उपन्यास इसका सशक्त उदहारण है। उपन्यास में कई पात्रों द्वारा भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का संरक्षण और प्रतिरोध की संस्कृति का परिचय मिलता है। जिसमें सवाल पूछने की आज़ादी है, साथ ही लोग अपना विरोध भी खुल कर प्रस्तुत करते दिखायी देते हैं। उदहारणस्वरूप देखा जाए तो - "जिस दुनिया में अजीत बसता था, उसमें समानता की चर्चा और उसके प्रदर्शन की संस्कृति थी। सब एक दूसरे को नाम से बुलाते थे। सतही समानता के इस छलावे पर ही समाज परिवर्तन के उनके दावों की इमारत टिकी थी। इस संस्कृति में सबको छूट थी कि खुल कर बात करें, जो चाहे सवाल करें, कार्यों और विचारों की आलोचना करें और चाहे तो अजीत तक की नीयत पर उँगली उठाएँ।"

यह भी कहना ग़लत नही होगा कि भारतीय जनमानस में युवाओं ने संस्कृति को एक नई पहचान दी है, जो प्रतिरोध के रूप में उभर कर आई है। जिसका असर सत्ता द्वारा लिए गए निर्णयों में देखा जा सकता है। उपन्यास का एक उदाहरण जिसमें भोपाल की संस्कृति के अनुसार लड़कियों से साधारण रूप से बात करना अच्छा या ठीक नहीं समझा जाता था। परंतु वही शैली दिल्ली में एक शहरी संस्कृति के रूप में विद्यमान है। सवाल करना, बात करना, स्त्री-पुरुष में भेद को समाप्त करना, यह बदलाव की संस्कृति यहाँ देखी जा सकती है और यह बदलाव समाजहित में ही होता है। दृष्टव्य है - "आप बहुत अच्छे हैं, विनीता ने एक दिन उसे मेथी के गर्मागर्म पराँठे परोसते हुए कहा था, 'हमारे भोपाल में न, बड़े लोग लड़कियों से ऐसे हर चीज़ पर बात नहीं करते। बच्ची समझते हैं। आप ऐसे बात करते हैं जैसे हम बड़े हो गए हों!"

उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने एक ऐसी संस्कृति के विरुद्ध प्रतिरोध किया है, जिसका वर्चस्व कई वर्षों से समाज पर हावी था। यह सत्ता द्वारा वर्चस्व की संस्कृति थी। सरकार का अपने प्रतिद्वंद्वा से गठजोड़ की संस्कृति। कहा तो इसको वैसे अपसंस्कृति ही जाएगा, परंतु इसको समाप्त करने के लिए जिनको चुना गया था, वे ही इसका निर्वाह करने लग गए थे। उसे राजनीति की अपसंस्कृति भी कहा सकता है। राजनीति या सत्ता में रहने वाले लोग कहीं-न-कहीं, किसी-न-किसी मोड़ पर ऐसे गठजोड़ या समझौते कर ही लेते हैं, जिसका दुष्प्रभाव भारतीय समाज एवं जनमानस पर अवश्य पड़ता है। उनकी व्यक्तिगत विस्तार की उच्चाकांक्षा इसमें प्रमुख होती है। इसके विपरीत कोई इसका विरोध करें तो उसको विरोधी या देशद्रोही कह कर उसकी नकारात्मक छवि बना दी जाती है।

यह उपन्यास 1984 में हुए भोपाल गैस कांड के बाद की स्थिति पर लिखा गया है। जिसमें कई युवा फॉब समूह के माध्यम से जुड़ते हैं और न्याय की माँग करते हैं। युवाओं द्वारा सरकार को चेताया जाता है कि वह अमेरिकी कंपनी यूनियन कार्बाइड के विरुद्ध सख्त से सख्त कदम उठाए जाए, परंतु ऐसा होता नहीं दिखता। कोर्ट कार्बाइड को इतनी ही सज़ा देता है कि कंपनी पीड़ित वर्ग को केवल मुआवज़ा ही प्रदान करे। जो कहीं से भी तर्कसंगत नहीं लगता। सरकार पर खुल कर यह आरोप लगते हैं कि उन्होंने कंपनी से समझौता कर लिया है और देशवासियों के

साथ धोखा। इस दौरान तत्कालीन सत्ता द्वारा वकीलों पर दबाव बनाया जाता है कि वे इस केस को हल्का कर दें, कंपनी के विरुद्ध आवाज़ न उठाए, सबूत पेश न होने दे, सरकार एक तरह से समझौता ही करवा रही थी।

इस कांड में मारे गए लोग अधिकतर ग़रीब तबके से थे जो अपनी आवाज़ उठाने में असक्षम थे, जिसका फायदा भी उठाया गया। वकील दारुवाला ने इसका विरोध किया और यह माना कि यदि वे ग़रीब तबके से नहीं होते तो अवश्य ही कार्बाइड कंपनी पर दबाव डाला जाता। युवाओं द्वारा कोर्ट के फैसले का प्रतिरोध किया गया, ताकि पीड़ितों को इसका न्याय मिल सके, परंतु उन्हें भी निराशा ही हाथ लगती है। हैली इस फैसले के बाद अली से कहता है कि - "यह कार्बाइड और भारत सरकार के बीच समझौता है। यह फैसला नहीं है। इसका मतलब यह है कि जो लोग इस कांड के ज़िम्मेदार थे, उनको कोई सज़ा नहीं मिलेगी। अगर कल तुम्हारे बच्चे विकलांग पैदा हुए तो वे कार्बाइड पर मुकदमा नहीं ठोंक सकते। इसका मतलब है कि तुम्हें चना चबेना देकर तुम्हारे सारे हक खरीद लिए गए हैं, ख़त्म कर दिये गए हैं। क्या तुम यही चाहते थे? क्या एक भारतीय की ज़िंदगी इतनी सस्ती है?" इस प्रतिरोध में स्त्रियाँ भी पीछे नहीं थी मुक्ता, विनीता, अविधा आदि भी खुल कर इसका विरोध कर रही थी - "तू कह रही है कि कोई ब्लडी अमेरिकी कंपनी यहाँ आकर हमारे लोगों का कत्ल कर सकती है, उन्हें चवन्नी-अठन्नी पकड़ाकर छूट सकती है? भारतवासी की जान इतनी सस्ती है?" यह स्त्री का बदलता हुआ स्वरूप था। एक स्त्री दूसरी स्त्री से सामाजिक मुद्दे पर खुल कर बहस भी कर रही है और सरकार के प्रति अपना प्रतिरोध भी ज़ाहिर कर रही है। आज स्त्री सक्षम है, अपने बलबूते वह अन्याय के विरुद्ध आवाज़ उठा सकती है और समय पड़ने पर वह ऐसा कदम उठाने से झिझकती भी नहीं है।

उल्लेखित पंक्तियों से स्पष्ट है कि सरकार का रवैया फासिज़्म का है अर्थात् तानाशाही। भोपाल में जो हुआ उसमें सरकार ने भारतीय जनमानस का साथ न देकर अमेरिकी कंपनी का साथ दिया। वहीं, गैस कांड का असर भावी पीढ़ी तक होता दिखाई दिया, परंतु सरकार ने इसकी चिंता न करते हुए अमेरिका का दबाव सहा और यहाँ भारतीयों पर दबाव बनाया। सत्ताधारियों द्वारा तमाम संसाधनों को पंगु बना दिया गया, जिसका असर यह हुआ कि आम जनता निरंतर प्रताड़ित होती रही। सच्चिदानंद सिन्हा अपनी पुस्तक 'लोकतंत्र की चुनौतियाँ' में लिखते है कि - "स्थिति को लाइलाज रूप से बिगाड़ देने के बाद हमें बहुत संतोषजनक नतीजे की उम्मीद नहीं करनी चाहिए।"

उपन्यास में वर्णित तीनों स्त्रियाँ सरकार एवं कोर्ट के फैसले का कड़ा विरोध करती हैं और अपना प्रतिरोध ज़ाहिर करते हुए वे कहती हैं - "हाँ, है। भारतीयों की जान सस्ती है और जितनी जल्दी तुम इस हक़ीक़त को कबूल कर लो, उतनी ही अच्छी वकील बन सकोगी तुम... वैसे भी सर्वोच्च न्यायालय ने फैसला सुना दिया है फिर हम क्यों लड़ रहे हैं? एससी का फैसला तो अंतिम होता है। उसके ऊपर तो सिर्फ भगवान् की अदालत है और भगवान् ने जज लोगों को सद्बुद्धि दे दी।"

भ्रष्ट सरकार ने कानून का सहारा लेकर अपने ही लोगों के साथ छल-कपट किया। यदि कोई व्यक्ति किसी की हत्या कर दे और बदलें में कानून उसे सज़ा न दें और कुछ रुपये लेकर उसे छोड़ दे तो यह परंपरा भावी पीढ़ी के लिए विनाशक होगी। ऐसे में अनेक असामाजिक तत्वों के भी हौसलें बुलंद हो जाएँगे और वे ऐसे कामों को अंजाम देकर कानून से मुक्त होकर घूमते रहेंगे, फिर ग़रीबों का क्या होगा - "अगर ग़रीब लोग कुछ रुपये लेकर संतुष्ट होने लगे तो हमें अपनी कानूनी व्यवस्था में ब्लड मनी की अवधारणा को शामिल कर लेना चाहिए। कत्ल करो, पैसे दो और खुले घूमो। अपराधियों पर मुकदमा चलाकर जेल भेजने की ज़रूरत ही क्या है?" ग़रीब व्यक्ति तो कहीं से भी इसका विरोध नहीं कर पाएगा। जिसके पास धन है, वही अपनी आवाज़ उठा पाने की हिम्मत रख पाएगा। यह हमारे समाज का कटु सत्य है।

अदालत द्वारा जनविरोधी फैसला आने के बाद युवाओं के समूह में आक्रोश बढ़ता है। वे इसका प्रतिरोध भी करते हैं और माँग करते हैं कि सरकार द्वारा उन न्यायाधीशों पर महाभियोग चलाया जाए। भारतीय नागरिकों के साथ जो छल हुआ उसका तमाम जगह विरोध हो रहा था, जो कि स्वाभाविक भी था। किसी को भी यह आभास नहीं था कि फैसले में मुआवज़ा देने को कहा जाएगा - "तीन दिनों से हम रोज़ सुप्रीम कार्ट के सामने प्रदर्शन कर रहे हैं। कल भी होगा। हमें वहाँ बड़ी संख्या में पहुँचना होगा। हममें से किसी को भी यह ग़लतफ़हमी नहीं होनी चाहिए कि यह लड़ाई आसान है। यह मुश्किल काम है। परंतु हम ठान लें तो नामुमकिन नहीं है। हमें हर काम से उसे ऊपर वरीयता देना होगा, इसी को अपनी प्राथमिकता बनाना होगा।"

सुप्रीम कोर्ट द्वारा भोपाल गैस कांड के दोषियों को यह सज़ा सुनाई जाती है, कि वे पीड़ितों को मुआवजा प्रदान करें। इस पूरी प्रक्रिया में सरकार और सुप्रीम कोर्ट की मिली-भगत साफ तौर पर नज़र आती है। सरकार निष्क्रिय रही और सुप्रीम कोर्ट बेबस जिसका परिणाम यह हुआ कि दोषी बहुत सस्ते में छूट गए। जब यह क्रिया हुई तो उसके विरोध में प्रतिक्रिया भी हुई। अविधा एवं उसके कुछ युवा साथियों ने इसका विरोध करने हेतु कुछ रणनीति बनायी, जिसके तहत उन्होंने सुप्रीम कोर्ट के परिसर में झाड़ू लगाया - "भोपाल समझौता मुर्दाबाद! सुप्रीम कोर्ट मुर्दाबाद! जज मुर्दाबाद, पहले उन्होंने बरामदे में झाड़ू लगाया फिर एक-एक कर सीढ़ियों पर झाड़ू लगाते वे नीचे उतर गए जहाँ दर्जनभर विरोधी खड़े नारा लगा रहे थे। अब सब अर्ध चंद्राकार खड़े होकर झाड़ू उठाकर नारे लगे : सुप्रीम कोर्ट ने क्या किया? हत्यारों को छोड़ दिया। कार्बाइड को छोड़ दिया। अदालत में गंदगी, नहीं सहेंगे, नहीं सहेंगे।" झाड़ू लगाना इस बात का प्रतीक था कि न्यायिक प्रणाली में जो गंदगी हो गई है, उसको साफ किया जाए। यह खुला प्रतिरोध इसलिए महत्त्वपूर्ण हो गया, क्योंकि झाड़ू लगाने वालों में अधिकतर युवा वर्ग से थे और वे अपने अधिकारों से सजग भी

थे। यह जो प्रतिरोध हुआ उसे होश में लाने के लिए था।

फॉब समूह के कुछ युवा न्यायाधीशों पर महाभियोग लगाने की माँग करते हैं, तो कुछ उनमें से इस बात का भी विरोध करते हैं कि इसकी क्या आवश्यकता है। यह तो अनैतिक होगा कि अदालत के विरुद्ध मोर्चा खोला जाए। परंतु वहाँ मौजूद अन्य सदस्य गण उनको समझाते हैं कि यह अदालत के विरुद्ध प्रतिरोध नहीं है अपितु यह उन न्यायाधीशों के विरुद्ध प्रतिरोध है, जिन्होंने भारतीय न्यायपालिका एवं शासन व्यवस्था को कलंकित किया है - "हम याचना कर रहे हैं कोर्ट से, उसके किसी विशेष न्यायधीश से नहीं। कोर्ट पर थोड़े ही महाभियोग लगना है? लग भी नहीं सकता।"

वास्तव में देखा जाए तो ऐसा बहुत ही कम देखने को मिला है कि किसी न्यायधीश पर महाभियोग चला हो। परंतु भोपाल गैस कांड का जो मुकदमा था, वह भारत की साख बन कर सामने आया। विश्व को यह संदेश मिला कि भारतीय कितने भ्रष्ट हैं। उन्होंने अपने देश के ही मारे गए लोगों का ही सौदा कर डाला। यह बात खुल कर सामने आने लगी थी कि न्यायाधीशों को मोह-माया का लालच देकर, मुकदमे को अमेरिका के पक्ष में मोड़ा गया था - "हाँ, यह आरोप सही है, अफवाह नहीं है यह। पाँच न्यायधीश थे न उस पीठ पर जिसने समझौता कराया? कुछ को नकद मिला, कुछ को कुछ और मिला मुख्य न्यायाधीश को यह वचन दिया गया है कि अबकी बार जब भारत को द हेग की अंतर्राष्ट्रीय अदालत में जज भेजना होगा तो उन्हीं को मनोनीत किया जाएगा। अगले ही साल होगा यह। पैसा भी ख़ूब मिलेगा, साख तो बढ़ेगी ही।"

यहाँ सवाल उठता है कि न्यायाधीशों पर महाभियोग लगाने से क्या होगा? देश में इसका क्या असर पड़ेगा? जनता को इससे क्या मिलने वाला है? उन्होंने जो भोगा वो तो यथावत् बना हुआ ही है। 'महाभियोग' उपन्यास में इस ओर भी दृष्टिपात किया गया है। जो न्यायधीश जनता में न्याय देने का काम करते थे, उन्होंने ही देश की जनता को मूर्ख बनाया। अपने निजी स्वार्थ और दबाव से उन्होंने समझौता किया। पूरी की पूरी व्यवस्था को ही स्वार्थ नीति में तब्दील कर दिया। लोगों को अपनी न्याय-व्यवस्था पर भरोसा है और यह भरोसा किसी भी कीमत पर टूटना नहीं चाहिए। इसलिए लोगों तक यह संदेश पहुँचना अनिवार्य है कि जो भी व्यक्ति लोकतंत्र और संविधान को ठेस पहुँचाएगा, उसे माफ नहीं किया जाएगा। चाहे वह भारत का कोई भी व्यक्ति हो। प्रसंग उल्लेखनीय है - "प्रोफ़ेसर थापड़ ने पूछा, महाभियोग इतना ज़रूरी क्यों है मुक्ता? इंसाफ़ के लिए उसने कहा। महाभियोग से तुम्हें इंसाफ़ कैसे मिलेगा? इससे न्यायाधीशों को संदेश मिलेगा कि ऐसी हरकतें बर्दाश्त नहीं की जाएँगी।" कई बार शासन व्यवस्था में बैठे लोग इतने रूढ़ और स्वार्थी हो जाते हैं कि आम जनता को उनके विरुद्ध खुल कर सामने आना ही पड़ता है। आम जनता जब सड़क पर आती है तो ऊँची से ऊँची सत्ता को भी ध्वस्त कर डालती है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि सत्ता की रूढ़िवादी सोच और निर्णय का खुल कर विरोध किया जाए, ताकि देश और नागरिक की अस्मिता बरकरार रहे।

लेखिका ने उपन्यास की मुख्य पात्र अविधा के माध्यम से भी समाज में प्रतिरोध की संस्कृति को दर्शाने का प्रयास किया है। अविधा भी मुक्ता की ही तरह प्रखर है। वह समाज में उन सब नियमों एवं कार्यों का विरोध करती है, जो समाज में असमानता को बढ़ावा देती हैं। उदाहरणस्वरूप देखा जाए तो अविधा के पिता अविधा को एक उचित स्थान पर नौकरी दिलवाने की बात करते हैं, किन्तु अविधा इसका विरोध कर मना कर देती है। यह संभवत: कम ही देखा जाता है कि ऐसी किसी प्रकार की सहायता को अस्वीकार किया जाए। जो अस्वीकार करते हैं, वे प्रतिरोध करते हैं ऐसी व्यवस्था एवं परंपरा का जो भाई-भतीजावाद को प्रोत्साहन देती है। वे प्रतिरोध करते हैं उस सदस्य का जो सहायता देने का प्रस्ताव कर उनकी मेहनत और काबिलियत को कम आँकते हैं। कथा प्रसंग उल्लेखनीय है- "जब अविधा ने पत्रकार बनने का फैसला किया तो उसके पिता ने एक राष्ट्रीय दैनिक के संपादक से बात करके उसे वहाँ नौकरी दिलाने की पेशकश की थी। मगर अविधा ने मना कर दिया। वह अपने पिता के प्रभाव और जान-पहचान का फायदा नहीं उठाना चाहती थी। उन्हें इस बात का बड़ा गर्व था कि उनकी बेटी ऐसी स्वाभिमानी है।"

समाज में बढ़ते निरंतर वर्चस्व और उससे होने वाली क्षति के कारण समय-समय पर जन समुदाय में से ही प्रतिरोध की आवाज़ें निरंतर उठती रही हैं। चाहे वह दलित हो स्त्री या कोई भी साधारण व्यक्ति जो किसी पद पर कायम है। वे अपने अधिकार और समाजहित के लिए सत्ता और अनैतिक शक्तियों का निरंतर प्रतिरोध करते दिखाई देते हैं। स्त्रियाँ जो समाज में, धर्म में, राजनीति में और कार्यालय में जब किसी प्रकार से उसे अमानवीय घटनाओं या परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है तो वह उसका प्रतिरोध करती है। साथ ही समाज के प्रति अपनी निष्ठा या उत्तरदायित्व को निभाने का जब-जब अवसर मिलता है तो वह निरंतर आगे बढ़ती है और सत्ता की अनैतिकता को चुनौती देते हुए उसका प्रतिरोध करती है। वह संस्कृति के नाम पर पनपी अनैतिकता, अधर्मिता, आडंबरता, कर्मकांड और मूल्यहीनता का भी सशक्त रूप से विरोध करती हुई दिखायी देती है।

000

संदर्भ- देवेन्द्र इस्सर, मूल्य संक्राति और युग चेतना, समकालीन साहित्य चिंतन (रामदरश मिश्र, महीप सिंह) पृ. 37, अंजली देशपांडे, महाभियोग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2016 पृ. 36, वही, पृ. 38, वही, पृ. 57, अंजली देशपांडे, महाभियोग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2016 पृ. 60, सच्चिदानंद सिन्हा, लोकतंत्र की चुनौतियाँ, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005, पृ. 63, अंजली देशपांडे, महाभियोग, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2016, पृ. 60, वही, पृ. 63, वही, पृ. 66, वही, पृ. 83, वही, पृ. 209 वही, पृ. 210, वही, पृ. 277, वही, पृ. 50

(शोध आलेख)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के माध्यम से भारतीय भाषा, कला एवं संस्कृति संवर्धन

शोध लेखक : डॉ. बिंदुबहन अनंतराय मेहता

डॉ. बिंदुबहन अनंतराय मेहता
श्री आम्बरडी प्राथमिक शाला
तहसील- भाणवड,
ज़िला- देवभूमि द्वारका
360510 गुजरात

प्रास्ताविक- आज के आधुनिक एवं टेक्नोलॉजी के युग में व्यक्ति आधुनिक सुविधाओं से सज्जित तो है लेकिन अंदरूनी सुंदरता से विमुख होता जा रहा है। निराशा की खाई में डूबता जा रहा है। इन अंधेरों में से बाहर निकलने का एकमात्र उपाय कला एवं संस्कृति है। प्राचीन शास्त्रों में भी कहा गया है कि व्यक्ति को कम से कम एक कला से सुसज्जित होना ही चाहिए। कला के माध्यम से हम अपने फुर्सत के समय को अच्छी तरीके से व्यतीत कर सकते हैं, साथ ही कला भी पुस्तक की तरह हमारा श्रेष्ठ साथी बन सकती है और यह तभी मुमकिन है जब हम बहुभाषाओं से परिचित हो। आज का विद्यार्थी टेक्नोलॉजी के साथ तो अपने आप को सरलता से ढाल सकता है, लेकिन हमारी कला, संस्कृति से सरलता में नहीं ढल सकता। जिसके कारण अपनी ही कला - संस्कृति से विमुख होता जा रहा है। बालक किसी भी कला से जुड़ा हुआ होगा तो अपने आप को मुश्किल दौर में भी सँभाल पाएगा और यह कार्य हमारी नई शिक्षा नीति 2020 कर रही है। हमारी नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति के प्रकरण 4 में शिक्षा के माध्यम से भारतीय भाषा, कला एवं संस्कृति के संवर्धन को महत्त्व दिया गया है। जिसके माध्यम से बच्चे बहुभाषिकता के साथ शिक्षा प्राप्त कर सके एवं हमारी कला एवं संस्कृति से अच्छी तरह से जुड़ सकें।

भारतीय कला एवं संस्कृति का संवर्धन- भारत संस्कृति का समृद्ध भंडार है - जो हज़ारों वर्षों से विकसित हुआ है और कला, साहित्यिक कृतियाँ, रीत रिवाज, परंपराएँ, भाषा की अभिव्यक्तियाँ, कलाकृतियाँ, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक धरोहर के स्थानों में अभिव्यक्त हुआ है। भारत में भ्रमण, भारतीय आतिथ्य सत्कार का अनुभव लेना, भारत की सुंदर हस्तकला और हाथ बनावट के वस्त्र खरीदना, भारत के प्राचीन साहित्य का गठन करना, योग एवं ध्यान का अभ्यास करना, भारतीय दर्शनशास्त्र से प्रेरित होना, भारत के अनन्य त्योहारों में हिस्सा लेना, भारत के वैविध्यपूर्णसंगीत तथा कला की प्रशंसा करना और भारतीय चलचित्र को देखना आदि ऐसे कई आयाम है जिसके द्वारा विश्व भर के करोड़ों लोग प्रतिदिन इस सांस्कृतिक धरोहर के साथ जुड़ते हैं। उसका आनंद लेते हैं एवं लाभ प्राप्त करते हैं। यह सांस्कृतिक और प्राकृतिक संपदा है कि, जो भारत के पर्यटन सूत्र अनुसार भारत को सही में 'अतुल्य भारत' बनाता है। भारत की इसी सांस्कृतिक संपत्ति का संरक्षण एवं संवर्धन और प्रसार देश की अग्रिम प्राथमिकता होनी चाहिए, क्योंकि वह देश की पहचान के साथ-साथ उसकी अर्थव्यवस्था के लिए भी बहुत महत्त्वपूर्ण है।

भारतीय कला एवं संस्कृति का संवर्धन सिर्फ राष्ट्र के लिए ही नहीं परंतु व्यक्ति के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। संस्कृति के साथ वह अपनी पहचान एवं तादात्म्य विकसित एवं अन्य संस्कृतियों की कद्र करने के लिए सांस्कृतिक जागृति और अभिव्यक्ति जैसी प्रमुख क्षमताएँ यह बच्चों में विकसित करना ज़रूरी है। बच्चों में उनके सांस्कृतिक इतिहास, कला, भाषा और परंपरा की मजबूत भावना तथा ज्ञान के विकास द्वारा ही एक सकारात्मक सांस्कृतिक पहचान और आत्मसम्मान निर्मित कर सकते हैं। इसलिए व्यक्तिगत और सामाजिक कल्याण के लिए सांस्कृतिक जागृति एवं अभिव्यक्ति का प्रदान महत्त्वपूर्ण है।

संस्कृति के प्रसार के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण साधन कला है। कला सांस्कृतिक पहचान और जागृति को समृद्ध बनाने एवं समुदायों को उन्नत करने के अलावा व्यक्तियों में बोधात्मक और सृजनात्मक क्षमता विकसित करने के लिए तथा व्यक्तिगत आनंद को बढ़ावा देने के लिए जानी जाती है। व्यक्तिगत प्रसन्नता, सुखाकारी, बोधात्मक विकास और सांस्कृतिक पहचान यह महत्त्वपूर्ण कारण है कि जिसके लिए तमाम प्रकार की भारतीय कलाएँ प्रारंभिक बाल्यावस्था की सँभाल तथा शिक्षा की शुरुआत से ही तमाम स्तर के छात्रों को प्रदान करनी चाहिए।

शिक्षा में कला एवं संस्कृति का स्थान- छात्र के लिए अपनी कला एवं संस्कृति से जुड़ना एवं उसे आत्मसात करना एक गर्व की बात है। लेकिन आजकल बच्चों में कला एवं संस्कृति से दूरियाँ दिखाई देती हैं। इन दूरियों को कम करने का कार्य सिर्फ शिक्षा ही कर सकती है। इसके लिए नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में बहुत ही सुंदर सुझाव दिए गए हैं कि, हम किस तरह से बच्चों को

अपनी संस्कृति एवं कला से परिचय करवाइए और अपनी संस्कृति एवं कला को आत्मसात कर सके।

बाल्यावस्था से ही बच्चों को अपनी कक्षा के अनुसार अपनी संस्कृति की धरोहर समान मूल्य, रीत-रिवाज, स्थानीय घटनाएँ, परंपराओं से परिचित करवाने के लिए कई सारे कार्यक्रमों का आयोजन कर सकते हैं जैसे कि, समय-समय पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए, बच्चों को अपने क्षेत्र या विस्तार के प्रचलित लोक नृत्य, लोक गान, लोक कथाएँ, लोक वाद्य से परिचित कराने के लिए स्थानीय प्रसिद्ध कलाकारों का परिचय दिलवाया जाए और उनके कार्यक्रम का आयोजन पाठशाला में ही किया जाए। जिसके कारण बच्चे अपने स्थानीय कला एवं संस्कृति से परिचित हो सकें। संग्रहालय, आर्ट गैलरी, हेरिटेज साइट, म्यूजियम आदि की मुलाकात, प्रवास पर्यटन एवं चलचित्रों के माध्यम से भी बच्चों को कला एवं संस्कृति के साथ जुड़ सकते हैं।

स्थानिक कलाकार जैसे कि, मूर्तिकार, चित्रकार-कसीदेकार, सुनार की मुलाकात का आयोजन किया जाए। उनकी कला कृतियों के माध्यम से बच्चे अपनी कला को पहचान सके और उसके प्रति गर्व की भावना गठित हो, साथ ही पाठशाला में भी बच्चों के लिए ऐसी कार्यशाला का आयोजन किया चाहिए, जिसके माध्यम से बच्चे ख़ुद की कलाकारी को पहचान सके और अपनी पसंदीदा कला को पहचान कर उसमें आगे बढ़ सके।

हर एक बच्चे में कोई ना कोई विशिष्टता पड़ी है हमें उस विशेषता को बाहर लाना है। जिसके लिए शिक्षा ही एक असरकारक माध्यम है, जो बच्चों के अंदर पढ़ी हुई विशिष्ट क्षमता को बाहर ला सके। हम शिक्षा के ज़रिए बच्चों को अपने अंदर रही क्षमता से परिचित करवा सकते हैं। इसके साथ साथ इन कलाओं को विकसित करने के लिए बच्चों को प्रोत्साहन के तौर पर शिष्यवृत्ति देने का आयोजन भी किया जा सकता है। जिसके कारण आर्थिक रूप से एवं पिछड़े वर्ग के बच्चे भी अपनी संस्कृति एवं कला के धरोहर बन सके।

भाषा का कला संस्कृति एवं शिक्षा से अटूट संबंध नि:संदेह कला एवं संस्कृति के साथ भाषा अटूट रूप से जुड़ी हुई है। विविध भाषाएँ दुनिया को अलग-अलग रूप से देखती हैं। इसलिए मूलभूत रीत से भाषा बोलने वाला व्यक्ति अपने अनुभवों को किस तरह समझता है अथवा उसे कैसे ग्रहण करता है, यह उनकी भाषा की संरचना से निश्चित होता है। ख़ास करके कोई एक संस्कृति के लोगों की अन्य संस्कृति के लोगों के साथ बातचीत करना, जिसमें कुटुम्ब के सभ्य, अधिकृत व्यक्ति, समवयस्क, अपरिचित आदि भाषा से प्रभावित होते हैं तथा बातचीत की पद्धति को भी प्रभावित करते हैं। अनुभवों की समझ और उसी भाषा के व्यक्तियों के साथ की बातचीत में 'अपनापन' यह सब संस्कृति का प्रतिबिंब और दस्तावेज़ है। इसलिए संस्कृति हमारी भाषाओं में जड़ित है। साहित्य, नाटक, संगीत, फिल्म आदि स्वरूप में कला की संपूर्ण प्रशंसा भाषा के बिना संभव नहीं। संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन एवं प्रसार के लिए हमें संस्कृती की भाषाओं का संरक्षण एवं संवर्धन करना आवश्यक है।

दुर्भाग्य से भारतीय भाषाओं के प्रति योग्य ध्यान और देखभाल नहीं रखी गई है। जिसके कारण पिछले 50 वर्ष में देश की 220 भाषाएँ लुप्त हो चुकी है। यूनेस्को ने 197 भारतीय भाषाओं लुप्त जाहिर की हैं। अलग-अलग भाषाएँ लुप्त होने के कगार पर है। ख़ास करके वे भाषाएँ जीन की लिपि नहीं है। जब ये भाषा बोलने वाला कोई समुदाय अथवा जनजाति के वरिष्ठ सभ्य की मृत्यु होती है तो उनके साथ उनकी भाषा भी समाप्त होती है और कई बार ऐसी समृद्ध भाषा, संस्कृतियों की अभिव्यक्ति सुरक्षित अथवा दस्तावेज़ीकरण करने के लिए कोई प्रक्रिया या उपाय नहीं किया जाता।

इसके अलावा वे भारतीय भाषाएँ जो आधिकारिक रूप से लुप्तप्राय भाषाओं की सूची में नहीं है। जैसे की आठवीं अनुसूची की 22 भाषाएँ भी विविध प्रकार की समस्याओं का सामना कर रही है। भारतीय भाषाओं का अध्ययन और अध्यापन पाठशाला एवं उच्च शिक्षा के हर एक स्तर पर संकलित करने की ज़रूरत है। भाषाएँ प्रासंगिक एवं जीवंत रहे उसके लिए इन भाषाओं में उच्च गुणवत्तापूर्ण अध्ययन और मुद्रित सामग्री का सतत प्रवाह होना चाहिए। जिसमें पाठ्यपुस्तक, अभ्यासकार्य पुस्तिका, वीडियो, नाटक, कविताएँ, नवलकथा, सामायिक आदि शामिल हो। भाषाओं का शब्दकोश और शब्दभंडार भी विशेष एवं सतत अद्यतन बनता रहना चाहिए और उसका प्रचार भी करना चाहिए, कि जिस में वर्तमान समस्याएँ, मुद्दे एवं ख्यालों पर इन भाषाओं में चर्चा की जाए। विश्व के देशों के द्वारा अंग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन, हिब्रू, कोरियन, जापानी आदि भाषाओं में इस प्रकार की अद्यतन मुद्रित सामग्री तैयार की जाती है और दुनिया की अन्य भाषाओं की महत्त्वपूर्ण सामग्रियों का अनुवाद भी किया जाता है तथा शब्द भंडार भी सतत अद्यतन करने में आता है परंतु हमारी भाषाओं को जीवंत एवं प्रासंगिक बनाए रखने में मदद रूप हो सके ऐसी अध्ययन सामग्री, मुद्रित सामग्री और शब्दकोश बनाने की बाबत में भारत की गति बहुत धीमी है। इसके अलावा भाषा सिखाने वाले कुशल शिक्षकों का भी अभाव है। भाषा शिक्षा को भी इसी तरह सुधारना चाहिए जिसके कारण ज़्यादा अनुभव आधारित बन सके और केवल साहित्य, शब्दकोश एवं भाषा के व्याकरण पर ही नहीं अपितु भाषा में बातचीत और प्रत्यायन करने की क्षमता पर भी ध्यान केंद्रित हो सके। बातचीत और अध्ययन-अध्यापन के लिए भाषा का प्रयोग ज़्यादा व्यापक रूप से होना चाहिए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के द्वारा शिक्षा में भाषा का स्थान कला-संस्कृति के संवर्धन एवं विस्तार के लिए तो भाषा का महत्त्वपूर्ण स्थान है ही लेकिन व्यक्तिगत उन्नति के रूप से भी बहुभाषिकता बहुत ही उच्च स्थान पर है। कई संशोधनों में भी साबित हो चुका है कि जो बालक 3 से अधिक भाषा जानता हो उसकी वैचारिक शक्ति, तर्कशक्ति सबसे ज़्यादा होती है या तो उसमें प्रगति कर सकता है। जितनी भाषाओं का ज़्यादा ज्ञान होगा, बालक उतना

ही ज़्यादा प्रतिभावान होगा। इसी कारण हमारी नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में पाठशाला के बच्चों में भाषाएँ, कला और संस्कृति को प्रोत्साहन देने के लिए प्रकरण 4 में अनेक प्रस्ताव की चर्चा की गई है। इसमें पाठशाला के हर स्तर पर संगीत, कला और हस्तकला पर ज़्यादा भार दिया गया है। बहुभाषिकता को प्रोत्साहन देने के लिए त्रिभाषा के सूत्र को अमल में रखने और जहाँ संभव हो वहाँ मातृभाषा / स्थानिक भाषा का शिक्षा एवं अनुभव आधारित भाषा शिक्षण; उत्कृष्ट स्थानीय कलाकार, लेखक, कारीगर और अन्य निष्णात, स्थानीय, तजज्ञता के विविध विषयों मंख विशिष्ट प्रशिक्षक पाठशाला में जुड़े जाए। आदिवासी और अन्य स्थानों के ज्ञान सहित परंपरागत भारतीय ज्ञान का सचोट समावेश समग्र अभ्यासक्रम में करना, मानव विद्या शाखा, विज्ञान, कला, हस्तकला और रमत गमत जहाँ भी संबंधित हो वहाँ ज़्यादा सुगमता के साथ ख़ास करके माध्यमिक पाठशालाओं में और उच्च शिक्षा में समावेश किया जाए, ताकि विद्यार्थी तमाम अभ्यासक्रम में रचनात्मक, कलात्मक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक मार्ग को विकसित करने के लिए आदर्श संतुलन को बनाया जा सके।

प्राथमिक शिक्षा में बच्चों की शिक्षा में मातृभाषा या तो स्थानीय भाषा को महत्त्व दिया जाए, जिसके कारण बच्चे आसानी से अपना अभ्यास कर सकें। इसके लिए सबसे पहले विविध प्रकार के अभ्यासक्रम विकसित करने और सीखने के लिए शिक्षकों एवं अध्यापकों की उत्कृष्ट टीम रखी जाएगी, जो भारतीय भाषाएँ, तुलनात्मक साहित्य, शब्दात्मक लेखन, कला, संगीत, तत्वज्ञान आदि कार्यक्रम विभागों और कार्यक्रम समग्र देश में शुरू किए जाएँगे।

उच्च गुणवत्ता युक्त भाषा शिक्षकों का एक बड़ा संवर्ग तैयार किया जाएगा। इसके साथ-साथ कला, संगीत, तत्वज्ञान और लेखन के शिक्षकों को भी तैयार कि जाएँगे।

इन तमाम क्षेत्रों में गुणवत्ता युक्त संशोधन के लिए एन. आर. एफ. भंडोल पर्याप्त किया जाएगा।

उत्कृष्ट स्थानिक संगीत, कला, भाषा और हस्तकला को प्रोत्साहन देने के लिए मुलाकाती अध्यापक रखे जाएँगे वह संस्कृति और स्थानिक कला से वाकिफ होंगे, जिसके कारण रचनात्मकता और प्रदेश, देश की समृद्धि से छात्र वाकिफ़ हो सके।

उच्च शैक्षणिक संस्थाओं में उच्च शिक्षा में भी भाषा शिक्षण का माध्यम मातृभाषा या स्थानिक भाषा अथवा द्विभाषी कार्यक्रमों की शुरुआत की जाएगी। जिसके कारण प्रवेश और कुल नामांकन गुणोत्तर इस तरह दोनों में बढ़ोतरी हो सके और तमाम भारतीय भाषाओं की ताकत उपयोग और जीवंतता को प्रोत्साहन मिले। 4 वर्ष का बी.एड. पदवी कार्यक्रम 2 भाषाओं में शुरू किए जाएँगे।

पाठशालाओं में विज्ञान और गणित 2 भाषाओं में सिखाए जाएँगे।

उच्च शिक्षा में अनुवाद को महत्त्व दिया जाएगा जिसके लिए भारतीय अनुवाद और अर्थ घटन संस्थान की स्थापना की जाएगी। आई.आई.टी.ई द्वारा अनुवाद और अर्थघटन प्रयासों में टेक्नोलॉजी का उपयोग किया जाएगा।

संस्कृत भाषा का भी वृहद एवं महत्त्वपूर्ण योगदान और विभिन्न विषयों और साहित्य के विविध प्रकारों पर उसका सांस्कृतिक महत्त्व और वैज्ञानिक प्रभाव के कारण उपयोग किया जाएगा। संस्कृत भाषा एक निश्चित प्रवाह वाली पाठशाला और विद्यालयों तक सीमित ना रखते हुए उसे पाठ शालाओं में त्रिभाषा सूत्र अंतर्गत एक विकल्प स्वरूप तथा उच्च शिक्षा में भी उसे मुख्य प्रवाह में लाया जाएगा।

दूसरी नीति के अनुरूप संस्कृत विश्वविद्यालयों को भी उच्च शिक्षा की बड़ी बहुविद्याशाखा की संस्थाएँ बनाई जाएँगी। संस्कृत में शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए व्यवस्था एकीकरण 4 वर्ष का संकलित बहुविद्याशाखाकीय बी.एड. दो पदवी शिक्षण संस्कृत द्वारा किया जाएगा।

इसी तरह भारत में तमाम शास्त्रीय भाषा और साहित्य का अभ्यास करती ख़ुद की संस्थाएँ और विश्वविद्यालयों का वितरण किया जाएगा। बहु विद्या शाखाकीय कार्यक्रम की शुरुआत की जाएगी। इन विश्वविद्यालय परिसर में पाली, फारसी और प्राकृत भाषाओं के लिए एक राष्ट्रीय संस्था स्थापित की जाएगी। भारतीय कला, कला के इतिहास और भारतीय विद्या का अभ्यास करते संस्था और विश्वविद्यालयों के लिए भी ऐसी पहल करने में आएगी।

शास्त्रीय आदिवासी और लुप्त होने वाली भाषाओं सहित भारत की तमाम भाषाओं और उसके संलग्न कला और संस्कृति का दस्तावेजी करण वेब आधारित प्लेटफार्म और पोर्टल, विकीपीडिया के जरिए किया जाएगा। जिससे भारत की तमाम भारतीय भाषाएँ और उसके संलग्न समृद्ध स्थानिक कला और संस्कृति का जतन किया जाएगा।

उपसंहार

इस तरह नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बच्चों के लिए शिक्षा को सर्वांगी गुणवत्तायुक्त और सुदृढ़ बनाने के लिए एक सही कदम उठाया जाएगा। जिसके कारण शिक्षा का सही अर्थ, सही हेतु सिद्ध हो सके। बच्चे गुणवत्ता युक्त शिक्षा प्राप्त कर सकें, ना ही केवल पुस्तक आधारित ज्ञान। लेकिन अर्थसभर, कला और संस्कृति सहित का ज्ञान बच्चे प्राप्त कर सके। जिसके कारण बच्चे अपने जीवन में सही मायने में प्रगति कर सके और किसी भी परिस्थिति में अपने आप को मज़बूत बनाकर अपना कदम इस आधुनिक युग में स्थापित कर सके।

000

संदर्भ सूची: 1. उचाट, डी.ए. (2005) संशोधन दर्शन, राजकोट पारस प्रकाशन।, 2. गुजरात शैक्षणिक संशोधन तालीम परिषद, (2017) गांधीनगर, जी.सी.ई.आर.टी., 3. दवे, जे.और अन्य (2003), अहमदाबाद, एकता प्रकाशन, 4. गुजरात शैक्षणिक संशोधन और तालीम परिषद, (2018), संशोधन विशेषांक गांधीनगर, जी.सी.ई.आर.टी.।, 5. गुजरात शैक्षणिक संशोधन और तालिम परिषद, (2020) राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 विशेषांक, गांधी नगर, जी.सी.ई.आर.टी.।

(शोध आलेख)

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री की साहित्य साधना

शोध लेखक : डॉ. सुनीता कुमारी

डॉ. सुनीता कुमारी
हिन्दी विभाग
रांची महिला कालेज,
सर्कुलर रोड, रांची
झारखंड 834001
मोबाइल- 9470368260

पांडित्य और प्रतिभा का संयोग विरल होता है। यदि प्रतिभा पांडित्य के बोझ से कुंठित न हो, बल्कि उसके ताप में तपकर निखर उठे, तो मानना चाहिए कि सोने को सुगंध मिल गई। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री ऐसे ही विलक्षण वैदुष्य और पारदर्शी प्रतिभा के धनी साहित्यकार हैं। उन्होंने युग जीवन के संपूर्ण विस्तार को गीतों के सुकुमार पदों से मापने का दुस्साहस किया और इसमें बहुत दूर तक सफलता पायी है।

किसी सरस्वती पुत्र की सुदीर्घ सारस्वत साधना का आकलन करना आसान कार्य नहीं है, विशेषत: उस सरस्वती पुत्र की साधना का आकलन करना तो और भी कठिन कार्य है, जिसका व्यक्तित्व और कृतित्व बहुआयामी हो, जिसके चिंतन का आकाश विस्तृत एवं व्यापक हो और जो एक साथ कई भाषाओं और विधाओं में निष्णात हो, ऐसे वाणी साधक का बहिरंग जितना व्यापक और विस्तृत होता है, अंतरंग उससे कहीं अधिक गहरा। आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री ऐसे ही वाणी के साधक और सरस्वती के वरद् पुत्र हैं।

कविता करना कठिन कार्य है और कविता में स्वाभाविकता की अभिव्यक्ति तो और भी कठिन है। महर्षि वेद व्यास प्रणीत अग्नि पुराण के काव्य शास्त्रीय भाग में लिखा हुआ है कि-

नरत्वं दुर्लभं लोके, विद्या तत्र सुदुर्भा:।
कवित्वं तत्र दुर्लभं, शक्ति:तत्र सुदुर्भा:।

अर्थात इस संसार में मनुष्य योनि में जन्म लेना कठिन है विद्या की प्राप्ति उससे कठिन है, कविता करना उससे कठिनतर और कविता में स्वाभाविक अभिव्यक्ति की उपस्थिति एवं शक्ति तो कठिनतम है; यही कारण है कि हिन्दी के मूर्धन्य समालोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कविता को मनुष्यता की उच्च भूमि स्वीकार किया है। कविता को परिभाषित करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि- "जिस प्रकार आत्मा की मुक्त अवस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्त अवस्था रस दशा कहलाती है, हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को भाव योग कहते हैं और कर्मयोग एवं ज्ञान योग के समक्ष मानते हैं।"

आचार्य शुक्ल की यह भी स्थापना है कि कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ संबंधों के संकुचित मंडल से ऊपर उठाकर लोक सामान्य की भाव भूमि पर ले जाती है; जहाँ जगत् की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है। इस भूमि पर पहुँचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता, वह अपनी सत्ता को लोकसत्ता में लीन किए रहता है। उसकी अनुभूति सबकी अनुभूति होती है या हो सकती है। कविवर आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री का रचना संसार इसका ज्वलंत उदाहरण है।

आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री का जन्म 18 जनवरी 1916 ई.को गया जिले के सुरहरि के तट पर अवस्थित मैगरा गाँव में एक सामान्यवित्त ब्राह्मण परिवार में हुआ था। शास्त्री जी के पिता पंडित रामानुग्रह शर्मा संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। शास्त्री जी ने प्रारंभिक शिक्षा गाँव के पाठशाला में अपने पिता के श्री चरणों में बैठकर पाई, फिर 1931 में वे हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी भेजे गए। वहाँ से उन्होंने शास्त्री, शास्त्राचार्य और वेदांताचार्य की परीक्षाएँ प्रथम श्रेणी में पास कीं। इस बीच बिहार उड़ीसा की साहित्याचार्य और ढाका (संप्रति बंगला देश) की साहित्य रत्न परीक्षाओं में भी उनका स्थान सर्वोपरि रहा।

शिक्षा समाप्त करते न करते आजीविका की समस्या सामने आई, इसीलिए शास्त्री जी ने कुछ काल तक लाहौर के एक महा विद्यालय में अध्यापन कार्य किया, फिर 1938 में रायगढ़ मध्य प्रदेश में राज्य कवि होकर चले आए। 1940 से 44 तक उन्होंने मुज़फ़्फ़रपुर में ट्यूशन आदि कर जीवन निर्वाह किया। तदुपरांत उनकी नियुक्ति संस्कृत महाविद्यालय में हो गई। 3 जनवरी 1953 ई. को शास्त्री जी राम दयालु सिंह कॉलेज मुजफ़्फ़रपुर में संस्कृत के प्राध्यापक नियुक्त हुए, जहाँ से उन्होंने 1978 ई. के प्रारंभ में अवकाश ग्रहण किया। तब से मुजफ़्फ़रपुर को ही मृत्यु -पर्यंत (7/4/2011) गौरवान्वित करते हुए एक स्वतंत्र साहित्यसेवी के रूप में जीवन यापन करते रहे। 1988 में बिहार सरकार के राजभाषा विभाग ने उन्हें एक लाख रुपये के राजेंद्र प्रसाद पुरस्कार से सम्मानित किया। शास्त्री जी का आवास निराला निकेतन गायों, कुत्तों और बिल्लियों की एक लघु प्रदर्शनी है, जहाँ इन पशुओं से महाकवि की आत्मीयता देखते ही बनती है।

उनका रचना संसार निम्नवत् है:-

(क)काव्य – 1 रूप-अरूप, 2 तीर-तरंग, 3 शिप्रा, 4 मेघ-गीत, 5 अवंतिका, 6 संग, 7 उत्पलदल, 8 आधुनिक कवि (भाग 14) 9, बाल -लता 10 धूप तरी, 11 श्यामा-संगीत, 12 सुनें कौन नगमा, 13 राधा महाकाव्य सात खंडों में, (प्रणव पर्व, पुरुषार्थ पर्व, दर्शन पर्व, विनोद पर्व, निर्वेद पर्व, प्रभास पर्व, एवं उत्सर्ग पर्व) 14 उत्तम पुरुष 101 कविताओं का चयन।

(ख) गीति नाट्य - 14 पाषाणी 15 तमसा 16 इरावती

(ग) उपन्यास 17 एक किरण: सौ झाइयाँ 18 दो तिनको का घोंसला 19 कालिदास।

(घ) कहानी: 20 कानन 21 अपर्णा 22 लीला -कमल 23 बाँसों का झुरमुट।

(च) कथा काव्य 24 गाथा

(छ) नाटक:25 अशोक -वन 26 सत्य काम, 27 ज़िंदगी 28 आदमी 29 प्रतिध्वनि 30 देवी 31 नील -झील

(ज) ललित निबंध:32 मन की बात 33 जो न बिक सकी

(झ) संस्मरण -आत्मकथा: 34 स्मृति के वातायन, 35 निराला के पत्र

36 नाट्य सम्राट पृथ्वीराज कपूर 37 हंस बलाका 38 कर्मक्षेत्रे: मरूक्षेत्रे, 39 एक असाहित्यिक की डायरी 40 अष्टपदी।

(ट)समीक्षा: 41 साहित्य- दर्शन 42 चिंता-धारा 43 प्राच्य-साहित्य 44 त्रयी 45 महाकवि निराला (संपादित) 46 मानस चिंतन (संपादित)

(ठ) पत्रिका संपादन: राका, बेला

शास्त्री जी की संस्कृत रचना काकली हो या हिन्दी की कृतियाँ रूप-अरूप, तीर-तरंग, मेघगीत या उत्पल दल, सब विशुद्ध गीतिकाव्यात्मक हैं। यहाँ तक कि उनके प्रबंधात्मक महाकाव्य राधा में भी गीति तत्व की प्रधानता है। गीतिकाव्य आत्मानुभूति - व्यंजक हुआ करता है। शास्त्री जी ने लिखा है कि 'कविता मेरे जीने की शर्त सी रही है। क्या क्या न पढ़ा, पर वह फूटी मेरी ज़िंदगी से। होठों पर जो बोल थिरके हैं, वह मेरे सरल गहन मन के स्याह-सफेद सायों से होकर ही आलोक - लोक की तलाश में बाहर घुमड़े घहरे हैं। ' (आधुनिक कवि 14 पृ.15)

इसीलिए दर्शन की जटिलतम गुत्थियाँ भी उनके गीतों में बड़े सहज-सुकुमार ढंग से ढली हैं। उदाहरणार्थ आत्मा और परमात्मा की तात्विक एकता अद्वैत दर्शन की आधार भूमि है। आत्मा तत्वत: परमात्मा से अभिन्न है, पर माया के पंचकुंचको के कारण बद्ध और सीमित। दोनों की इस मौलिक अभिन्नता और रूपगत भिन्नता का आख्यान कबीर से लेकर निराला और महादेवी वर्मा तक अनेक कवियों ने किया है। शास्त्री जी ने भी इस भेदाभेद का निरूपण एकाधिक गीतों में किया है। पर उनकी अभिव्यक्ति कितनी सहज, स्वच्छ और मार्मिक है: मैं न गगन हूँ, मैं न मही हूँ! / किसी नाम से मुझे पुकारो / उसी नाम का बना वही हूँ। / यों हम दोनों हिले मिले हैं, / एक डाल पर खुले खिले हैं, / नाम मात्र का अंतर फिर भी, / तुम हो हाँ, मैं हाय नहीं हूँ।

शास्त्री जी छायावादी परंपरा के कवि रहे हैं, इसलिए सौंदर्य और कल्पना इनके काव्य का उपजीव है। इनके गीतों में प्राणों की सुरभिमय कोमल अभिव्यंजना है। कल्पना के इंद्रजाल की महत्ता इनके गीतों में वर्तमान है और है उसके स्वर्ण निकुंज की मादकता जिसके आनंद रस में प्राणों को अपूर्व तन्मयता एवं सरसता प्राप्त होती है। सौंदर्य के अप्रतिम साधक होने के कारण इनके गीतों में लघुत्तर घटनाएँ भी सरस संगीत की माधुरी से आप्लावित हो उठती हैं। वसंत की स्वप्निल चाँदनी की रंगीनी एवं कुसुम सुगंध इनके गीतों में दीख पड़ती है।

शास्त्री जी की कविताओं में दार्शनिक अभिव्यक्ति भी अधिक हुई है। उनकी यह दार्शनिकता कहीं कहीं आत्मा की ब्रह्म के प्रति चिर रहस्यमय जिज्ञासा के रूप में प्रकट हुई है और कहीं उसकी अनुरागमय झलक के रूप में। उनकी आध्यात्मिक कविताओं में प्राणों का मरमर संगीत है। 'बाँसुरी' उनकी आध्यात्मिक चेतना एवं भावना को प्रकट करती है। आत्मा ब्रह्म से बिछड़ कर जगत् में बंद है लेकिन ब्रह्म का स्वर संकेत उसे प्राप्त होता है बाँसुरी के माध्यम से। यह स्वर तो चिर परिचित है। इसलिए वह सोचता है: जनम - जनम की पहचानी यह तान कहाँ से आई? / किसने बाँसुरी बजाई?

अनुरागमयी व्यंजना के द्वारा शास्त्री जी ने आत्मा की उत्सुकता का वर्णन सजीव ढंग से किया है- अंग अंग फूले कदंब सम, साँस झकोरे झूले। / सूखी आँखों में यमुना की, लोल लहर लहरायी / किसने बाँसुरी बजाई?

ऐसा कहा जाता है कि शास्त्री जी की रचनाओं में जेठ की दुपहरिया का तीखा ताप नहीं वरन् शरद् चाँदनी का अलस शृंगार है। यह सही है कि छायावादी होने के कारण सौंदर्य चेतना की ओर ही उनका ध्यान विशेष रूप से रहा, लेकिन शास्त्री जी मानव मन से दूर रहने वाले कलाकार नहीं है। छायावादी काव्य वस्तु की तरह उनका वस्तु चयन निरर्थक एवं निष्प्राण नहीं है, बल्कि उसमें जीवन का ठोस धरातल भी है। वह भले ही क्रांति की ललकार न करे लेकिन मानव का स्पंदन पूर्ण हृदय तो उनकी कविता में झलकता ही है।

'मेघगीत' शीर्षक कविता में शास्त्री जी ने जीवन की वर्तमान विरूपता का चित्र बड़े सजग कलाकार के रूप में प्रस्तुत किया है। उच्च वर्गों द्वारा जिस प्रकार शोषण होता है उसकी एक झाँकी देखिए:- ऊपर ऊपर पी जाते हैं, जो पीने वाले हैं। / कहते ऐसे ही जीते हैं, जो जीने वाले हैं।।

इस नृशंसता, क्रूरता एवं शोषण से कवि की शिराएँ तन जाती हैं और वह बादल को उपालंभ देते हुए कहता है:-

इस नृशंस छीना झपटी पर, फट कपटी पर, उन्मद बादल! / मूसलधार शतधार नहीं बरसाता है? / तो सागर पर उमड़-घुमड़ कर गरज तरज कर, / व्यर्थ गड़ गड़गाने क्या आता है!

इसी क्रम में बादल को दिया गया यह उलाहना भी व्यंग्यात्मक और सार्थक है: जनता धरती पर बैठी है, नभ में मंच खड़ा है, / जो जितनी है दूर मही से, उतना वही बड़ा है। / यही विपर्यय यही व्यतिक्रम, मानदंड नव मानी बादल, / तू भी ऊपर से ही सैन चलाता है।

मेघ को उसकी धरती माता बुला रही है; क्योंकि आज सूखे मुरझाए तरुओं में नई ज़िंदगी भरनी है, क्षेत्र क्षेत्र को आप्लावित करना है, भूतल को वृंदा विपिन बनाना है। शास्त्री जी का मानना है कि जीना भी एक कला है और उसे जाने बिना कोई मनुष्य नहीं बन सकता:- जीना भी एक कला है! / इसे बिना जाने ही मानव बनने कौन चला है? / आँख मूँद तोड़ें गुलाब, कुछ चुभे न क्या नादानी? / फिसलें नहीं, चलें चट्टानों पर, इतनी मनमानी! / अजि!शिखर पर जो चढ़ना है, तो कुछ संकट झेलो। / चुभने दो दो चार खार, जी भर गुलाब फिर ले लो। / तनिक रुको क्यों हों हताश, दुनिया क्या भला बला है! / जीना भी एक कला है!

शास्त्री जी की काव्य साधना का शीर्ष फल उनका राधा महाकाव्य है। राधा का चरित्र उदात्त एवम् एकांत गीतिकाव्यात्मक है, जिसके संबंध में स्वयं कवि ने लिखा है: राधिका कोई न नारी एक, / भावना वह हृदयहारी एक, / अस्थिमज्जा की नहीं वह देह, / स्वर्ण वर्ण जो बनी घनश्याम, / हाय! राधा है उसी का नाम।

किंतु यह निश्छल नेह की प्रतिभा भी स्वीकार करती है: साधना साध से प्रकट कड़ी होती है, / पर क्रिया वचन से सदा बड़ी होती है।

फिर हम कैसे कहें कि शास्त्री जी का गीतिकाव्य जीवन की गतिशीलता और ऊष्मा से वंचित है?

शास्त्री जी के संपूर्ण कृतित्व में 'गाथा' नामक कथा काव्य संग्रह का विशिष्ट स्थान है, कुछ वैसा ही जैसा निराला के कृतित्व में कुकुरमुत्ता का। दोनों का रचना काल आस पास ही है। कुकुरमुत्ता की रचना 1941 में हुई थी और गाथा की 1943 में। इसकी सात कथाओं में कवि ने युगीन विसंगति और वैषम्य पर विभिन्न कोणों से करारी चोट की है। गाथा की भूमिका में आचार्य नलिन विलोचन शर्मा ने ठीक ही लिखा है: 'गाथा के काव्यचित्रों में अभिव्यंजना वाद के परवर्ती (पोस्ट इंप्रेशनिस्ट) वान गॉग के चित्रों की सी यथार्थता और मनुष्यता की प्रेरणा है। गाथा का कवि 'दि प्रिजन यार्ड' के चित्रकार की तरह कहता है:-'मैं मानवता को चित्रित करना चाहता हूँ, मानवता को और फिर फिर मानवता को ही।' गाथा की हरिहर क्षेत्र का मेला एक अनूठी और अविस्मरणीय रचना है।

यों तो शास्त्री जी का मस्तिष्क वेदांत और व्याकरण के नीरस सूत्रों एवम् शास्त्रों के गुरुभार से बोझिल है, फिर भी उनका हृदय कविता के रस से आप्लावित है, इसलिए वे हिन्दी काव्य गगन में एक सरस सुकुमार कवि के साथ-साथ विद्वान कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं। एक ओर उन्होंने काकली (संस्कृत गीतिकाव्य) को प्रस्तुत कर जयदेव की परंपरा को जीवित रखा, तो दूसरी ओर तीर-तरंग, रूप- अरूप के द्वारा निराला की परंपरा को पुनर्जीवित किया। यही कारण है कि उनकी बहुमुखी प्रतिभा आधुनिक हिन्दी को बराबर चौंकाती सी रहती है। वे कोमल भावनाओं के सफल कवि हैं और गीत रचना उनकी प्रकृति के बिल्कुल निकट एवं अनुकूल है। प्रो. केसरी कुमार ने शिप्रा की भूमिका में अक्षरश: सत्य लिखा है कि काकली, रूप-अरूप, तीर -तरंग और शिप्रा आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री के विकास स्तंभ हैं। काकली उनका स्वर संधान है, रूप - अरूप मूर्च्छना और तीर -तरंग उनके बसंत पतझड़ के करुण मधुर गायन का सरूर भरा सम और शिप्रा? यह सबसे अलग है। यहाँ आगत की आरती उतारी गई है, जिसकी स्फटिक ज्योति में अनागत का स्वरूप ही बिम्बित हो उठा है। यहाँ कवि की आकाश विहंगिनी मूर्त को अमूर्त से मिलाने, क्षणिक को शाश्वत करने भूमि पर उतर आई है। जीवन के सानिध्य के अतिरिक्त भाषा का प्रौढ़ घरेलूपन, बंधन का संश्लेषण तथा इंगित की स्पष्टता इस पुस्तक की निजी विशेषताएँ हैं। (शिप्रा की भूमिका से)

शास्त्री जी की संस्कृत कविताओं का प्रथम संग्रह काकली 1935 में प्रकाशित हुआ था, जिसे देखकर महाकवि निराला ने लिखा था:- तुम्हारी काकली नकल नहीं, तुम्हारे जातीय सत्य से पूर्ण, आकाश और पृथ्वी को मिला रही है। इसमें अपने तारुण्य की नई पहचान पाकर चकित हो गया।'

शास्त्री जी का हिन्दी की ओर झुकाव अंशत: निराला जी की प्रेरणा से ही हुआ था। शास्त्री जी के साहित्यिक गुरु निराला जी ही थे। स्वनामधन्य युगांतकारी कवि निराला ने शास्त्री जी के संदर्भ में लिखा है कि- "वे शास्त्राचार्य, हिन्दी के श्रेष्ठ कवि, आलोचक और कहानी लेखक हैं। अपनी प्रतिभा, लेखन कौशल और दिव्य व्यवहार से उन्होंने अनेक बार मुझ पर अपनी गहरी छाप डाली है।"

000

संदर्भ-1 जानकी वल्लभ शास्त्री की साहित्य साधना: सं.मारुति नंदन पाठक, 2 काकली, राधा, रूप-अरूप, शिप्रा मेघगीत, गाथा तथा अन्य कृतियाँ: जानकी वल्लभ शास्त्री जी, 3 आधुनिक कवि 14 आचार्य शास्त्री, 4 जानकी वल्लभ शास्त्री की प्रतिनिधि कविताएँ: डा सज्जन कुमार अरुण, 5 अग्नि पुराण: महर्षि वेद व्यास, 6 चिंता-मणि: आचार्य राम चंद्र शुक्ल, 7 सुकवि समीक्षा: आनंद नारायण शर्मा

(शोध आलेख)

आदिवासी विस्थापन: कारण और समाधान

शोध लेखक : सबिता पॉल

विस्थापन एक ऐसा शब्द है जिसके गर्भ में अधिकृत अथवा मूल निवासी होने का अर्थ स्वत: ध्वनित होता है। विकास और विस्थापन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब भी विकास की परिकल्पना तैयार की गई, योजनाएँ बनाई गई हैं, विस्थापन अथवा उजाड़ का ग्राफ ख़ुद-ब-ख़ुद निर्मित हुआ है। विस्थापन एक ऐसी समस्या है जिसकी चपेट में आने वाले का कोई रंग-रूप, जाति -धर्म आदि के आधार पर भेद नहीं है। आधुनिक सभ्य समाज एवं विकास की नई परिभाषाओं को गढ़ने के दौरान विस्थापन की चोट सहते जीवन की सुध कौन लेगा? यक्ष प्रश्न आज समाधान की चाह में मुँह ताकते हुए खड़ा है। आख़िर यह विकास, यह प्रगति किसके लिए है? समाज के एक वर्ग को उजाड़ कर, विस्थापित कर, दूसरे वर्ग के लिए सुविधाओं का निर्माण करना क्या वास्तव में विकास की परिभाषा को सार्थकता प्रदान करता है? आधुनिकीकरण और औद्योगिक विकासवादी प्रक्रिया की मार सबसे अधिक आदिवासियों पर पड़ती है। भारत में आदिवासियों का अस्तित्व आयरें से पहले से स्थित है। वे यहाँ के मूल निवासी हैं। "दरअसल 'आदिवासी' देश के मूल निवासी माने जाने वाले तमाम आदिम समुदायों का सामूहिक नाम है।"1

बीज शब्द- विस्थापन, मूल निवासी, उजाड़ का ग्राफ, यक्ष प्रश्न, परिकल्पना, आधुनिकीकरण। कुल संदर्भ- 8 (आठ)

प्रस्तावना - इसमें कोई दो राय नहीं है कि आदिवासी देश के मूल निवासी हैं। बावजूद इसके आज सबसे अधिक उपेक्षा तथा वंचना का शिकार भी वही हैं। आदिवासियों का अस्तित्व-अस्मिता आज कई दृश्यों से संकटों से घिरा हुआ है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि विकास की तीव्र प्रक्रिया में आदिवासी और आदिवासियत खतरे में है। विकास के नाम पर हज़ारों, लाखों आदिवासी सदियों से विस्थापित होते जा रहे हैं। अपने ही जल-जंगल- ज़मीन से बेदखल होने के बाद रोज़ी-रोटी की तलाश में पलायन कर रहे हैं। अवसरों के विकल्प ढूँढ़ते हुए भटक रहे हैं। मूल सिद्धांतों और अधिकारों में वर्णित समानता के अधिकार के प्रतिफल से आदिवासी समुदाय आज भी वंचित हैं। आज़ादी के 74 वर्ष बाद भी उनकी स्थिति में अन्य वर्गों की अपेक्षा रेखांकित करने योग्य कोई विशेष सुधार लक्षित नहीं है। जबकि इतिहास के पन्नों में स्वाधीनता संग्राम की सूची में आदिवासियों का योगदान अमर अक्षरों में अंकित है। बिरसा मुंडा के उलगुलान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। अनगिनत आदिवासियों ने, जिनमें महिलाएँ भी शामिल थीं, अपने जीवन की आहुति देकर स्वतंत्रता संग्राम को प्रबलता प्रदान किया।

यदि आदिवासियों के जीवन शैली का सूक्ष्म अध्ययन-निरीक्षण किया जाए तो उसके मूल में केवल एक ही इच्छा व्याप्त मिलेगी- अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखते हुए प्रकृति के संरक्षण में जीवन व्यतीत करना। आदिवासी और प्रकृति का अन्योन्याश्रित संबंध है। यह कहना ग़लत नहीं होगा कि आदिवासियत का आधार ही प्रकृति है। आदिवासी प्रकृति को संसाधन-स्रोत की दृष्टि से न देख कर जीवनदायिनी और संरक्षिका के रूप में देखते हैं। यही कारण है कि उनकी जीविका की अधिकतम वस्तुएँ वे प्रकृति से प्राप्त करते हैं। एक ओर जहाँ औद्योगिकीकरण के तेज़ प्रभाव के परिणाम स्वरुप जंगलों का सफाया किया जाता रहा है, वहीं दूसरी ओर आदिवासी वनों की सुरक्षा के लिए तत्पर रहते हैं।

विभिन्न आर्थिक नीतियों के लागू होने पर देश में विदेशी निवेशकों का आगमन तेज़ी से हुआ। यहाँ के प्राकृतिक संसाधनों का तेज़ी से दोहन होने लगा। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव

सबिता पॉल
शोधार्थी, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग,
कोल्हान विश्वविद्यालय
चाईबासा, झारखंड
833202

आदिवासियों पर पड़ा। जिस प्रकृति को आदिवासी अपना सब कुछ मान कर उसके साथ आत्मीयता का अनुभव करते आए, वही प्रकृति उद्योग कंपनियों के लिए कच्चे माल का स्रोत बन गई। इस स्थिति का सामना आदिवासी स्वाधीनता पूर्व से करते आ रहे हैं। रमणिका गुप्ता के शब्दों में- "देश आज़ाद होने से पहले ही अंग्रेज़ों ने आदिवासियों के जंगल में प्रवेश पर रोक लगाकर उन्हें वहाँ से खदेड़ने की योजना लागू करनी शुरू कर दी थी। इस प्रकार वे जंगल की उपज के सब अधिकारों से वंचित कर दिए गए थे।"2 कालांतर में हुए आंदोलनों के मूल में यही नीतियाँ और खदेड़ने की प्रक्रिया कारक तत्वों में शामिल थीं।

विषय - विश्लेषण :- प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य आदिवासी समाज में विस्थापन के गहराते संकट को उद्घाटित करते हुए उसके समाधान की दिशा पर विचार प्रस्तुत करना है। विकास की विशालकाय परियोजनाओं के तहत आदिवासियों के अधिकारों के हनन की कहानी सदियों से चली आ रही है। देश के हर राज्य में बसे आदिवासियों की मूल व्यथा पलायन और विस्थापन की विभीषिका है। यह विस्थापन केवल भूमि से बेदखली के रूप में नहीं है बल्कि इसके कई अन्य आधार हैं य जिन्हें निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है: -

1 - जल-जंगल- ज़मीन से विस्थापन

2 - भाषा के आधार पर विस्थापन

3 - रीति-रिवाजों तथा संस्कृति के आधार पर विस्थापन

1 - जल-जंगल-ज़मीन से विस्थापन आदिवासियों की मूल समस्या है। अन्यत्र कहा जा चुका है कि आदिवासी देश के मूल निवासी हैं। यहाँ के जल-जंगल-ज़मीन पर उनका मौलिक अधिकार है। लेकिन देसी-विदेशी कंपनियों तथा उद्योग- धंधों, भव्य इमारतों, कॉलोनियों के निर्माण हेतु वनों की अंधाधुंध कटाई ने आदिवासियों के जीवन स्रोत पर हमला बोल दिया है। भूमि का हनन होने के कारण आदिवासी बसने के लिए अन्य क्षेत्रों का रुख कर रहे हैं। नई जगह में जाकर बसने तथा रोज़ी - रोटी की तलाश कर नए सिरे से जीवन की शुरुआत करने में उन्हें काफी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। आदिवासियों के वनों से अवैध संबंध को दर्शाते हुए डॉ. राय बर्मन लिखते हैं- "साम्राज्यवादी शासनकाल में इस प्रतीकात्मक संबंध को तब गहरा धक्का लगा, जब जंगल को अधिकृत मुनाफे का स्रोत मात्र समझा जाने लगा और मानव निवास तथा विस्तृत जीवन परिसर के बीच की जीवंत कड़ी के रूप में इसे अनदेखा कर दिया गया।"3

जंगलों और पहाड़ों में बसने वाले आदिवासियों को खदेड़ कर हटाया गया। उन्हीं की ज़मीनों को हड़प कर उन्हें बेदखल कर दिया गया। प्रकृति पर आश्रित इनका जीवन बुरी तरह प्रभावित हुआ और ये महानगरों की ओर बढ़ने लगे। इनकी त्रासदी यहीं समाप्त नहीं होती है। जीवन यापन के लिए अर्थोपार्जन हेतु जब ये आदिवासी अपने पीछे अपने परिवार को छोड़कर घरों से निकलते हैं तो पति अथवा परिवार के मुखिया की अनुपस्थिति में उसकी पत्नी पर असामाजिक प्रवृत्ति वाले लोग किस तरह कुदृष्टि डालते हैं तथा उसे तरह-तरह से परेशान करते हैं इस बात की पुष्टि निर्मला पुतुल की 'ढेपचा के बाबू' शीर्षक कविता की इन पंक्तियों में होती है- "गाँव घर का हाल तो जानते ही हो / जिसका मरद साथ नहीं होता / उसे कैसे - कैसे सताते हैं / गोतिया - भाय आस - पड़ोस के लोग / एक बार तो पता नहीं कौन / पिछवाड़े का कटहल तोड़ ले गया सब रातों-रात / वंदना में सूअर काट कर खा गए / ऊपर पड़ा के लोग"4

निर्मला पुतुल अपनी कविताओं में स्त्री के ऊपर उठती हैं उस दृष्टि पर कटाक्ष करती हैं जो उसके स्त्रीत्व को असहज महसूस कराता है - "वह जो तुम्हारे साथ आता - जाता था / ईंट - भट्टेवाला / अभी भी आ जाता है अनचाहे / करता है तुम्हें लेकर भद्दा मज़ाक / उसकी नीयत कुछ ठीक नहीं लगती मुझे"5

विकास के नाम पर भव्य इमारतों के आवरण में आदिवासियों पर होने वाले अत्याचारों को धड़कनें की कितनी भी कोशिश की जाए, समय-समय पर किए गए शोध तथा सर्वेक्षणों से सत्य छन कर बाहर आ ही जाता है।

2 - भाषा के आधार पर विस्थापन - आदिवासियों की जीवन शैली अन्य वर्गों की जीवन शैली से नितांत भिन्न होती है। प्रकृति के स्वच्छ वातावरण में स्वच्छंद विचरण की प्रवृत्ति आदिवासी संस्कृति का अभिन्न अंग है। समस्त आदिवासी समुदाय के सामान्य भाषा होती है। वर्तमान में संचार के विभिन्न साधनों की उपयोगिता तथा वैश्वीकरण के परिणाम स्वरूप विभिन्न भाषा-भाषियों के आपस में जुड़ने के कारण इनकी भाषिक संरचना में मिश्रण देखा जा रहा है। इस मिश्रण का एक अन्य पक्ष भाषायी दृष्टि से आदिवासियों को पिछड़ा हुआ मानना भी है। आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी अंग्रेज़ी भाषा का प्रचलन ज्यों का त्यों है। अंग्रेज़ी तथा अन्य पाश्चात्य भाषाओं का जानकार होना आधुनिक सभ्यता की निशानी मानी जाने लगी है, उसका स्वभाव वाले आदिवासी अपनी भाषा रूपी पुरातन संपत्ति को समेटे हुए हैं। किंतु अपने प्रति गैर आदिवासियों बनाम दिकुओं के दृष्टिकोण में हीनता का भाव देखते हुए आदिवासी आधुनिक प्रथा प्रचलित भाषाओं को अपनाने लगे हैं जिससे उनकी मूल भाषा का अस्तित्व हिलता हुआ प्रतीत हो रहा है। हालांकि जयपाल सिंह ने उरांव, गोंडी तथा मुंडारी जैसी 3 समृद्ध भाषाओं को आठवीं अनुसूची में सम्मिलित करने की माँग की थी जिसे पूरी नहीं की गई। हिन्दी- अंग्रेज़ी जैसी प्रतिष्ठित व प्रचलित भाषाओं ने आदिवासी भाषा शैली को प्रभावित कर जहाँ एक ओर अपना क्षेत्र विस्तार किया है वहीं दूसरी ओर आदिवासी भाषाओं के अस्तित्व पर प्रहार भी किया है। समाज तथा समय के प्रभाव तले दबकर आदिवासी अपनी भाषा होते हुए भी प्रचलित भाषाओं को अपना रहे हैं। आदिवासियों के हक में कलम चलाने वाले गंगा सहाय मीणा आदिवासी भाषा की विशेषताओं को रेखांकित करते हुए लिखते हैंद्द "संस्कृत से भी पुरानी आदिवासी भाषाएँ समतामूलक समाज की समर्थक रही हैं। यह

दिलचस्प है कि अधिकांश आदिवासी भाषाओं में बलात्कार, चोरी, बेईमानी डकैती जैसे शब्द तक नहीं है। ज्ञान की एक पूरी वैकल्पिक परंपरा है आदिवासी भाषाओं में।"6 आदिवासी भाषा की अस्मिता को बचाना ज़रूरी है। भाषा संरक्षण के माध्यम से ही संस्कृति सुरक्षा में एक परत मज़बूत होगी।

3 - रीति-रिवाजों तथा सांस्कृतिक आधार पर विस्थापन आदिवासी समुदाय की एक अन्य समस्या है। किसी भी राष्ट्र की गरिमा वहाँ के सांस्कृतिक अवस्थिति में झलकती है। आदिवासियों की सभ्यता-संस्कृति अपनी पुरातनता का घूँघट ओढ़े पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तानांतरित होती रही है। भारतीय संस्कृति का मूल अंश आदिवासी जीवन दर्शन में विद्यमान है। समाज के विभिन्न वर्ग पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित और लिप्त है। आदिवासी समुदाय भी मेलजोल के इस प्रक्रिया से अछूता नहीं रहा। आदिवासियों में हिंदू तथा ईसाई धर्म एवं संस्कृति का प्रभाव देखा जाता है। उक्त दोनों ही धमरें के विभिन्न पर्व त्योहारों तथा रीति-नियमों के पालन में आदिवासी सम्मिलित होने लगे हैं। इसके पीछे सामूहिक सद्भावना कारक तत्व हो सकता है लेकिन इससे बहुत बारीकी से उनकी संस्कृतिगत विस्थापना हो रही है। इसके पीछे मूल कारण उनकी स्वभावगत सरलता है। प्राकृतिक परिवेश में पले बढ़े आदिवासी छल कपट से रहित सहृदय होते हैं। समाज में रहने वाले अन्य धर्म तथा जाति के लोगों से मैत्रीपूर्ण संबंध बनाएँ रखते हैं। इससे कारण उनके आचार -विचार, व्यवहार से आदिवासी संस्कृति प्रभावित होती है। जीवन शैली में परिवर्तन आता है। खान-पान के तौर तरीके प्रभावित होते हैं। सांस्कृतिक तादात्म्य स्थापित करने के परिणाम स्वरूप आदिवासियों की निजी संस्कृति का रूप परिवर्तित हो रहा है। वर्तमान की शिक्षा पद्धति से भी आदिवासियों का जीवन तथा उनके रीति रिवाज प्रभावित हुए हैं।

सांस्कृतिक परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण कारक के रूप में शिक्षा को उत्तरदाई मानते हुए डॉ. किशन मनोहर पवार लिखते हैं - " शिक्षा नए युग के अनुरूप समाज को नया रूप देने का महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। भारत में विविध संस्कृतियाँ निवास करती है। अंतर सांस्कृतिक भावना को विकसित करने के लिए शिक्षा एक महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली साधन है।"7 शिक्षा संस्कृतिगत विशेषताओं को परिमार्जित तथा संरक्षित करती है। सांस्कृतिक एकता की दृष्टि से यह प्रसन्नता का विषय है किंतु शिक्षा के द्वारा विभिन्न संस्कृतियों के मेल के परिणाम स्वरूप आदिवासियों की निजी संस्कृति अपने मूल रूप को धीरे-धीरे खोती जा रही है।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि आदिवासी जो कि यहाँ के मूल निवासी और धरा के आदिम संतान है सर्वप्रथम उनका इस धरा पर अधिकार है। ब्रिटिश काल से ही उनका शोषण किया जा रहा है। ब्रिटिश शासन की समाप्ति के लंबी अवधि के बाद भी आदिवासियों की स्थिति वैसी ही है। आदिवासी शोषण, उत्पीड़न, उपेक्षा, विस्थापन की समस्या से निरंतर जूझते आ रहे हैं। जिन वनों में वे सदियों से निवास करते आए, जिन नदी नालों तालाबों से वे अपने खाद्य पदार्थ की प्राप्ति करते आए, जिन पर्वत पहाड़ों की तराइयों में वे पशु चारण करते आए, उन्हें उन्हीं वनों, नदी-तालाबों, पहाड़-पर्वतों से बेदखल कर दिया जाता रहा है। पशु चारण में रोक लगा दी जाती रही है। वनों की कटाई कर उद्योग धंधे लगाए जाते हैं, तो कभी वैश्वीकरण की प्रक्रिया के तहत अन्य कार्यों की सिद्धि होती है। वनों की कटाई और जनजातियों की भूमि पर गैर जनजातियों के कब्जे के दुष्परिणाम स्वरूप क्षेत्रफल की दृष्टि से वन भूमि कम होती जा रही है।

आदिवासियों की धार्मिक मान्यता प्रकृतिवाद से जुड़ी है। हिंदू, ईसाई तथा अन्य धर्मों के संपर्क में आने के कारण आदिवासी संस्कृति में उनकी संस्कृति की झलक दिखाई पड़ने लगी है जो कि चिंतनीय विषय है। अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखने की दिशा में उन्हें संकल्पित होना पड़ेगा। आदिवासियों को शोषण और उपेक्षा के घेरे से निकालने के लिए यह अति आवश्यक है कि उन्हें उचित शिक्षा प्रदान कर बौद्धिक तथा ज्ञानात्मक दृष्टि से उन्हें सशक्त किया जाए। रोज़गार के वांछित अवसर उपलब्ध कराया जाए ताकि वे जीविकोपार्जन की बंदोबस्ती के लिए अन्य क्षेत्रों की ओर पलायन न करें। इस संदर्भ में डॉ.गोविंद गारे का कहना है- "आदिवासियों के संदर्भ में व्यक्ति और प्रदेश का विकास एक साथ होना चाहिए ताकि बाहरी जगत् से उनका जो संपर्क हो, उससे किसी को उनके शोषण का अवसर न मिले।" 8

आदिवासी देश की जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा है। इन की उपेक्षा कर न तो देश का पूर्ण विकास संभव है न ही मानवता का परिचय। जिस प्रकार शरीर के किसी एक अंग के सुस्त पड़ जाने पर संपूर्ण व्यक्तित्व की गरिमा नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार पूर्ण सभ्य समाज की गणना तभी संभव है जब हमारे समाज का अभिन्न अंग आदिवासी समुदाय कदम से कदम मिलाकर हमारे साथ चले। इसके लिए उसके प्रति आत्मीय भाव को जागृत कर हेय तथा उपेक्षा की दृष्टि को त्यागना होगा और उसके संपूर्ण कष्टों से मुक्ति के लिए उचित प्रयास ससमय करना होगा।

000

संदर्भ- 1 - आदिवासी चिंतन की भूमिका, पृ. सं. 13 लेखक गंगा सहाय मीणा, अनन्य प्रकाशन। 2 - आदिवासी विकास से विस्थापन, पृ. सं. 10, संपादक रमणिका गुप्ता, राधाकृष्ण प्रकाशन। 3 - आदिवासी और जंगल: शोषण के शिकार, पृ. सं. 3, मैथ्यू अरिपरमपिल। 4 - ढेपचा के बाबू, (नगाड़े की तरह बचते शब्द), पृ. सं. 43, लेखिका निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ। 5 - वही। 6 - भाषा का सवाल और आदिवासी, (आदिवासी चिंतन की भूमिका), पृ.सं.113, लेखक -गंगा सहाय मीणा, अनन्य प्रकाशन। 7 - भारत के आदिवासी एवं जनजाति, पृ. सं. 191, लेखक-किशन मनोहर पवार। 8 - विकास यात्रा और परिवर्तन की दिशा, पृ. सं. 24, लेखक डॉ.गोविंद गारे, (संपादित ग्रंथ- आदिवासी विकास से विस्थापन, संपादक रमणिका गुप्ता), राधाकृष्ण प्रकाशन।

(शोध आलेख)

बाल साहित्य के सरोकार

शोध लेखक : मेहनाज़ बेगम

सारांश- बाल साहित्य अर्थात् बाल मन का दर्शन, बाल मनोविज्ञान की समझ और बाल-मानसिकता को ध्यान में रखकर किया गया लेखन। यह अत्यंत प्राचीन तथा समृद्ध लेखन परम्परा है जिसका मुख्य लक्ष्य मात्र बाल पाठकों का मनोरंजन करना ही नहीं अपितु उन्हें वर्तमान जीवन की वास्तविकता से अवगत कराना है। आरंभ से ही बाल साहित्य बालक के मन, विचार और कल्पना को परिमार्जित करते हुए समाज और राष्ट्र के भावी स्वरूप की पृष्ठभूमि तैयार करता है। बाल साहित्यकार का यह दायित्व है कि वह बच्चों के प्रति चिंतनशील होकर ऐसा सार्थक बाल साहित्य सृजन करे जिससे कि उनमें रचनात्मक कल्पनाशीलता, जीवन के प्रति नई उमंग जागृत हो और साथ ही वे नैतिक मूल्यों, भारतीय संस्कृति और सभ्यता से भी जुड़ सकें।

कुंजीभूत शब्द - बाल मनोविज्ञान, समृद्ध, परिमार्जित, चिंतनशील, सार्थक, कल्पनाशीलता, नैतिक मूल्य।

बाल साहित्य बालकों के सृजनात्मक विकास में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। बच्चों की मनोभूमि तक पहुँच उनके मन के अनुकूल साहित्य सृजन करना ही बाल साहित्य है, जिसकी रचना करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि इस रचना का पहला पाठक बालक ही होगा। बालक अपनी बाल्यावस्था में जो संस्कार प्राप्त करता है, वह उसके सर्वांगीण विकास में सहायक होता है, जो अंततः एक स्वस्थ समाज के निर्माण का आधार बन जाता है। बालक जितना विचारशील, परिपक्व और गहन सोच का होगा, उतना ही समाज सुविकसित तथा सुदृढ़ होगा। बाल मनोविज्ञान की यही समझ के साथ यदि बालक का मार्गदर्शन किया जाए तो उसे उसकी मौलिक रुचि तथा क्षमताओं के साथ सही दिशा की ओर मोड़ा जा सकता है जिससे उसकी मौलिक प्रतिभा और अधिक विकसित तथा विस्तृत होगी।

बच्चों के विकास में बाल साहित्य की महती भूमिका होती है अर्थात् बाल साहित्य बच्चे के मानसिक विकास में सहायक होता है। साहित्य का संबंध मन, विचार, भाव, प्रतिभा आदि मानसिक क्रियाओं से है, जिनकी अभिव्यक्ति शब्द और लिपि के माध्यम से होती है। मनोविज्ञान

मेहनाज़ बेगम
पीएच.डी. शोधार्थी (हिन्दी), नेट, सेट
जम्मू विश्वविद्यालय
जम्मू - 180006
ईमेल- mehnazbegum4050@gmail.com

व्यक्ति के भाव, विचार तथा व्यवहार का विज्ञान है। अत: साहित्य विशेषकर बच्चों के लिए, बच्चों की रुचि के अनुकूल और बच्चों की ही भाषा में लिखा गया हो आवश्यक है। इसी तरह विविध विधाओं का बच्चों के मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है। बच्चों में सबसे लोकप्रिय विधा है, कहानी। आरंभ से ही उनमें कहानियों के प्रति अनुराग होता है, जिसका कारण है उनके मनोविज्ञान के भावुक तत्त्व जो उन्हें इस ओर आकर्षित करते हैं। इसी तरह बालगीत - कविता का अपना महत्त्व है। बच्चे उपन्यास पढ़ने में भी रुचि लेते हैं तो वहीं उनके बहुमुखी विकास में नाटकों का भी अपना विशेष योगदान है। अत: इन समस्त विधाओं की व्यवहारिक प्रयुक्ति से बालक के कोमल हृदय पर गहरी छाप पड़ती है। अंतत: बालक के स्वस्थ एवं संतुलित विकास हेतु रुचिकर बाल साहित्य की आवश्यकता तथा उपादेयता असंदिग्ध है।

'साहित्य' शब्द में 'बाल' शब्द उपसर्ग के रूप में जुड़ जाता है तब वह बाल साहित्य माना जाता है। बाल साहित्य दो शब्दों के मेल से बना है - बाल+साहित्य अर्थात् जो साहित्य बालकों के लिए लिखा जाता है अर्थात् उसे बच्चे लिखें या प्रौढ़ लिखें। यह बच्चों के मनोरंजन, ज्ञानवर्द्धन, जिज्ञासावृत्ति, मानसिक विकास, व्यक्तित्व विकास एवं प्रेरणाप्रद सामाजिक बोध के लिए लिखा जाता है।

अत: प्रत्येक सभ्यता, समाज एवं संस्कृति भावी पीढ़ी के रूप में बच्चों को विशेष स्थान देती है। सामाजिक प्राणी होने के कारण सभी के मन में यही कामना होती है कि आने वाला समय आज से श्रेष्ठ हो। इसी दृष्टि से बाल साहित्य को समझने का प्रयास किया जाता रहा है। आज का बालक कल का भविष्य है, वह राष्ट्र निर्माता है। अपनी योग्यता के बल पर वह जब बुराइयों से लड़ता है और अपने समाज तथा देश में नई चेतना भरता है, तब वह राष्ट्र विकसित होकर उन्नतशील देशों के समक्ष खड़ा होने योग्य हो जाता है।

डॉ. हरिकृष्ण देवसरे के अनुसार, "जो साहित्य बच्चों की रुचि के अनुकूल सरल भाषा में लिखा गया हो और जो बच्चों की ज्ञान सीमा को विस्तारित करते हुए उनकी ज्ञान पिपासा को शांत करता हो, वह साहित्य बाल साहित्य कहलाता है।"1

डॉ. कृष्णचंद्र तिवारी (राष्ट्रबंधु) के अनुसार, "उपदेशात्मकता से बोझिल न होकर बड़ों के लिए निष्प्रयोजन, किन्तु बच्चों के लिए रुचिकर हो वह साहित्य बाल साहित्य होता है।"2

इसी तरह जयप्रकाश भारती लिखते हैं कि, "बालक की समस्याओं पर लिखना या किसी कला में बालक-बालिका को पात्र बना लेने से बाल साहित्य नहीं लिखा जाता। बालक की मानसिकता को ध्यान में रखकर उसके पढ़ने के लिए उसके मनोरंजन एवं विकास के लिए जो लिखा जाता है, वही बाल साहित्य होता है।"3

शिवशंकर मिश्र के अनुसार, "श्रेष्ठ बाल साहित्य वह है जिसे पढ़कर बच्चों में सद्गुण उभरे तथा उन्हें सद्कार्य की प्रेरणा मिले, उनकी आकांक्षाएँ बलवती हों।"4

पाश्चात्य विद्वान हेनरी स्टील के मतानुसार, "बच्चों ने जिसे अपना लिया वही बाल साहित्य है। रूसी साहित्य में पौराणिक कथाओं का कोई महत्त्व नहीं है।"5

स्मिथ के अनुसार, "सारा साहित्य बाल साहित्य नहीं है सरल सीधे-साधे शब्दों में हम जो भी उन्हें दे दें वही बाल साहित्य हो जाएगा।"6

अत: संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि बाल साहित्य वह दर्पण है जो बच्चों के भविष्य को रूपायित करता है। वह काल्पनिक न होकर उद्देश्यपरक है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जो मार्ग उपनाया जाता ह। वह निश्चय ही बाल सुलभ प्रवृत्ति के अनुकूल होता है।

बाल साहित्य से अभिप्राय है बाल मन का दर्शन, बाल मनोविज्ञान की समझ और बाल-मानसिकता को ध्यान में रखकर किया गया लेखन। यह अत्यंत प्राचीन और समृद्ध लेखन परंपरा है जिसका मूल उद्देश्य मात्र बाल पाठकों का मनोरंजन करना ही नहीं अपितु उन्हें वर्तमान जीवन की वास्तविकता से अवगत कराना है। बालकों की प्रारंभिक अवस्था से ही बाल साहित्य उनके मन, विचार और कल्पना को परिमार्जित करते हुए समाज और राष्ट्र के भावी स्वरूप की पृष्ठभूमि तैयार करता है।

हिन्दी बाल साहित्य के आरम्भिक दौर में बच्चों के लिए नीतिपरक तथा सदाचारयुक्त साहित्य सृजन हुआ जिसमें पंचतंत्र की कहानियाँ, हितोपदेश आदि कहानियाँ बालसाहित्य की धरोहर के रूप में आज भी विद्यमान हैं। किन्तु समय के साथ-साथ बाल साहित्य का स्वरूप परिवर्तित हुआ। सन् 1850 से 1900 के बीच हिन्दी साहित्य में भारतेंदु हरिश्चंद्र काल में बाल साहित्य को भी एक नई दिशा मिली। हिन्दी बाल साहित्य का प्रारम्भ सन् 1882 ई. में भारतेन्दु हरिश्चंद्र के प्रयास से प्रकाशित 'बाल दर्पण' से माना जाता है किन्तु इसकी विधिवत शुरूआत सन् 1915 में प्रकाशित 'शिशु' एवं सन् 1917 में पं. लल्लीप्रसाद पांडेय द्वारा प्रकाशित 'बाल सखा' पत्रिका से मानी जाती है। इसके बाद कई अन्य बाल पत्रिकाएँ निकलती हैं जिन्होंने बाल साहित्य को स्थायित्व प्रदान करने का प्रयास किया।

पंचतंत्र में विष्णु शर्मा ने कहा है, "जिस प्रकार किसी नए पात्र का कोई संस्कार नहीं रहता ठीक उसी प्रकार बालकों की स्थिति होती है। इसलिए उन्हें कथाओं के माध्यम से ही संस्कार बताना चाहिए। नीति कथाओं से परिपूर्ण बालकों की जिज्ञासा को शांत करने वाला साहित्य ही बाल साहित्य है।"7

आधुनिक हिन्दी बाल साहित्य रचनाकारों में श्रीधर पाठक, बालमुकुंद गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि ने बेहतर बाल कविताएँ रची हैं। इनके अतिरिक्त मैथिलीशरण गुप्त, रामधारी सिंह 'दिनकर', सुभद्राकुमारी चौहान, हरिवंशराय बच्चन, प्रेमचंद, माखनलाल चतुर्वेदी, रामनरेश त्रिपाठी, सियारामशरण गुप्त आदि कई ऐसे साहित्यकार भी हुए जिन्होंने बाल साहित्य लेखन में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। प्रेमचंद ने बाल साहित्य लेखन की दिशा में सर्वाधिक गंभीरता दिखाई। उनके द्वारा रचित कहानियाँ बड़े भाई साहब, प्रेरणा, ईदगाह, कुत्ते की कहानी इत्यादि आज के यथार्थ को

चित्रित करने वाली बाल कहानियाँ हैं। सन् 1960 ई. के बाद बाल साहित्य में बड़ी तीव्रता से बदलाव आया। बाल साहित्य की आवश्यकता, महत्त्व और बाल साहित्य समीक्षा की आवश्यकता को रेखांकित करने वाले लेख धर्मयुग आदि सभी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में लिखे गए और पौराणिक परिकथाओं की सार्थकता पर प्रश्नचिह्न लगाने के कारण मौलिक बाल कथा-लेखन की ओर लेखकों का ध्यान आकृष्ट हुआ। बाल साहित्य के विकास में बालसखा, शिशु, किशोर, चन्दा, लल्ला, बालहंस, बच्चों का देश, अपना बचपन, नन्हा आकाश, बाल जगत् और बाल भारती जैसी पत्रिकाओं का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

हिन्दी बाल साहित्य में आरम्भ से ही गंभीर समीक्षा का अभाव होने के कारण ये साहित्य कमज़ोर रहा किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि हिन्दी में अच्छा बाल साहित्य नहीं लिखा जा रहा है। आज वर्तमान समय में बहुत बड़ी संख्या में बाल साहित्यकार एवं बाल साहित्यिक संस्थाओं द्वारा बाल साहित्य को बच्चों तक अधिक से अधिक पहुँचाने और उनमें पढ़ने की रुचि जागृत करने के लिए निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं। आज साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन के साथ ही सृजनात्मक बाल साहित्य लेखन को भी बढ़ावा मिला है। नेशनल बुक ट्रस्ट, चिल्ड्रन बुक ट्रस्ट एवं हिन्दी संस्थान बाल उन्नयन के लिए प्रयासरत हैं। बाल साहित्यकार बाल-मन की इच्छा को ध्यान में रखते हुए साहित्य सृजन कर रहे हैं और समग्र रूप से विभिन्न विषयों पर बाल साहित्य सृजन हो रहा है। वर्तमान में श्रीप्रसाद, प्रकाश मनु, रमेश तैलंग, रमेश आज़ाद, श्याम सुशील, सुरेन्द्र विक्रम, शेरजंग गर्ग, बालस्वरूप राही, सूर्यकुमार पांडेय, दामोदर अग्रवाल, मेजर कृपाल वर्मा, स्वप्ना दत्ता, रेखा जैन आदि बाल साहित्यकारों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं जो कि इस दिशा में सृजनरत हैं और अपनी बाल कहानियों, उपन्यास, कविता, नाटक, एकांकी और यात्रा वृत्तांत के माध्यम से बाल साहित्य के विकास के नए आयाम स्थापित करने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। इसी तरह दैनिक हिंदुस्तान, अमर उजाला जैसे अख़बार भी बच्चों के लिए हर सप्ताह पूरा पृष्ठ छापकर बाल पत्रिकाओं की कमी को पूरा कर रहे हैं। अत: शताब्दी के अन्त तक पहुँचते-पहुँचते बाल साहित्य जहाँ समृद्ध हुआ है, वहीं लेखकों की सोच में भी काफी बदलाव आया है। बच्चों में आधुनिक दुनिया और समाज को लेकर जो जिज्ञासाएँ उत्पन्न हुई हैं उनके अनुरूप बाल साहित्य रचना की दिशा में काफी प्रयास हुए हैं। अंतत: वर्तमान में जो बाल साहित्य रचा जा रहा है उसकी सोच में आधुनिकता का होना अनिवार्य है।

संवेदनशील बाल-मन तक रचना के प्रेषण के लिए बाल मनोविज्ञान की गहरी समझ होना रचनाकार के लिए आवश्यक है। बच्चों में पढ़ने की रुचि पैदा करना बाल साहित्यकार का दायित्व है। अत: जो रचना बाल-मनोविज्ञान के जितने निकट होगी, वह बाल-पाठकों द्वारा उतनी ही सुगमता से ग्राह्य तथा स्वीकार्य होगी।

निष्कर्षत: आधुनिकता के इस दौर में आज बच्चे भावुकता और सहजता की अपेक्षा तार्किक और व्यवहारिक अधिक हो गए हैं इसलिए बाल साहित्य में आज आवश्यकता है नई दिशा और सोच के साथ बच्चों में साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अभिरुचि उत्पन्न करने की। बाल साहित्यकार का यह दायित्व है कि वह बच्चों के प्रति चिंतनशील होकर ऐसा सार्थक बाल साहित्य सजृन करे जिससे कि उनमें रचनात्मक कल्पनाशीलता, जीवन के प्रति नई उमंग जागृत हो और साथ ही वे नैतिक मूल्यों, भारतीय संस्कृति और सभ्यता से भी जुड़ सकें। अत: हिन्दी बाल साहित्य रचना का आधुनिक स्वरूप निस्सन्देह इसके उज्जवल भविष्य का परिचायक है।

बाल साहित्य का स्वरूप इस प्रकार का हो जिसे बालक क्रमश: वैज्ञानिक ढंग से समझ सके और जो उनकी बुद्धि के वैज्ञानिक विकास में भी सहायक सिद्ध हो सके। बाल साहित्य का उद्देश्य विश्व कल्याण, विश्व बंधुत्व और मानव को मानव बनाना साथ ही हृदय को स्नेह से जोड़ना एवं एक आदर्श समाज की स्थापना करना है तथा मैत्री, प्रेम, दया, परोपकार तथा देश प्रेम के भावों का साम्राज्य स्थापित करना है जिससे बालक अपना शैक्षिक परिवेश, अपना संसार, अपनी आकांक्षाएँ, अपनी अस्मिता साहित्य के अंतर्गत पा सकें तथा मानसिक सुकून के साथ मनोरंजन प्राप्त कर सकें। अत: बाल साहित्य का निर्माण उनके स्तरानुरूप हो, जो उन्हें सद्मार्ग की ओर ले जाए वही बाल साहित्य सार्थक है, श्रेष्ठ है।

000

सन्दर्भ-1.डॉ. हरिकृष्ण देवसरे, हिन्दी बाल साहित्य रचना और समीक्षा, पृ. 8, 2.डॉ. हरिकृष्ण देवसरे, हिन्दी बाल साहित्य एक अध्ययन, पृ. 9, 3.जयप्रकाश भारती (संपादक), भारतीय बाल साहित्य का इतिहास, पृ. 29 (प्रथम सं. 2002), 4.डॉ. सुरेन्द्र विक्रम, हिन्दी बाल पत्रकारिता उद्भव एवं विकास, पृ. 15, 5.हेनरी स्टील, ए आर्टिकल हिस्ट्री ऑफ चिल्ड्रन्स लिट्रेचर कोमगार, पृ. 7, 6.शकुंतला कालरा, बाल साहित्य का स्वरूप और रचना संसार, पृ. 18, 7.लल्लीप्रसाद पाण्डेय, बाल सखा - मासिक पत्रिका, पृ. 13

लेखकों से अनुरोध

सभी सम्माननीय लेखकों से संपादक मंडल का विनम्र अनुरोध है कि पत्रिका में प्रकाशन हेतु केवल अपनी मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। वह रचनाएँ जो सोशल मीडिया के किसी मंच जैसे फ़ेसबुक, व्हाट्सएप आदि पर प्रकाशित हो चुकी हैं, उन्हें पत्रिका में प्रकाशन हेतु नहीं भेजें। इस प्रकार की रचनाओं को हम प्रकाशित नहीं करेंगे। साथ ही यह भी देखा गया है कि कुछ रचनाकार अपनी पूर्व में अन्य किसी पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ भी विभोम-स्वर में प्रकाशन के लिए भेज रहे हैं, इस प्रकार की रचनाएँ न भेजें। अपनी मौलिक तथा अप्रकाशित रचनाएँ ही पत्रिका में प्रकाशन के लिए भेजें। आपका सहयोग हमें पत्रिका को और बेहतर बनाने में मदद करेगा, धन्यवाद।

-सादर संपादक मंडल

(शोध आलेख)

प्रवासी हिंदी कथा साहित्य में युग यथार्थ और पारिवारिक जीवन के बदलते स्वरूप

शोध लेखक : मंजू देवी
मार्गदर्शक : डॉ. नरेश चंद गोयल

मंजू देवी
शोधार्थी, हिंदी विभाग,
महाराजा सूरजमल बृज विश्वविद्यालय
चक सकीतरा, कुम्हेर
भरतपुर, राजस्थान 321201

सारांश- हिंदी साहित्य की निरंतर प्रवाहित होती धारा में विभिन्न विधाओं को उतारा गया जिसमें एक प्रमुख है - कथा साहित्य। प्रवास के अंतर्गत अनेक लेखकों ने अपने मनोभावों की अभिव्यक्ति कहानी और उपन्यास के माध्यम से कर युग यथार्थ और पारिवारिक जीवन के बदलते स्वरूप का चित्रण बखूबी से किया है। प्रस्तुत शोध पत्र में प्रवास में पारिवारिक जीवन, मूल्य परिवर्तन,पति-पत्नी सम्बंध, पारिवारिक स्थितियों और अणु परिवार की समस्याओं के विभिन्न आयामों को उल्लेखित किया गया है। भारतीय परिवेश में रह रहे हिंदी साहित्यकारों ने तो युग यथार्थ और पारिवारिक जीवन के बदलते स्वरूप को अपनी साहित्यिक रचनाओं में प्रस्तुत किया है। किंतु प्रवासी साहित्यकार भी इससे अछूते नहीं रहे। इन्होंने भी अपने प्रवास के दौरान अलग-अलग देशों में भोगे युग यथार्थ और पारिवारिक जीवन की अभिव्यक्ति का प्रभावशाली वर्णन कथा साहित्य के अंतर्गत किया है, जो शोध पत्र के माध्यम से प्रस्तुत किया जा रहा है।

बीज शब्द- युग यथार्थ, प्रवास, पारिवारिक स्थितियां, अणु परिवार, मूल्य परिवर्तन, पति-पत्नी सम्बंध,मनोभाव।

परिचय- बीसवीं शताब्दी में हिंदी साहित्य विभिन्न शाखाओं में विभाजित होने लगा। दलित साहित्य, स्त्री-विमर्श, प्रवासी साहित्य आदि इस संबंध में कई विवाद भी हुए है। कई विद्वान साहित्य को सर्जनात्मक और कलात्मक विधा के रूप में मानते हैं। साहित्य में सभी विचार धाराएँ सभी पक्ष और संदर्भ सम्मिलित होते हैं। अत: साहित्य को समग्रता में ही देखा जाता है। हिंदी साहित्य के अंतर्गत अनेक विमर्श प्रचलित रहे हैं जिनमें एक प्रवासी विमर्श भी शामिल है। प्रवासी विमर्श के अंतर्गत विभिन्न देशों में बसे भारतीय जो अपनी लेखनी के माध्यम से रचनाएँ लिख रहे हैं। इन प्रवासी लेखकों ने अलग-अलग विधाओं पर लेखनी चलायी है, जिनमें कहानी

उपन्यास प्रमुख है। अलग-अलग देशों के लेखकों ने अपने युग यथार्थ की अभिव्यक्ति की है। युग यथार्थ और पारिवारिक परिवेश पर अनेक लेखकों ने अपनी लेखनी चलायी है। इन प्रवासी कथाकारों की लंबी सूची उपलब्ध है। इनमें तेजेंद्र शर्मा (ब्रिटेन), अभिमन्यु अनत (मॉरीशस), सुधा ओम ढींगरा (अमेरिका), पूर्णिमा बर्मन (अबू धाबी), सुषम बेदी (अमेरिका), उषा राजे सक्सेना (ब्रिटेन), दिव्या माथुर (ब्रिटेन), स्नेहा ठाकुर (कनाडा), रेखा राजवंशी (आस्ट्रेलिया), अर्चना पेन्यूली (डेनमार्क), उषा ठाकुर (नेपाल), डॉ. विवेकानंद शर्मा (फिजी), डॉ. राजेंद्र सिंह (कनाडा) इन सभी प्रवासी साहित्यकारों ने युग यथार्थ और पारिवारिक परिवेश जिसमें जीवन के बदलते स्वरूप का चित्रण किया गया है।

मॉरीशस लेखिका 'बीबी साहेबा फर्ज अली त्रु दो दुस' ने अपनी कहानी 'हिम्मत की प्याली' में संयुक्त परिवार की अभिव्यक्ति की है, जो आज मुश्किल ही मिलते हैं। प्रवास ही क्या भारत में भी आज संयुक्त परिवार न के बराबर रह गए हैं। इस कहानी में "दादी अपनी दो नातिनों के साथ बैठी गपशप लगा रही है। विमाला अपने पति के हाथ से सूटकेस लेकर अपने कमरे की ओर जाती है। अजय भी उसके पीछे-पीछे चला जाता है और कपड़े बदल कर अजय और उसकी पत्नी विमाला बैठक में आते हैं। अजय अपनी माँ के करीब वाले सोफे पर बैठ गया। विमाला उसके लिए चाय के साथ गरमा-गरम पकोड़े ले आई। अजय ने सबसे पहले गरम चाय के साथ पकोड़े का स्वाद लिया और उसके बाद अपनी माँ से कहा वाह माँ जी! आज तो कोडो बेल से कम नहीं। आपके हाथ के बने पकोड़े एकदम स्वादिष्ट हैं। आख़िरकार आप अजय की माँ हैं।" अपने पिता की इस ग़लत परख पर उसकी दोनों बेटियों को हँसी आई। दादी भी हँसने लगी। अजय को इन लोगों का हँसना बहुत अच्छा लगा। तब दादी ने खुद बताया - "इन पकोड़ों में मेरी बहुरानी के हाथों का कमाल है। इस तारीफ के योग्य केवल विमाला है। बेटा मैं नहीं।"

इस कहानी में परिवार में आपसी स्नेह और मिल जुलकर प्रेम भाव से रहने का संदेश मिलता है जो विदेशी धरती पर इतना आसान नहीं है। यह कहानी संयुक्त परिवार की अभिव्यक्ति कराती हैं जो भारतीय संस्कृति को कायम रखे हुए है।

इसी प्रकार डॉ. वंदना मुकेश की कहानी 'सरोज रानियाँ इंग्लैंड यू.के. लेखिका में भी संयुक्त परिवार की झलक मिलती है। यह कहानी मुख्य पात्र सरोज से जुड़ी हुई है। सरोज एक सीधी-सादी, सरल व्यक्तित्व की भारतीय लड़की है जो शादी के बाद विदेश आती है। यहाँ उसके परिवार में पति के अलावा सास-ससुर और एक देवर भी है। "उसके पति का परिवार यहाँ पैंतीस सालों से है। वे पढ़े-लिखे भी यहीं हैं।" उसके पति और देवर यहीं की पैदाइश है। सरोज यहाँ आकर कंप्यूटर, अंग्रेज़ी बोलना सब सीखती है, लेकिन इंग्लैंड में उसके साथ अनुचित व्यवहार होता है। उसका पति उसे जाहिल समझता है। उसे मारता-पीटता है। "सास दूसरों के सामने अलग व्यवहार करती है। अकेले में धमकाती है।" इस प्रकार पूरी कहानी प्रवास के दौरान महिलाओं के सामने आने वाली स्थिति का चित्रण करती है। जो युग यथार्थ और पारिवारिक स्थिति की अभिव्यक्ति करती है। यह कहानी बिल्कुल शीर्षक को चरितार्थ करती है कि सरोज जैसी कितनी ही सरोज रानियाँ इस तरह की पारिवारिक हिंसा की शिकार होती हैं, जो शादी के बाद विदेश का सपना सँजोए हुए है। और यहाँ आने पर उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। सरोज भी संयुक्त परिवार में अपने देवर, सास-ससुर के साथ होते हुए भी इस मानसिक, शारीरिक प्रताड़ना से वंचित न हो सकी। यह कहानी पूर्ण रूप से प्रवासी युग यथार्थ व पारिवारिक परिवेश पर आधारित है।

इसी प्रकार तेजेंद्र शर्मा भी एक गंभीर प्रवृत्ति के प्रवासी कथाकार हैं। इन्होंने अपनी कहानियों में युग यथार्थ और पारिवारिक परिवेश का चित्रण किया है। इनकी कहानियों में दो संस्कृतियों के बीच पारिवारिक परिवेश मिलता है। इनकी 'देह की कीमत' कहानी भी कुछ इस प्रकार की है। कहानी का मुख्य पात्र हरदीप फरीदाबाद का है वही उसकी पत्नी और माता-पिता व बच्चे रहते हैं। हरदीप अधिक अर्थार्जन के लिए जापान चला जाता है। वहाँ जाकर वह "हर वो काम जो अपने देश में किसी भी कीमत पर नहीं करता, जापान में सहर्ष कर लेता है।" भारतीय युवाओं को विदेश में जाने का भूत सवार है, यह इस कहानी में व्यक्त हुआ है, जिसका हर्जाना उनके माता-पिता व बच्चों को चुकाना पड़ता है। पूरा परिवार बिखर जाता है। न किसी के शादी-विवाह में आ-जा सकते हैं और न ही किसी की मृत्यु पर। यही वाक़या इस कहानी में घटता है। हरदीप विदेशी होने पर अपने प्राण त्याग देता है। वह अपने परिवार से मिल भी नहीं पाता। परिवार से दूर अर्थ-प्राप्ति की लालसा उसे परिवार से कोसों दूर कर देती है और आखिर में हरदीप की अस्थियाँ व बैंक ड्रॉफ्ट आते हैं। आज के समय की माँग के अनुसार पैसा मिल जाता है और परिवार बिखर जाता है। इसी युग यथार्थ को बोध कराने वाली पारिवारिक परिवेश आधारित अनेक कहानियाँ व उपन्यास लिखे जा चुके हैं जिनमें भोगे हुए यथार्थ और प्रवास पीड़ा का बखूबी से वर्णन किया गया है।

प्रवासी जीवन में व्यक्ति जिस आत्मिक चाह के साथ प्रवास करता है वह कुछ समय बाद उसे सालती ज़रूर है। लेकिन अर्थ लालसा के कारण परिवार से हाथ धोना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति के मानसिक ज़ेहन में यही अतिशय आर्थिक उन्मुखता नजर आती है, जिसके आगे परिवार का मूल्य खत्म हो जाता है। यही आज के समय का कटु यथार्थ है।

'कोई फायदा नहीं' कहानी में भी पारिवारिक स्थिति का चित्रण किया गया है। प्रभास और उसकी पत्नी अर्थार्जन हेतु गए हैं। कुछ सालों बाद प्रभास की माँ बहू और बेटे से मिलने आती है तो क्या देखती है कि बहू दुधमुँहे बच्चे को छोड़कर काम पर चली जाती है। बेटा इतना व्यस्त है कि माँ के लिए समय नहीं निकाल पाता है तो माँ को लगता है कि मैं कहाँ आ गई ? यहाँ किसी को किसी से कुछ मतलब नहीं। केवल और केवल पैसों की भूख

नज़र आती है।

प्रवासी हिंदी कथा साहित्य में पारिवारिक जीवन के टूटते बिंब और मूल्य परिवर्तन आधारित कहानियाँ में कहीं परिवार द्वारा धोखा तो कहीं अपनी ही संतान द्वारा माता-पिता के साथ अनुचित व्यवहार, किसी-किसी कहानी में तो मानव-मूल्यों का पतन जगह-जगह देखने को मिलता है। सुधा ओम ढींगरा की कहानी भी कुछ इसी भाव बोध पर आधारित है। इनकी कहानी 'कौन सी ज़मीन अपनी' का शीर्षक से ही पता चलता है कि किस प्रकार मानव-मूल्यों का ह्रास हो रहा है। कहानी का मुख्य पात्र मनजीत अपना कमाया हुआ धन भारत में ज़मीन खरीदने के लिए भाइयों के पास भेजता रहता है और अंत में वह जब अपने देश आता है, तो वही भाई मिलकर उसे मारने की कोशिश करते हैं तब उसे महसूस होता है कि वह किस परिवार के लिए यह सब कुछ कर रहा था ? इस प्रकार अर्थ के लालच में परिवार का विघटन और मूल्य बदल गए हैं।

इसी प्रकार की कहानी 'कमरा नंबर 103' में भी पारिवारिक मूल्यों का ह्रास दिखाई पड़ता है। पति के मरने के बाद 'मिसेज वर्मा' को उनका पुत्र यह कहकर अमेरिका ले आता है कि वहाँ दोनों पति-पत्नी मिलकर आपकी सेवा करेंगे। पर होता कुछ और है। सेवा के नाम पर अपनी माँ का शोषण पुत्र माँ को हिदायत देते हुए कहता है कि "घर की सफाई करने वाली हटा दी है, कुछ खर्चा बच जाएगा। आप घर में खाली बैठे तंग आ जाते हैं घर का काम क्यों नहीं सँभाल लेते।" सात समुंदर पार करके आने वाली माँ के लिए पुत्र का अनुचित व्यवहार बदलते हुए मूल्यों को व्याख्यायित करता है। वहीं इनकी 'सूरज क्यों निकलता है' कहानी भी परिवार के विघटन व मूल्य परिवर्तन पर आधारित है।

तेजेंद्र शर्मा की कहानी 'क्रमशः' में भी कुछ इसी प्रकार के मूल्य परिवर्तन दिखाई देते हैं। कहानी के पात्र रेखा और प्रमोद एक-दूसरे से तो संतुष्ट हैं पर बुआजी के आने पर पारिवारिक वातावरण बदल जाता है। बहू के दहेज का सामान कम लाने के तानों और उसके घर के कामकाज में कमी निकाली जाती है। गर्भवती बहू को नौकरी करने पर मजबूर किया जाता है। पति के द्वारा ताने मारना, प्रेम से न बोलने पर उसकी सहन शक्ति जवाब दे देती है और वह अपने ससुराल को छोड़कर भरी कोख के साथ चली जाती है। इस प्रकार यह कहानी पारिवारिक विघटन और मूल्य परिवर्तन की व्याख्या करती है।

इसी प्रकार पुष्पिता अवस्थी की कहानी 'गोखरू' में परिवार के तीन पीढ़ियों की महिलाओं का चित्रण है। इसमें कादंबरी, उसकी माँ और माँ की नानी। बूढ़ी नानी विचारों से समय से बहुत आगे की सोच रखती है। उन्होंने जीवन में कभी भी घूँघट नहीं निकाला, किंतु वह अपने ही बेटे और बहू के व्यवहार से आहत होकर अपना घर छोड़कर बेटी के यहाँ रहने चली जाती है। कादंबरी अपने पति की मृत्यु के बाद पढ़ा-लिखाकर बेटे को विदेश भेजती है और स्वयं सारे खर्चों पर लगाम लगाकर एक स्कूल में नौकरी थाम लेती है। अपने विदेशी बेटे के आने की प्रतीक्षा में घर बेचकर सारा पैसा आने वाली बहू और बेटे के लिए जमा करती है और बेटा विदेश में अपने लिए लड़की ढूँढ़ लेता है। इस प्रकार पारिवारिक विघटन में परिवर्तन प्रत्येक प्रवासी कथा साहित्य में देखने को मिलते हैं वहीं इनकी वितरकों की कहानी में पारिवारिक जीवन का टूटता बिंब और मूल्य परिवर्तन का बहुत ही मार्मिक चित्रण मिलता है माँ-बाप मेहनत मज़दूरी कर अपना पेट काटकर अपने दस बच्चों को पाल-पोस कर बड़ा करते हैं परंतु जब वही बच्चे कुछ बन जाते हैं तो वह अपना अलग-अलग ही घर गृहस्थी-बसा लेते हैं। माँ बाप के लिए किसी के पास में जगह नहीं बचती है। बूढ़ा पिता अपने बच्चों के प्यार के अभाव की अनुभूति में टूट जाता है और भगवान से प्रार्थना करता हुआ कहता है। हे! प्रभु अब की बार मनुष्य जन्म मत देना। मानव बनने में बहुत दुख है, जीना कठिन है बच्चों के तिरस्कार ने बूढ़े पिता को इतना अकेला कर दिया था कि वह आत्महत्या कर लेता है इस प्रकार के परिवार का विघटन होता है।

सुदर्शन प्रियदर्शिनी की कहानी 'धूप' भारतीय पति-पत्नी के अमेरिका में बसने पर उनके संबंधों को दर्शाती है। पति ने पत्नी के प्रति लगाव और प्रेम, आत्मीयता जैसी कोई भावना ही नहीं है। वह भारतीय होते हुए भी पूरी तरह से अमेरिकन हो गया है। जब वह अपनी पत्नी के साथ किसी रेस्टोरेंट में जाता है तो वह अलग-अलग बिल मँगवाता है। उसकी पत्नी हीनता बोध से ग्रस्त हो जाती है लेकिन फिर भी वह संस्कारों से जकड़ी है और जमाने के साथ नहीं चल पा रही हैं। वह अपने पति के बारे में सोचती है। विशाल से किसी तरह की कोई अपेक्षा रखना 'दीवार से सिर फोड़ने वाली बात' है। वह तो इतना स्वार्थी और स्वयंसेवी है कि घर में बने चिकन की बोटियाँ भी पहले अपनी प्लेट में बटोर लेता है और बच्चे देखते रह जाते हैं पर उसे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। यह सड़प-सड़प बेशर्मी से खाता रहता है जिस प्रकार घर की चिमनी का धुआँ रोशनी को गुटक नहीं पाता, ठीक इसी प्रकार विशाल का व्यक्तित्व रेखा के व्यक्तित्व पर आच्छादित नहीं हो पाता है। इसी प्रकार पति-पत्नी संबंध वाली भुवनेश्वर की कहानी 'स्ट्राइक' भी है। इस कहानी में भी पति-पत्नी संबंधों में आत्मीयता की उष्मा नहीं है और यह जीवन में यांत्रिकता आ जाने के कारण घटित होती है। अमेरिकी जीवन में यांत्रिकता आ जाने से ऐसी विसंगत स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती है जो युग यथार्थ को अभिव्यक्ति कराती है।

भारत से लड़कियाँ जब शादी होकर विदेश आती है तो उनके साथ पत्नी जैसा व्यवहार नहीं किया जाता है। पति-पत्नी संबंधों का अलग-अलग परिवारों में अलग-अलग व्यवहार किया जाता है। इसी का वर्णन सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में देखने को मिलता है। 'क्षितिज से परे' कहानी का पात्र सुलभ अपनी पत्नी सारंगी को बेवकूफ़, अनपढ़ गँवार कहता है। "मैंने तुम जैसी अनपढ़ गँवार का जीवन सँवार दिया। पश्चिमी सभ्यता और अमेरिकी वातावरण ने तेरा दिमाग़ ख़राब कर दिया है। मेरे बिना तेरा अस्तित्व है ही क्या ? तेरी नींव खोखली है। आज अगर मैं तलाक दे दूँ, तो तेरी तरफ कोई देखेगा भी नहीं।" यही कहानी अत्यधिक पढ़े-लिखे पति द्वारा कम

पढ़ी-लिखी पत्नी के मानसिक शोषण को दिखाती है। भारतीय लड़कियों को जिस प्रकार से प्रताड़ित किया जाता है उसकी पोल खोलती है। इसी प्रकार इनकी 'अनुगूँज' कहानी भी कुछ इस प्रकार की पीड़ा को दिखाती है। कहानी की पात्र गुरमीत मनप्रीत से अपना दर्द बयाँ करते हुए कहती है "मनप्रीत तुम्हारा भी हाल मेरे जैसा होने वाला है। पम्मी इस समय सोफी के घर पर है। इन्हें बहुएँ नहीं नौकरानी चाहिए। बहुएँ तो इनकी गोरियाँ है। भाग जा यहाँ से, नहीं तो रोज़ मेरी तरह हड्डियाँ तुडवायेगी।" यह प्रवास में पति-पत्नी संबंध को दर्शाती कहानी है।

पति-पत्नी संबंधों की पेचीदगी को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करने वाली तेजेंद्र शर्मा की कहानी 'भँवर' एक ज़बरदस्त कहानी है। मुंबई में स्मिता और भरत अपने दो बच्चों के साथ खुशहाल ज़िंदगी जी रहे हैं। भरत एयरलाइन में नौकरी करने लगता है क्योंकि उसका सपना लंदन-अमेरिका घूमना है। भरत की मुलाकात रमा से होती है जो छह साल से लंदन में रह रही है पर दोनों के कोई औलाद नहीं है। रमा भरत से एक बच्चा चाहती है। भरत के दिमाग़ में अपनी पत्नी स्मिता और बच्चों की छवि घूमने लगती है कि वह अपनी पत्नी से विश्वासघात कैसे करे, लेकिन वह करता है। इस प्रकार पति-पत्नी संबंध और पारिवारिक स्थितियों का चित्रण करती है। वहीं इनकी कहानी 'अभिशप्त' भी निशा और रजनीकांत के विवाह के बाद की स्थिति का चित्रण करती है। निशा अपने बेटे के जन्म के बाद रजनीकांत को आत्मीय संबंध नहीं बनाने देती है और पति के रूप में निशा के सामने उसकी कोई अहमियत नहीं है। दोनों एक घर में रहकर भी एक दूसरे के लिए संवेदनहीन होते जाते हैं।

ज़किया ज़ुबैरी की कहानी 'बस एक कदम' में पति-पत्नी संबंध कुछ इस प्रकार से देखने को मिलते हैं। इस कहानी की नायिका शैली अपने पति घनश्याम से अत्यंत प्रेम करती हैं। परंतु घनश्याम उसको प्यार नहीं करता है, जिसके कारण शैली सोचती है कि मेरी उम्र तो इनसे कई साल छोटी है, दिखने में भी सुंदर हूँ , फिर मेरे में क्या कमी है जिसके कारण घनश्याम मुझसे दूर रहते हैं। शैली कितनी बार घर से निकलने की सोचती है, परंतु भारतीय संस्कार के कारण वह अपने पति को छोड़ नहीं पाती है। हमेशा अपने पति के इंतजार में बैठी रहती है। जब घनश्याम जल्दी घर आता है तो वह खुश होती है, परंतु उसके इंतज़ार का फल मीठा नहीं होता है। इस बात पर लेखिका कहती है कि "दिनभर की थकी शैली खुश थी कि - आज घनश्याम दफ्तर से कुछ जल्दी वापिस आ गया था, किंतु पति के पास प्यार के दो मीठे शब्द भला कहाँ थे। आदेश बस आदेश।" इस प्रकार पति-पत्नी संबंधों की व्याख्या करती है।

इसी प्रकार अणु परिवारों में कई समस्याएँ देखने को मिलती है। तेजेंद्र शर्मा की कहानी श्वेत श्याम भी अणु परिवार की समस्या सामने लाती है। कहानी का पात्र फौजी हेमंत की पत्नी संगीता पति की पोस्टिंग के बाद अकेलेपन को भरने के लिए पार्टियों का सहारा लेती है। रंगीन पार्टियों का हिस्सा बनाते हुए वह स्वयं रंगीन मिज़ाज बन जाती है और अपनी देह का सौदा भी करती है। वह अपने पति की आमदनी से अपने बड़े शौक पूरा नहीं कर पाती है। पति की वर्दी में लगे 6 सितारे उसे पाँच सितारा होटल के आगे फीके लगते हैं। वह अपना अकेलापन दूर करने के लिए दूसरे व्यक्ति का सहारा लेती है विदेशों में खालीपन को भरने के लिए स्त्रियाँ पैसे वाले पुरुषों का सहारा लेती है। यह समस्या प्रत्येक अणु परिवार में परिलक्षित होती है। इसी प्रकार पुष्पिता अवस्थी की कहानी 'इनिक्का' में भी अणु परिवार में स्त्री दशा का चित्रण किया गया है इन्हीं की माँ को जब उसके पिता तलाक देकर विदेश चले जाते हैं, तो उसके संवेदनशील मन में अपनी माँ और नानी के दुख-दर्द धरोहर के रूप में इकठट्ठा हो जाते हैं। माँ का यह रूप इनिक्का कभी नहीं भूल पाती। क्या प्रेम और बच्चों के प्रति कर्तव्य सदैव स्त्री ही निभाती है। माँ के कई त्याग उसकी स्मृति में बसे हैं, यही दशा युगीन समाज की प्रत्येक स्त्री की है।

अचला शर्मा की कहानी 'उस दिन आसमान में कितने रंग थे'। लंदन में रह रहे दंपती की कहानी है, जो कई उलझनों में हँसता है। सुख पाने की चाह में उन्होंने संतानोत्पत्ति को आवश्यक नहीं समझा और जब उसकी आवश्यकता पत्नी रुपाली को महसूस होती है, तब तक देर हो चुकी होती है। बुद्धिवादी अभिव्यक्ति के कारण परिवार छोटा ही रहा। चाह कर भी बड़ा नहीं कर पाए। क्योंकि अणु परिवार में कोई बच्चे को पालने वाला बड़ा नहीं था और पति पत्नी अपनी सुख सुविधाओं में व्यस्त थे। जो एक सामान्य समस्या बन चुकी है।

निष्कर्श- अत: प्रवासी कथा साहित्य का अध्ययन करने पर युग यथार्थ और पारिवारिक जीवन के बदलते स्वरूप सामने आए। तत्कालीन समाज में संयुक्त परिवार न के बराबर है और जो है उनमें कोई मूल्य नहीं। परिवार इस कदर टूट रहे हैं, स्वार्थ लोलुपता और अर्थ प्राप्ति ने पारिवारिक मूल्यों का हनन कर दिया। घर में माता-पिता या बड़ों की कोई इज़्ज़त नहीं। यह बदलते युग की सच्चाई को दर्शाता है। बदलते युग और प्रवासी होने की सच्चाई ने पति-पत्नी संबंधों को भी अछूता नहीं छोड़ा। यह समस्या अणु परिवारों की चाहत के कारण इस कदर बढ़ गयी है जैसे अफीम का नशा चढ़ता है। इसी कारण पारिवारिक स्थितियाँ बदलीं और मूल्यों में परिवर्तन आया।

000

संदर्भ- 1.तेजेंद्र शर्मा (जुलाई 2012), 'भँवर', 2.शर्मा तेजेंद्र (जुलाई 2012), 'अभिशप्त' से पुर्नप्राप्त। 3. तेजेंद्र शर्मा (जुलाई 2012), 'क्रमशः' से पुर्नप्राप्त। 4.सुधा ओम ढींगरा (जुलाई 2012), 'कौन सी ज़मीन अपनी' भावना प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 92. वही पृष्ठ संख्या 65, 5.शोध दिशा अक्टूबर-दिसम्बर 2010, पृष्ठ संख्या 23, 6.वर्तमान साहित्य जनवरी-फरवरी 2006, प्रवासी साहित्य महा विशेषांक, सम्पादक- कुंअरपाल व नमिता सिंह, पृष्ठ संख्या 324। 7.प्रवासी जगत, जनवरी-मार्च 2020, सम्पादक- प्रो. बीना शर्मा व डॉ. जोगेन्द्र सिंह मीणा, पृष्ठ संख्या 67 वही पृष्ठ संख्या 68।

(शोध आलेख)

रीतिकालीन कविता में भक्तिकालीन अंकुर

शोध लेखक : सोनम कुमारी

प्रत्येक युग का साहित्य अपने समय तथा वातावरण से प्रभावित होता है। जैसे-जैसे समय बदलता है, वैसे-वैसे समाज तथा साहित्य में भी बदलाव देखने को मिलता है। जब समाज में परिवर्तन होता है तब साहित्य भी उसी के अनुरूप रचा जाता है। प्रत्येक युग का साहित्य अपने पूर्व युग के साहित्य का अगला सोपान होता है। उदाहरण के लिए- आदिकाल का अगला सोपान भक्तिकाल, छायावाद का प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद का नई कविता। उसी तरह भक्तिकाल का अगला सोपान रीतिकाल है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में 1600ई. से 1800ई तक का समय रीतिकाल माना जाता है। इस काल में कवि राजदरबारों से जुड़े हुए थे। वह अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने के लिए प्रेम और श्रृंगार के साथ-साथ अलंकार, नायिका-भेद, रस, छंद आदि विषयों पर काव्य करते थे। प्रश्नानुसार, जब भक्तिकाल का अगला सोपान रीतिकाल है तो अवश्य ही रीतिकालीन काव्य के अंकुर भक्तिकालीन काव्य में होंगे? देखने की ज़रूरत यह है कि यह अंकुर किस रूप में है।

भक्तिकाल में ही कहीं-कहीं काव्यशास्त्रीय चर्चाएँ प्रमुखता पाने लगी थी, जो कवि मूलत: भक्त थे, उन्हें तो काव्यशास्त्र में रुचि नहीं थी किंतु कुछ कवि ऐसे थे जिनके लिए भक्ति के साथ-साथ काव्य-यश भी महत्त्वपूर्ण था। ऐसे कवियों में 'नंददास' अग्रणी थे, जिन्होंने 1560 ई. के आस-पास 'रसमंजरी' की रचना की। इसी प्रकार, 'कृपाराम' ने 1570 ई. में 'हिततरंगिणी' की रचना की। और केशवदास ने इसी परंपरा को बढ़ाते हुए 1601 ई. में 'कविप्रिया' लिखी। इससे स्पष्ट होता है कि रीति-निरूपण की परंपरा रीतिकाल में पैदा नहीं हुई। इसका जन्म भक्तिकाल के उत्तरार्ध में हो चुका था। रीतिकाल की विशिष्ट राजनीतिक परिस्थितियों ने इस परंपरा को ऊँचे स्तर तक ले जाने में भूमिका निभाई। भक्तिकाल के अंतिम दौर की कविता में श्रृंगार तत्व की

सोनम कुमारी
शोधार्थी-दिल्ली विश्वविद्यालय

उपस्थिति बढ़ने लगी थी। यूँ तो भक्तिकाल की शुरुआत से ही श्रृंगार कविता महत्त्वपूर्ण विषय था, जैसे- कबीर की सूफ़ियाना कविताएँ और जायसी व अन्य सूफियों की तसव्वुफ़ पर आधारित कविताओं में श्रृंगार के भाव प्रमुख था। जैसे-जैसे भक्तिकाल उत्तरार्ध की ओर बढ़ा, श्रृंगार का महत्त्व बढ़ता गया। इसमें कृष्णकाव्य धारा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। भक्तिकाल में श्रृंगार भक्ति के आवरण के भीतर व्यक्त हो रहा था, वही रीतिकाल में बिना किसी आवरण के व्यक्त होने लगें। भिखारीदास कहते हैं कि राधा और कृष्ण का नाम तो सिर्फ बहाना है, असली उद्देश्य तो यश की प्राप्ति करना है- "आगे के सुकवि रीझिहै तो कविताई, न तो, / राधिका कन्हाई को सुमिरन तो बहानै हैं।"(1)

भक्तिकाल के अंत में ब्रजभाषा का काव्यभाषा के तौर पर जो चरम विकास हुआ, उसने भी रीतिकालीन काव्य की संभावनाओं को बढ़ाया। रीतिकालीन कविता को ऐसी भाषा की ज़रूरत थी जिसमें श्रृंगार जैसे भावों की अभिव्यक्ति के लिए अद्भुत कोमलता विद्यमान हो। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी अपने इतिहास ग्रंथ में लिखते हैं कि–"रीतिकाल भक्तिकाल का ही उत्तरकालीन श्रृंगारमंडन है।" (2) रीतिकाल से पहले, कृष्णभक्त कवियों की प्रेम-रसिक भावनाओं, निर्गुण संत कवियों की कोमल प्रेम-व्यंजनाओं तथा लौकिक प्रेम के द्वारा अलौकिक प्रेम कथाओं ने रीतिकालीन कवियों के लिए श्रृंगार वर्णन का द्वार पहले ही खोल दिया था। लेकिन भक्तिकाल में श्रृंगार वर्णन भक्ति के आवरण में व्यक्त हो रहा था। यहाँ बिल्कुल मर्यादित श्रृंगार का वर्णन देखने को मिलता है। 'रामचरितमानस' में सीता-राम का 'प्रथम-मिलन' के प्रसंग में देख सकते हैं– "देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदय सराहत बचनु न आवा।। / जनु बिरंचि सब निज निपुनाड़ी।।(3)

रीतिकाल में 'कविता करना' कवि का लक्ष्य हो गया क्योंकि वह इस काल में रचनाकार की आजीविका का आधार बनी। इससे पहले अलंकारों का प्रयोग आदिकालीन काव्यों तथा भक्तिकालीन काव्यों में भी देखने को मिलता है। 'रामचरितमानस' में तुलसीदास ने अलंकारों का सधा प्रयोग किया है। उदाहरण स्वरूप– "प्रभु मिलत अनुजहिं सोह मो पहिं जाति नहि उपमा कहीं। / जनु प्रेम अरु सिंगार तुनु धरि मिले बर सुषमा लही।(4)

प्रकृति का भावपूर्ण एवं स्वतंत्र चित्रण सूफियों के यहाँ मिलता है। इसके बाद, रामकाव्य और कृष्णकाव्य दोनों में प्रकृति की चर्चा उद्दीपन या अलंबन के रूप में की गई है। रीतिकालीन कवियों ने भी प्रकृति का चित्रण प्राय: उद्दीपन-आलंबन के रूप में किया है। उदाहरण के रूप में 'रामचरितमानस' में प्राकृति-चित्रण देख सकते हैं–

"घन घमंड नभ गरजत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा।। / दामिनी दमक रह न घन माही। खल कै प्रीति जथा थिर (5)

भक्तिकाल के परवर्ती होने के कारण रीतिकाल के कवियों में भक्ति का रुझान भी मिलता है। जिस प्रकार कबीर, सूर तथा तुलसी राम व कृष्ण की भक्ति करते हैं उसी प्रकार, रीतिकालीन कवियों ने भी राधा- कृष्ण की भक्ति की है। उदाहरण स्वरूप देख सकते हैं– "जो सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन। करउ अनुग्रह सोइ बुद्धि रासि सुभ गुण सदन।।"(6)

जिस प्रकार तुलसी, राम के इश्वरत्व तथा गुणों का बखान करते है, उसी प्रकार रीतिकालीन कवि अपने आश्रयदाता की वीरता को बखानते है। भूषण इस वीरगाथात्मक परंपरा के मूर्धन्य कवि है। भूषण का 'शिवराजभूषण' और पद्माकर का 'हिम्मतबहादुरविरुदावली' रीतिकाव्य परंपरा में वीर भावना की अभिव्यक्ति की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ है।

"इंद्र जिमि जंभ पर बाड़ब सुअंभ पर, / त्यों मलेच्छ वंश पर सेर शिवराज है।"(7)

चूँकि, तुलसीदास का उद्देश्य भक्ति करना था, लेकिन रीतिकालीन कवियों का उद्देश्य धन-उपार्जन करना था। 'रामचरितमानस' में तुलसी राम की गुणों का बखान ठीक उसी प्रकार करते हैं जैसे रीतिकालीन कवि अपने आश्रयदाता का करते है। उदाहरणस्वरूप– "अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथा जोग मिले सबहि कृपाला।। / कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नर नारि बिसोकी।।"(8)

जिस प्रकार, रहीम और वृन्द रीतिकाल में नीति-वचन कहा करते थे, उसी प्रकार 'रामचरितमानस' में जगह-जगह तुलसी ने नीति वचन कहे हैं। उदाहरण के लिए– " प्रीति विरोध समान सन करिउ नीति असि आहि, / जौ मृगपति बध मेहुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताही।।"(9)

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि रीतिकालीन कविता के अंकुर भक्तिकालीन काव्य अर्थात 'रामचरितमानस' में मिलता है। यह हिन्दी काव्य-परंपरा का एक स्वाभाविक चरण था। भक्ति आंदोलन से उपजे महान् भक्ति काव्य के उतार पर इस कविता का उन्मेष हुआ था। यह कविता भक्तिकाल के क्रोड में क्षयग्रस्त सामंती रसिकता के बीज का ही पल्लवन है। निष्क्रिय और निश्चित सामंती परिवेश के चंदन-परिवेश में उगने वाली यह कविता देह-उत्सवों एवं रूपासक्ति के सम्मोहन से अभिमंत्रित है। अपनी सीमित विषय वस्तु तथा तत्कालीन समाज एवं इतिहास के प्रति उदासीनता के कारण आधुनिक हिन्दी आलोचना में रीतिकालीन कविता का घोर तिरस्कार हुआ।

000

संदर्भ- 1)-बच्चन सिंह, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, अराधाकृष्ण प्रकाशन, पेज-191, 2)-डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, वाणी प्रकाशन, 3)-तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा-229, 4)तुलसीदास, रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दोहा-4, 5)-तुलसीदास, रामचरितमानस, किष्कन्धाकांड, दोहा-13, 6)-तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, दोहा -1, 7)-रामचंद्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, कमल प्रकाशन पेज-181, 8)-तुलसीदास, रामचरितमानस, उत्तरकाण्ड, दोहा-5 , 9)-तुलसीदास, रामचरितमानस, लंकाकांड, दोहा-23

(शोध आलेख)

जाम्भोजी की सबदवाणी में आदर्श जीवन -विधि

शोध लेखक : प्रवीण कुमार रामावत

भारतवर्ष के राजस्थान प्रांत की पहचान सूरों और सतवीरों की शौर्य -धारा के संवाहक के रूप में रही है। यहाँ का पहनावा -संस्कृति लोक देवताओं तथा जुंझारों की यशोगाथा के समानानंतर भक्तों -संतों के सर्वजन सुखाय लोक -मंगल स्वर से मुखरित रहा है। भाला और माला की इस सामाजिक और सास्कृतिक परम्पराओं के अध्येतओं में संत जाभोजी का स्थान महत्त्वपूर्ण है। जिन्होंनें तत्कालीन पथ भ्रष्ट समाज के लिए सुधार हेतु आदर्श स्थापित किया।

बिश्नोई सम्प्रदाय के प्रवर्तक संत जांभोजी बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। सत्य के प्रति निष्ठा और प्राणियों के प्रति करूणाभाव से प्रभावित होकर उन्होंनें ऐसी परम्पराओं का निर्माण किया जिन पर आगामी शताब्दियों में विशिष्ट सामाजिक -धार्मिक संस्कृति का विशाल वट वृक्ष उत्पन हुआ। संत जांभोजी के द्वारा मनुष्य और प्राणीमात्र के लिए जो मार्ग निदिष्ट किया था वो अत्यंत सरल और सहज था।

यथार्थ जीवन विधि- संत जांभोजी के अनुसार जीते जी मरकर जीवन से मुक्त होना प्रत्येंक जीवन साधना का परम लक्ष्य होना चाहिए। वे सबदवाणी में कहते है कि - भल मूल सींचो रे प्राणी, ज्यूं तरवर मेलत डालू। / जइया मूल न सींच्यों, तो जामण मरण बिगोवो। / अहनिंश करणी थीर न रहिबा, न बंच्या जम कालूँ। 1

अर्थात जैसे किसी पेड़ की जड़ में पानी देने से वह पूरा पेड़ जड़े, तना, टहनियाँ, पत्ते सब रस से भर कर तृप्त हो जाते है, उसी प्रकार केवल भगवान् विष्णु का सुमिरन करने से ही सारे देवता संतुष्ट और प्रसन्नचित हो जाते है। यह वो ही बिरला कर सकता है जो कर्म के प्रति अड़िग हो, सत्य के प्रति कटिबद्ध हो, विनम्रशील हो और जीवन जीने की विधि का ज्ञाता हो। इसी संदर्भ में वे वास्तविक मूल के सिंचन पर ज़ोर देते हैं जिससे जीवन रूपी वृक्ष की शाखाएँ पल्लिवित हो।

कथनी और करनी की एकरूपता- संत जांभोजी ने आदर्श ओर व्यवहार के सामंजस्य पर ज़ोर देते हुए सबदवाणी में कहा है कि- यूँ क्यूं भलो जे आप न फरिए, अवरां अफर फराइये। / यूँ क्यूँ भलो जे आप न डरिये, अवरां अडर डराइये। / यूँ क्यूँ भलों जे आप न मरिए, अवरां मारण धाइये। / पहलै किरिया आप कमाइये, तो औरान फरमाइये। 2

अर्थात संत जांभोजी कहते है कि शुभ कर्म करने का उपदेश देने का अधिकारी वही व्यक्ति हो सकता है जो पहले स्वयं शुभ कर्म करता है। उस इंसान का अच्छा भला कैसे कहा जा सकता है, जो स्वयं पंचविकारों से ग्रसित है और अवगुणों से युक्त है और वो उन्हें त्यागने हेतु उपदेशित करता है। उसे भी सज्जन नही कर सकते है जो स्वयं मौत से भयभीत होता है, ओर दूसरे को मारने हेतु तत्पर रहता है। यदि तुम पहले स्वयं अच्छे कर्म करोगे तो ही तुम्हें दूसरों को उपदेश देने का अधिकार प्राप्त होता है, अन्यथा तुम इस अधिकार से वंचित ही रहोगे।

कर्म के प्रति निष्ठा- संत जांभोजी ने मनुष्यको कर्मरत रहने हेतु उपदेशित किया है। उन्होनें स्वावलम्बन और श्रमयुक्त जीवन को बारम्बार प्रतिपादित किया है। सबदवाणी में उन्होनें कहा है कि - कण बिन कूकस रस बिन बाकसं। / बिन किरिया परिवारूँ।। 3 अर्थात बिना दानों की भूसी, बिना रस का गन्ना और अच्छे कर्मों से रहित परिवार निरर्थक होता है। जीविका उपार्जन हेतु कर्मशील बनना चाहिए।

भ्रामक साधना- संत जांभोजी ने भ्रामक साधना को निर्दिष्ट करते हुए तत्कालीन समाज में

प्रवीण कुमार रामावत
शोधार्थी (पीएच.डी.)
हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय,
पाटन, गुजरात

व्यापत कुप्रथाओं और रूढ़ियों की घोर भर्त्सना की है। मूर्तिपूजा और तीर्थाटन के संबंध में वे सबदवाणी में कहते है कि- ओइम धवणा धूजै पाहण पूजै। वैफरमाई ख़ुदाई।। / गुरू चेलै के पाए लागै। देखो लोग अन्यायी।। 4

अर्थात जो लोग गर्दन को हिला-हिला कर और काँपते हुए पत्थरों से निर्मित मूर्तियों की पूजा -अर्चना करते हैं, वे अज्ञान के अंधकार में डूबे हुए है। पत्थर की इबादत करना ईश्वर का आदेश कदापि नहीं है। ऐसा करना भगवान् की इच्छा के विरुद्ध है। हे अज्ञानियों! ज़रा चिंतन करो, यह कैसी विडम्बना है कि गुरु अपने शिष्य के चरणों की वन्दना कर रहा है ? ऐसा व्यवहार तो लोक मर्यादा के विपरीत है। जिसने मूर्ति को साकार रूप दिया है वो तो सही मायने में गुरु पद का अधिकारी है और मनुष्य के द्वारा गढ़ी हुई वह मूर्ति तो शिष्य की परिचायक है। जब इंसान अपने द्वारा गढ़ित मूर्ति की आराधना करता है, तो उसका आचरण तो अन्याय से युक्त है और हास्यापद भी है। संत जांभोजी ने हिन्दू समाज में प्रचलित मूर्तिपूजा की आलोचना की है।

संत जांभोजी की सबदवाणी और बिश्नोई सम्प्रदाय के उनतीस धर्म नियमों में आदर्श जीवन विधि का चित्रण मिलता है। जांभोजी महान् विचारक के साथ समाज सुधारक भी थे, जिन्होंने सभी धर्मों के सार का समन्वय कर सार्वभौम सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया।

000

सन्दर्भ- 1.जाम्भाणी सबदार्थ, श्रीकृष्ण विश्नोई, प्रकाशक, विश्नोई सेवक, नागौर, चतुर्थ संस्करण 2013, सबद 69, पृष्ठ संख्या 146, 2.जाम्भाणी सबदार्थ, श्रीकृष्ण विश्नोई, प्रकाशक, विश्नोई सेवक, नागौर, चतुर्थ संस्करण 2013, सबद 30, पृष्ठ संख्या 68, 3.जम्भवाणी सबदसागर, उदयराज खिलेरी, विश्नोई सेवक प्रकाशन, श्री बालाजी नागौर, राजस्थान, संस्करण 2018 सबद 77, पृष्ठ संख्या 143, 4.जम्भवाणी सबदसागर, उदयराज खिलेरी, विश्नोई सेवक प्रकाशन, श्री बालाजी नागौर, राजस्थान, संस्करण 2018 सबद 71, पृष्ठ संख्या 134

पुस्तक समीक्षा

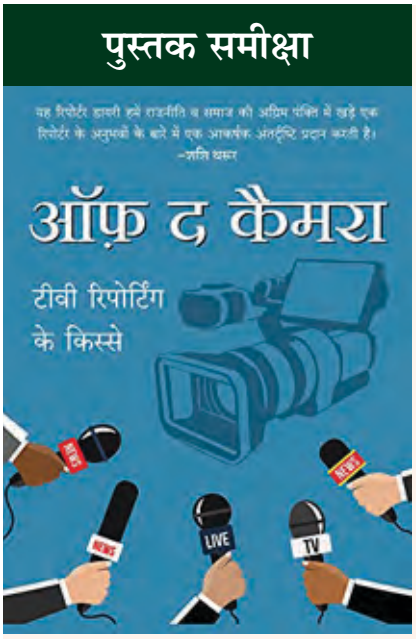

(रिपोर्ताज)

ऑफ़ द कैमरा

समीक्षक : राजेश बादल

लेखक : ब्रजेश राजपूत

प्रकाशक : मंजुल प्रकाशन, भोपाल

ब्रजेश राजपूत की पाँचवीं पुस्तक ऑफ़ द कैमरा पढ़ चुका हूँ। एक बार में। पहले पन्ने से आख़िरी पन्ने के अंतिम शब्द तक और उसके बाद बैक कवर पर बृजेश के परिचय तक। अब सोचता हूँ कि लिखूँ तो क्या लिखूँ। जब वर्तमान आपके सामने अतीत बनता है और फिल्म की शक्ल में इतिहास का दस्तावेज़ बनता है तो वह सिर्फ़ महसूस किया जा सकता है। उसे शब्दों में व्यक्त करना असंभव होता है। लेकिन भाई ब्रजेश ने इसे संभव कर दिखाया है। अपनी इस दो सौ चौदह पन्नों की गागर में वर्षों का सागर भरकर दिखाया है। पुस्तक के बहाने ब्रजेश की तारीफ़ लिखना मेरा मक़सद नहीं है और न ही मुझे कोई भ्रम है कि मेरी प्रशंसा से कोई पाठक प्रभावित हो सकता है। इसके बावजूद मैं ऑन रिकॉर्ड कहना चाहूँगा कि अपनी पत्रकारिता के पैंतालीस बरस में से चौंतीस साल टीवी माध्यम के साथ बिताने के बाद मैं भी उन घटनाओं की ऐसी बयानी नहीं कर सकता, जो ब्रजेश शायद चुटकी बजाते कर देते हैं।

वैसे तो इस पुस्तक का हर अध्याय मेरे लिए महत्त्वपूर्ण है। पर वर्षों तक साथी और मित्र रहे राजकुमार केसवानी पर लिखा शब्द चित्र श्रेष्ठतम है। बहुत से सवालों के जवाब राम के ही पास हैं का तो कहना ही क्या। राम पूजन जब कहता है कि लॉक डाउन में ज़िंदगी ही लॉक हो गई है, तो दिल काँप उठता है। मौत का कुँआ, कुंजी लाल चले गए, रोमी जी का जाना, टाइगर कथा और जब्बार ने नहीं मानी हार संवेदनशील लेखन का उत्कृष्ट नमूना है।

अलबत्ता ब्रजेश भाई को एक सलाह अवश्य देना चाहूँगा। सियासी लेखन थोड़ा कम कर दो। ज़िंदगी के विविध रंगों पर ही कलम आजमाओ। सियासी विषयों पर लेखन कभी-कभी क्रूर और वज्र जैसे कठोर शब्दों की माँग करता है, जो तुम्हारे जैसा नरम मिजाज़ का मालिक नहीं कर पाएगा। इसलिए यह मेरी हार्दिक इच्छा है कि तुम राजनीतिक विषयों को पुस्तकों का विषय नहीं बनाओ। पर चूँकि पत्रकारिता बिना सियासी लेखन के नहीं चलती तो उन विषयों पर एक्सक्लूसिव किताब लिखिए। ज़्यादा पसंद की जाएगी। आज के नेता हमारी ज़िंदगी के खलनायक हैं। अब वे लेखन के सुपात्र नहीं, कुपात्र हैं। जब आप उनकी तारीफ़ में कुछ लिखते हैं तो वह अतिरिक्त प्रशंसा दिखती है। भले ही वह सौ फ़ीसदी निरपेक्ष हो। मैं उम्मीद करूँगा कि तुम इस सलाह को अन्यथा नहीं लोगे। यह किताब को देखकर ही ख़रीदने और पढ़ने की ललक जगाता है। एक लेखक को और क्या चाहिए ?

000

राजेश बादल, ई-2/141, अरेरा कॉलोनी, भोपाल, मप्र 462016
मोबाइल- 9910068399, ईमेल- rstv.rajeshbadal@gmail.com

(शोध आलेख)

स्त्री विमर्श : एक आधुनिक परिदृश्य

शोध लेखक : वैष्णव विनिताकुमारी वी.

स्त्री विमर्श स्त्रियों के साथ हो रहे अत्याचार और कुण्ठा की उपज है। आधुनिक युग में बहुत तेज़ी से यह विचारधारा फैल रही है, जिसका एक कारण है जीवन के प्रति जागृकता। स्त्रियों को अत्याचार, आत्मनिर्भर, आत्मसम्मान, स्वावलम्बी आदि शब्दों का अर्थ समझ आने लगा है, और तभी से स्त्री ने इन के लिए लड़ना शुरू कर दिया है। स्त्री विमर्श की शुरूआत प्रथम कहानियों मे फिर उपन्यासों में देखने मिलती है जो स्त्री जीवन की यथार्थ ओर नग्न सच्चाई का पर्दाफाश करती है। साहित्य वह प्रथम साधन है जिसके जरिए स्त्री विमर्श को आगे बढ़ाने का प्रयास किया गया है।

आधुनिक समय में भी स्त्रियों की स्थिति देखने में तो बहत मज़बूत लगती है परन्तु सच्चाई कुछ और ही है। जब -जब स्त्री ख़ुद को आत्मनिर्भर और स्वावलम्बी समझने लगती है, तब - तब हमारा समाज उसे कमज़ोर और लाचार, असहाय होने का याद दिलाने का प्रयास करता है, उसे यह बतलाने का प्रयास निरन्तर किया जाता है कि एक पुरुष और परिवार के बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं है। हमारा समाज आज भले ही स्त्री-पुरुष समानता की बातें करे पर आज भी यह एक पुरुष प्रधान ही समाज है जिसमें स्त्री अपना जीवन अपनी शर्तों पर नहीं जी सकती। समाज स्त्री को कभी पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर नही बनने देता उसे संस्कारों और मर्यादा के नाम पर अपना आत्मसम्मान और अपनी इच्छाओं को मारने के लिए मजबूर किया जाता है। यह हालत आज भी पढ़ी -लिखी आत्मनिर्भर स्त्रियों की है। निचले तबके और गाँव देहात की स्त्रियों की स्थिति तो और भी बदत्तर है। शारीरिक ओर मानसिक हर रूप से उन पर अत्याचार किये जाते है, वे अभी तक आत्मनिर्भर और आत्मसम्मान से अपरिचित है।

नारी सशक्तिकरण उसकी शिक्षा, सुरक्षा, मानसिक एवं शारीरिक अत्याचार, कन्या -भ्रूण हत्या, दहेज और संबंध आज की नारी की समस्याएँ बढ़ने लगी हैं। वह आत्मनिर्भर बनने के लिए कदम तो बढ़ा रही है पर भूखे भेड़िये उनकी उन्नति में बाधा ड़ालने के लिए तैयार बैठे हैं। स्त्री अपनी अस्मिता को हर क्षेत्र में फैलाना चाहती है, परन्तु हर दिन उनकी हिम्मत और मर्यादा को तोड़ा जाता है। कभी बलात्कार कर के तो कभी दहेज के लिए जला के, कभी ससुराल से निकाल के। आज की स्त्री इस झूठी और दिखावटी ज़िंदगी से तंग आकर स्त्री विमर्श की ओर चल पड़ी है। उसे अपने जीवन में शांति और सम्मान चाहिए जिसके लिए वह संघर्षरत है। पारिवारिक एवं सामाजिक धरातल पर स्त्री को सदियों से अनेक समस्याओं से जूझना पड़ता है, उसे सवाल करने का अधिकार तक नहीं है। सुमन केशरी ने 'द्रोपदी' कविता में स्त्री की इसी दशा का वर्णन किया है। सदियों से स्त्री अपने अस्तित्व की तलाश कर रही है, उसकी तलाश कब ख़त्म होगी यह सवाल हर दिन उसे और दु:खी कर देता है, पहले वह एक बेटी, बहन फिर पत्नी, बहू, फिर माँ उसकी ज़िम्मेदारियों का अन्त शायद ही कभी होता है। उसकी ख़ुद की इच्छाओं का कोई मूल्य नहीं हो सकता। उसको संस्कारी, खानदानी, चरित्रवान तभी कहा जाता है, जब वह अपने इन सभी रिश्तों को पूर्ण रूप से निभा ले।

हिन्दी साहित्य में स्त्री-विमर्श सफलतापूर्ण निरूपण देखने मिलता है, जिसमें अनेक लेखिकाओं ने अपनी लेखनी चलाई है, कृष्णा सोबती की रचना 'मित्रो मरजानी' की "मित्रो',

वैष्णव विनिताकुमारी वी.
शोधार्थी (पीएच.डी.)
हेमचन्द्राचार्य उत्तर गुजरात विश्वविद्यालय,
पाटन, गुजरात

'सूरजमुखी के अंधेरे की' पीड़ित नायिका, सभी अपनी-अपनी तरह से साहसी, प्रगतिशील, अपनी अस्तित्व और समाज की नारी शिक्षित होती है, उस देश की प्रगति अधिक तेज़ी से होती है, यह यथार्थ चित्रण है। महात्मा फूले, ऐनी बेसेंट, इंदिरा गांधी इस प्रगति का यथार्थ है। नारी विमर्श का मुख्य उद्देश्य समाज में नारी को अपना स्थान दिलवाने का है। हिन्दी साहित्य में प्रेमचंद की कहानियों से लेकर आधुनिक युग में इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों तक स्त्री - विमर्श फैला हुआ है, जिसका एक ही ध्येय है स्त्रियों की स्थिति में सुधार लाना। आज की स्त्री पुरानी स्त्रियों की तुलना में अब अधिक जागृत और सजग हो गई है। वह अपने हक और सम्मान के लिए लड़ती है, संघर्ष करती है।

इस प्रकार इक्कीसवीं सदी में बीसवीं सदी का ही प्रभाव दिखाई देता है, आज़ादी के बाद का बदलता समाज, व्यवस्था, नारी जीवन, स्त्री मुक्ति आन्दोलन, नारी का शिक्षित होना। अन्याय के प्रति विद्रोह करना, समाज में अपना अस्तित्व बनाना, पुरुषों के बराबर काम करना। यह सब नारी प्रगति का अत्यन का साहित्य है। जो हमारे समाज का यथार्थ चित्रण करता है। जो स्त्री को मानवीय अधिकार दिलाने के लिए प्रयास है। नारी की आत्मप्रतिष्ठा, आत्मसम्मान जब तक समाज खुले दिमाग़ से स्वीकार नहीं करता, तब तक हमारे समाज में नारी- विमर्श का चिन्तन होता रहेगा।

इन सभी परिस्थितियों से निपटने के लिए समाज को सोचने और समझने की आवश्यकता है। वरना विवाह और परिवार से विश्वास उठ जाएगा। आज के युवाओं को और आगे आने वाली पीढ़ी को हम क्या सौंप रहे है, यह चिन्ता का विषय है।

000

संदर्भ- 1 बाधाओं के बावजूद नई औरत उषा महाजन संस्करण 2001, पृष्ठसंख्या 55, 2 स्त्री सरोकार आशारानी व्होरा 2002 संस्करण 2002, पृष्ठसंख्या 205, 3. Hindisarang.com

पुस्तक समीक्षा

(उपन्यास)

कर्बला दर कर्बला

समीक्षक : ब्रजेश राजपूत
लेखक : गौरीनाथ
प्रकाशक : अंतिका प्रकाशन, नई दिल्ली

कथाकार पत्रकार और प्रकाशक गौरीनाथ की नई किताब कर्बला दर कर्बला इन दोनों मुद्दों पर खरी उतरती है। बिहार के भागलपुर दंगों पर लिखा गया ये उपन्यास आपको शुरूआत में अटपटे विन्यास के चलते परेशान करेगा मगर उपन्यास जैसे-जैसे आगे बढ़ेगा आप जुड़ते जाएँगे और अंत आते-आते तो आप स्वयं बुरी तरह परेशान हो जाएँगे और सोचेंगे कि क्या ऐसे जघन्य कांड भी हमारे देश में कहीं हुए होंगे। दंगों के दौरान पल-पल की विभीषिका और उस दौरान हुयी सांप्रदायिक हिंसा का निर्मम चित्रण आपको अंदर तक हिला देगा।

ये उपन्यास भागलपुर जिले के गाँव से शुरू होता है और कुछ पन्नों के अंदर ही आपको हिंदू मुसलमान के बीच फैली नफ़रत का अहसास होने लगता है। ये नफ़रत और बढ़ जाती है जब उपन्यास गाँव से निकलकर भागलपुर शहर पहुँचता है। हालाँकि इस नफ़रत के बीच में शहर के कॉलेज और विश्वविद्यालय में पढ़ रहे युवाओं की दोस्ती और प्रेम की कहानियाँ भी साथ-साथ चलती रहती हैं। इन कहानियों की मदद से पाठक उस पूरे परिवेश को जानता समझता है। मगर एक ज़माने की सिल्क नगरी कही जाने वाले भागलपुर को जल्दी ही नज़र लग जाती है। और धीरे-धीरे जल उठता है शहर सांप्रदायिक दंगों की चपेट में। फिर दंगे भी ऐसे कि एक, दो, तीन दिन नहीं तीन महीने तक सुलगते रहे। कत्ल, हत्याएँ होती रही। लाशें कहीं पानी में तो कहीं तालाबों में फेंकी जाती रहीं।

लेखक गौरीनाथ ने इन दंगों को बेहद करीब से देखा है इसलिये उनके ब्यौरे एकदम वास्तविक लगते हैं। किसी तथ्य पर कोई उँगली ना उठाए इसलिये अख़बार पत्रिकाओं के ब्यौरे भी फुटनोट पर तारीखों के साथ दिये गए हैं। उपन्यास कहीं फिक्शन तो कहीं नॉन फिक्शन का अहसास पाठक को कराता रहता है। इसलिये उपन्यास में तारतम्यता कम है मगर चूँकि कथानक इतना दमदार है कि उपन्यास एक पल को नहीं छूटता। दंगों की पृष्ठभूमि में बुनी गई शिव और जरीना की प्रेम कहानी बेहद ख़ूबसूरत तरीके से कही गई है और ये कहानी पूरे वक्त उत्सुकता जगाये रहती है। लेखक ने पूरी कोशिश की है तीस साल बाद भी दंगों के नाम पर हुई जघन्य हत्याओं और आदमी के जंगलीपने की कहानी वास्तविक तरीके से सामने आये। फॉर्मेट को तोड़कर लिखे गया ये उपन्यास पाठक को अंदर तक हिला देता है और दूर तक याद किये जाने वाले इस उपन्यास की लेखक को बधाई।

000

ब्रजेश राजपूत, ई-109/30, शिवाजी नगर, भोपाल, 462016, मप्र
मोबाइल- 9425016025, ईमेल- brajeshrajputbhopal@gmail.com

(शोध आलेख)

वैश्वीकरण के संदर्भ में स्त्री जीवन की दास्तान- 'अन्या से अनन्या'

शोध लेखक : सेलीष्या जोसफ, शोध छात्रा
निर्मला कॉलेज मूवाट्टुपुषा
निर्देशक : डॉ.मेरली के पुन्नूस, सहायक प्राध्यापक, सेंट.स्टीफन्स कॉलेज, उषवूर

Selishya Joseph
Vellaramkallil House, Pandappilly PO, Muvattupuzha,
Ernakulam(Dist), Kerala,
Pin:686672
Mob: 9447543289, 8848237803
Email: celeeshiajsph@gmail.com

इक्कीसवीं शताब्दी में मानव जीवन मूल्यों से परे जाकर मूल्यहीन प्रतियोगिताओं की जंजाल में फँसता जा रहा है। दुनिया भर में ग्लोबल-विलेज केलिए पुकार लगाई जा रही है। पूरे विश्व को एक छतरी के नीचे लाने की परिकल्पना वैश्वीकरण की ही उपज है। वैश्वीकरण केवल आर्थिक आदान-प्रदान या क्रय-विक्रय तक सीमित नहीं है। 1990 के बाद वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, पारिस्थितिक आदि तमाम पहलुओं को प्रभावित करके मानव जीवन को अपने कब्ज़े में कर लिया है। यह केवल भौगोलिक दूरियों को मिटाकर दुनिया को एक छत के नीछे एकत्रित करने की प्रवृत्ति नहीं है। वैश्वीकरण एक ऐसी मान्यता है जो उदारीकरण, निजीकरण, आधुनिकतावाद, अंतर्राष्ट्रीयकरण, साम्राज्यवाद आदि अलग-अलग विचारधाराओं का समन्वित रूप है। इसका सीधा प्रभाव मानव के सोच-विचार पर पडता है। इसलिए यह दावा किया जाता है कि हर व्यक्ति, हर जगह स्वतंत्र है। इसका असर जितना पुरुष पर पड़ा है उतना स्त्री पर भी। आज स्त्री के वस्तुकरण की दर सबसे ऊपर है।

वैश्वीकरण के युग में स्त्रियों की उन्नति केलिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध हैं। रोज़गार के क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी बढ़ती जा रही है। इसलिए स्त्रियाँ आत्मनिर्भर होकर पुरुष की बराबरी करने लगी हैं। विहग दृष्टि से देखे तो उनकी सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। लेकिन विडंबनावश दुनिया की आबादी का 2/3 प्रतिशत स्त्रियाँ होते हुए भी विश्व संपत्ति का केवल एक प्रतिशत ही उनके हाथों में है। स्त्री और पुरुष के बीच वेतन में ज़मीन-आसमान का फर्क है। स्त्री को पर्याप्त वेतन नहीं मिलता। अर्थात उनके श्रम को कमतर करके आँका जाता है। प्रभा खेतान कहती हैं-"पैसे कम क्यों दिए जाते है? इसलिए नहीं कि वह कम काम जानती है या कम कर रही है या काम पर उसका दखल नहीं, बल्कि इसलिए कि वह स्त्री है"। स्त्रियाँ कमाती तो हैं लेकिन उसे अपनी मर्ज़ी से अपने लिए खर्च करने का अधिकार नहीं है। स्त्री को महज़ देह माननेवाली रणनीति उसकी स्थिति को बद से बदतर बनाती है। नई अर्थनीति स्त्री-पुरुष असमानता को बढ़ाने में विशेष भूमिका निभाती है। अमेरीका में स्त्री अपने पैरों पर खड़े होने का उदाहरण है 'अन्या से अनन्या' का पात्र मरील, जो मिसेस ड्यूपाट की वार्डरोब मैनेजर है। पति द्वारा उपेक्षित मरील बेटियों की देखभाल के लिए काम कर रही है। वह उस पति के लिए आँसू बहाना नहीं चाहती जो उसे अकेला छोड़ एक कम उम्र की लड़की के साथ भाग गया है। आइलिन भी अपने बुढ़ापे और बीमारी की हालत में कमाती है। वे लोग प्रभा को भी उसी प्रकार स्वावलंबी बनाना चाहते हैं। भारत लौटकर वह इसे साकार करती है परंतु उसके श्रम पर डॉ.सर्राफ अपना हक जमाते हैं। असलियत यह है कि वैश्वीकृत समाज स्त्री-श्रम का दोहन करता है।

वैश्वीकरण के परिवेश में विशेषकर बहुराष्ट्रीय कंपनियों की व्यापार-नीति के तहत स्त्री का वस्तुकरण एवं व्यवसायीकरण आम बात बन गई है। बाज़ारीकरण एवं मीडिया का हस्तक्षेप वैश्वीकृत दुनिया की सबसे बड़ी चुनौती है, जो मानव के सामाजिक व वैयक्तिक जीवन में विकृतियाँ पैदा करते हैं। डॉ. शिवप्रसाद शुक्ल के मत में "वैश्वीकरण में नारी एक उपभोग की सामग्री है। मांस के लज़ीज़ पिण्ड केलिए मँडराते कुत्ते जैसे साधु, राजनेता, प्रोफ़ेसर, अधिकारी एवं परिवार के लोग तो नारी की सुरक्षा कैसी?" मीडिया और बाज़ार की नीति ने उसे बिकाऊ बना दिया। इस संदर्भ में वैश्विक स्तर पर स्त्री की स्थिति को उकेरने का कार्य प्रभा खेतान ने अपनी रचनाओं में किया है। वे इस यथार्थ से अवगत हुईं कि पाश्चात्य स्त्री की हालत भारतीय स्त्री से भिन्न नहीं है। इसलिए उनके लेखन में वैश्वीकरण के दौर के स्त्री-जीवन का सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्ष उजागर हुआ है। प्रत्यक्ष में देखा जाए तो स्त्री के लिए नए-नए क्षेत्र खुलते जा रहे हैं, वहीं परोक्ष में वह जटिलताओं से घिरी हुई है। उनकी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' इन सच्चाइयों से पाठकों को रू-ब-रू कराती है। दिन-ब-दिन जड़ पकड़नेवाली बाज़ारी संस्कृति को प्रभा खेतान 'अन्या से अनन्या' में उघाडती है-"अब तो हम पर बाज़ार हावी होगा। कलकत्ते में टेलीविज़न आ गया, फ्रिज का दाम सस्ता हो गया, उपभोक्ता चीज़ों से पट जाएगा बाज़ार। रोज़ नयी दुकानें खुलती जा रही हैं।" विज्ञापन जगत् ने स्त्री देह को इतना कम महत्त्व दिया है कि कपड़े, जूते, साबुन, शैंपू से लेकर गाडी, फ्रिज और यहाँ तक कि पान-पराग, मसाले और शराब को बेचने केलिए स्त्री के अंग-प्रत्यंग का प्रदर्शन होता है। बिकाऊ माल से स्त्री देह का संबंध हो या न हो, उसका प्रदर्शन करने से उपभोक्ता-गण आकृष्ट होते हैं। फलत: स्त्री हमेशा केलिए वैश्वीकृत समाज में शोषित बनकर रह जाती हैं। देह बाज़ार और ब्यूटी पार्लर की संस्कृति तेज़ी से विकसित हो रहे हैं। मीडिया और विज्ञापनों में स्त्री की भोग्या छवि को उभारा जा रहा है। अत: वैश्वीकृत समाज में स्त्री भोक्ता भी है और भोग्या भी। नवपूँजीवाद ने स्त्री के यौन वस्तुकरण को किस हद तक बढावा दिया है इस तथ्य को प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा 'अन्या से अनन्या' में उद्घाटित करती हैं-"दस साल के दौरान एक भी ऐसी स्त्री से परिचय नहीं हुआ जो अपने आप से अपनी देह से, रूप-रंग से संतुष्ट हो। औरत इस हद तक वस्तु हो जाती है कि अपनी ही देह की एक-एक परत को दूसरों की नज़र से तौलती रहती है। मीडिया स्त्री देह की एक ख़ूबसूरत मगर असंभव सी तस्वीर को औरत के सामने आदर्श रूप में प्रस्तुत करता है, तथा स्त्री इस छवि को एक परम आदर्श एवं सुखकारी रूप में स्वीकार लेती है।" स्त्री की पहचान मात्र उसकी देह है। कुकुरमुत्ते के समान हर कहीं ब्यूटी पार्लर की तादाद बढ़ती जा रही है। समाज में पहले से स्त्री का रूप, आकार और चाल-चलन को लेकर विशेष अवधारणाएँ मौजूद हैं। सोलह लक्षणों से युक्त स्त्री को ही उत्तम माननेवाली मानसिकता भारत में भी प्रचलित थी। स्त्री-देह को परखने की इस रीति का भी आधुनिकीकरण हुआ है। पुरुष-वर्चस्ववादी विज्ञापन जगत् ने मॉडलों को दुनिया के सामने स्त्री का आदर्श रूप बनाकर पेश किया। उन लड़कियों के समान स्त्री के प्रत्येक अंग को ख़ूबसूरत बनाने का झूठा दिलासा देकर प्रसाधन सामग्रियों की बिक्री बढ़ाते हैं। भारत में भी पश्चिमीकरण के फलस्वरूप स्त्री इस उपभोक्ता-संस्कृति की शिकार हुई है।

'अन्या से अनन्या' में प्रभा खेतान को अमेरीका जाने का अवसर मिला। अमेरीका में प्रभा खेतान का परिचय ऐसी दुनिया से हुआ जो सुंदरता के नए प्रतिमानों को गढ़ता है। वहाँ जिन स्त्रियों से उसका संबंध है वे सब उपभोक्तावादी संस्कृति की उपज हैं। डॉक्टर ड्यूपाट के दफ्तर में प्रभा की मुलाकात आइलिन नाम की बुढ़िया सेक्रेटरी से होती है। आइलिन उन महिलाओं की श्रेणी में है जिन्हें प्रौद्योगिकीय परिवर्तन और बाज़ार की प्रक्रिया ने अपने अधीन कर लिया है। अधेड़ उम्र में भी उसकी साज-सज्जा, विशेषकर मस्कारा और काजल से भरी हुई दिपदिपाती नीली आँखें सौंदर्य की नई मान्यताओं को प्रस्तुत करती है। बाज़ार ने स्त्री की प्राइवेसी को खतम किया और उसे पब्लिक वस्तु बना दिया है।

स्त्रियों के मन में अपने देह, चेहरे, साज-सजावट पहनावे आदि के प्रति सजगता और सुरुची जागृत हुई है। विज्ञापन संस्कृति और विश्व सुंदरी प्रतियोगिताओं का विशेष योगदान इसके पीछे है। जापानी शिफॉन साड़ियाँ प्रभा खेतान की कमज़ोरी है। स्त्रियाँ अमेरिकी शिफॉन साड़ियों केलिए बाज़ार के सामने घुटने टेकती हैं। विज्ञापन जगत् ने मिसेस ड्यूपाट के मन में भी एक अदम्य लालसा पैदा की है कि वह दूसरों के मुकाबले विशिष्ट दिखाई दें। एलिज़ाबेथ ड्यूपाट के पूरे मौसम का वार्डरोब मैनेज करने में मरील को तीन महीने लगते हैं। नवपूँजीवाद ने आवश्यकता के अनुसार चीज़ों को लेने की ही नहीं बल्कि उससे भी बढ़कर चीज़ों का उपभोग करने की मानसिकता को पैदा किया है। इसका सबसे अधिक प्रभाव स्त्री पर ही पडता है। स्त्री खुद की हैसियत दिखाने केलिए ब्रांडेड चीज़ों का इस्तेमाल करती है। 'ब्रांड' एक मानसिकता बन चुकी है और स्त्री इसकी गुलाम है। मरील मिसेस ड्यूपाट केलिए नए फैशन के कपड़े बनाकर उसमें नकली लेबल लगाती है। क्योंकि लेबल तो स्टेटस सिम्बल है, रईसी होने का प्रतीक है। वैश्वीकरण के प्रभाव में सिर्फ कपड़े ही नहीं कॉस्मेटिक्स भी स्त्री के लिए ज़रूरी बन गये है। मरील ने हेलेना रूबिनस्टाइन की कॉस्मेटिक्स का नया शेड कार्ड खरीद लिया ताकि मिसेस डी की पीली त्वचा को आकर्षक बना सके। जूते, गहने, बैग जैसे हरेक वस्तु पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

अमेरीका में प्रभा ब्यूटी थेरैपी का कोर्स करती है। डायना त्रातस्की के बेवरली हिल हेल्थ क्लब में वैश्वीकृत दुनिया का एक ओर चेहरा प्रभा के सामने खुलता है। साइकिल, वाइब्रेशन बेल्ट, रोलर मशीन जैसे अलग-अलग मशीनों पर स्त्रियाँ व्यायाम करती हुई दिखाई देती हैं। 'अन्या से अनन्या' में लेखिका ऐसी स्त्रियों के बारे में बताती है-"अलग-

अलग कद, अलग-अलग शरीर के ढाँचे। सबको अपनी-अपनी देह से शिकायत। किसी की कमर चौड़ी हो गई, तो किसी के कूल्हे मोटे थे। कोई अपनी मोटी बाँहों से परेशान। देखनेवालों को चाहे विशेष बुरी न लगें, पर उन महिलाओं को अपने आपसे शिकायत थी। उनको अपना वजन जो घटाना था।" स्त्री की सुंदर त्वचा और उसके चकाचौंध में पूरी हॉलीवुड भी फँसी हुई है। क्लारा ब्राउन की मक्खन-सी त्वचा और गले के सुंदर हार प्रभा खेतान को आकर्षित करते हैं। स्त्री-देह के प्रति इस आकर्षण से ही तो सारा हॉलीवुड क्लारा के पीछे है। आधुनिक सभ्यता आदमी की दैहिक, मानसिक क्षमता को चरम पर ले जाने का दावा करता है। इस सिलसिले में आत्मकथा में प्रभा खेतान ने अपने विचार व्यक्त किये हैं-"अमेरीका कितना देहग्रस्त है यहाँ काम सीखते हुए पता चला, तकनीक कितनी आदमी की देह पर हावी होती जा रही है। यह भी समझ में आया, फिटनेस एक कल्ट बनता जा रहा है। एक पूरी उद्योग व्यवस्था इस पर खड़ी है।"

वैश्वीकरण के प्रभाव से स्त्री की सोच, चाल-चलन, और हरकतों में परिवर्तन हुआ है। लेकिन इन बाहरी हाव-भाव से भी स्त्री की स्थिति नहीं बदली है। लेखिका मानती है कि केवल पैंट पहनने और मेकअप करने से स्त्री सबल नहीं होती। उसके हिसाब से स्त्री की सारी स्वतंत्रता उसके आर्थिक आत्मनिर्भरता से जुडी है। ब्यूटी थेरैपी का कोर्स पूरा करके वह भारत लौटना चाहती है। अपने देश की स्त्रियों केलिए एक हेल्थ क्लब खोलना, आर्थिक रूप से संबल प्रदान करना ही उनका मकसद है। यहाँ लौटकर वे 'फिगरेट' नाम की संस्था खोलती हैं। चमड़े के व्यापार ने उनकी आर्थिक स्थिति को और भी मज़बूत किया। चमड़े से नए फैशन के बैग बनाने के बारे में भी वे सोचती हैं। डॉ.सर्राफ के साथ अमेरीका गईं तो दूकानों में टँगे फैशन बैग से वह प्रभावित होती हैं। रंग-बिरंगे और बैगों की विविधता देखकर वह बैग का निर्यात करने का निर्णय लेती है। एक सैम्पल बैग के लिए भी ढाई सौ डॉलर खर्च करने केलिए प्रभा तैयार हैं। उनको पता है कि उपभोक्तावादी संस्कृति में उनका व्यापार फैलेगा।

वैश्वीकरण मूल रूप में एक ऐसी परिकल्पना है जो पूरे विश्व को एक गाँव में तब्दील करता है। यहाँ एक ओर स्त्री-श्रम का दोहन है तो दूसरी ओर उसे गुलाम बनाने की साज़िश है। पर्यटन के साथ-साथ सेक्स व्यापार को भी बढ़ावा दिया जा रहा है। फिलहाल इस वैश्विक गाँव में स्त्री की उन्नति हो रही है या अवनति, इसका निर्णय करना ज़रूरी है। भारत जैसे विकासशील देशों की स्त्रियों केलिए दुगुनी चुनौती है। उन्हें पितृसत्तात्मक समाज के खिलाफ़ प्रतिरोध करना है साथ ही साथ उपभोक्तावादी बाज़ारी संस्कृति और पश्चिम की तकनीकी वर्चस्वता के दबाव को भी झेलना है। अत: सबसे पहले यह जाँचना होगा कि वैश्वीकृत समाज में स्त्री किस मुकाम पर खड़ी है? अस्मिता की तलाश में वह कहाँ तक सफल हुई है? क्या स्त्री की सही पहचान केलिए आर्थिक आत्मनिर्भरता काफी है? इन सवालों का जवाब प्रभा खेतान अपनी आत्मकथा के ज़रिए प्रस्तुत करने का प्रयास करती है। 'अन्या से अनन्या' द्वारा लेखिका इस सच्चाई को उकेरती हैं कि विश्व भर में स्त्री की स्थिति एक जैसी है। आइलिन के मत में दुनिया में ऐसा कोई कोना नहीं है जहाँ स्त्री के आँसू न गिरें। चकाचौंध में जीनेवाली अमेरीका की स्त्रियों की हालत भी भारतीय स्त्रियों जैसी ही है। लेखिका के अनुसार आगामी पीढ़ी के लिए दो विकल्प उपलब्ध हैं। इस दौर में खुद की पहचान बनाकर स्वाभिमान स्त्री बन सकती है या फिर विज्ञापन की गुलाम बनकर अपमानित हो सकती है।

000

संदर्भ- 1 प्रभा खेतान- भूमंडलीकरण ब्रांड संस्कृति और राष्ट्र- पृ. 218. 2 डॉ. शिव प्रसाद शुक्ल- वैश्वीकरण एवं हिंदी गद्य साहित्य- पृ.52, 3 प्रभा खेतान- अन्या से अनन्या- पृ.47, 4 प्रभा खेतान- अन्या से अनन्या- पृ.170, 5 प्रभा खेतान- अन्या से अनन्या- पृ.125, 6 प्रभा खेतान- अन्या से अनन्या- पृ.140 संख्या 205।

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : ज़ुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम : पंकज कुमार पुरोहित। पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 21 मार्च 2023

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित

(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

(शोध आलेख)

राकेश वत्स की कहानियों का अनुशीलन

शोध लेखक : मोनी
पीएच.डी. (शोधार्थी)
हिन्दी-विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

मोनी
सुपुत्री श्री धर्मपाल
गाँव व डाकघर- काकडोद (उदापति)
तहसील- उचाना, जिला- जीन्द
पिनकोड- 126115 (हरियाणा)
मोबाइल- 9050719512, 9991414965
ईमल- monisheokand512@gmail.com

हिन्दी साहित्य में समय-समय पर ऐसे युग-दृष्टा साहित्यकार जन्म लेते रहे हैं। जिन्होंने उत्कृष्ट साहित्य की सर्जना द्वारा सम्पूर्ण समाज और मानवता का हित करना ही अपने जीवन का ध्येय माना है। राकेश वत्स आधुनिक हिन्दी साहित्य के एक ऐसे ही प्रतिभाशाली और प्रबुद्ध रचनाकार है। राकेश वत्स जी हिन्दी के जाने माने कहानीकार हैं। हरियाणा के कहानीकारों में राकेश वत्स का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्होंने साहित्य की अनेक विधाओं पर अपनी लेखनी सफलतापूर्वक चलाई है। उनके हिन्दी कहानी साहित्य में मानव समाज के विविध स्वरूपों को चित्रित किया गया है। इनकी कहानियों में आदर्श के साथ-साथ यथार्थ के भी दर्शन होते हैं।

व्यक्ति, परिवार और समाज की पहली और लघुत्तम इकाई है। उसके चारों और रिश्ते-नाते, संबंध, समुदाय और सामाजिक मर्यादाओं की दलदल है। वह सामाजिक व्यवस्था का शिकार बना मानसिक यन्त्रणा झेलने पर विवश है। 'रिहाई' कहानी का नायक वीरेन्द्र जैन भी जब अनुराधा का भला करने में अपना सब कुछ खो बैठता है। इतना ही नहीं उसके हाथों श्यमालाल चावला की हत्या हो जाती है और वीरेन्द्र जैन को कैद हो जाती है। वहाँ फांसी का फंदा ठीक उसकी आँखों के सामने झूल रहा था, चिकनाहट से भीगे मजबूत मोटे रस्से का फंदा। लेकिन दूसरी यह रंग-बिरंगी, जगमगाती, सुहावनी दुनिया। इतनी अच्छी दुनिया को वह फंदे में गर्दन फंसाकर छोड़ना नहीं चाहता था। वह अपने ख्यालों में घिरा हुआ है। लेकिन वह अपनी सारी जायदाद के बदले जब अपनी रिहाई खरीद लेता है। तो बाहर आने पर उसको सब कुछ जैसे बदला हुआ नज़र आता है। परिवार का कोई भी सदस्य उसकी रिहाई का स्वागत नहीं करता।

राकेश वत्स जी ने सम्पन्न, वैभवशाली वर्ग की मानसिकता के साथ अभाव से ग्रसित लोगों के मनोबल को कहानी में बड़े ही सहज रूप से व्यंजित किया है। 'सावित्री' कहानी में जमादारिन की बहू सावित्री भी अनेक दु:खों को सहन करते हुए जीवन बिता रही है। वह सुसराल आते ही नरक भोगने को बाध्य है, कुछ अपनी बदहाली के चलते और ज़्यादा इसलिए कि वह एक 'कथित डायन' की बेटी है। लगातार पिटना और गालियाँ सुनकर दर-दर भटकना उसकी जिजीविषा है। सावित्री गर्भवती होती है परन्तु उसे इस अवस्था में भी भर पेट खाना नहीं मिलता। यही नहीं उसे हर रोज़ मालिक के घर काम करने भी आना पड़ता है। अगर उससे काम में कोई चूक हो जाती है या जल्दी-जल्दी में नहीं बना तो मालकिन की डाँट खानी पड़ती है। इस प्रकार आज के समाज में नारी का शोषण हो रहा है। शोषक कहीं पर समाज है तो कहीं पर स्वयं नारी ही नारी का शोषण कर रही है।

राकेश वत्स के अनुसार आज का दाम्पत्य जीवन आहत है। कहीं पति अपनी पत्नी पर अत्याचार करता है तो कहीं पत्नी अपने पति पर अत्याचार करती है। 'पुरुषपक्ष' कहानी एक अजीबोगरी दम्पत्ति की कहानी है, जिसमें पत्नी बसन्ती मोटी और कुरूप है। इसलिए उसकी शादी बनवारी जैसे मामूली क्लर्क से कर दी जाती है, जो उसे फूटी आँख नहीं भाता है। बनवारी अपनी पत्नी से बहुत दु:खी है। वह हमेशा बनवारी पर हुकूमत करती है। बसन्ती उसके साथ नौकरों सा व्यवहार करती घर का सारा काम करवाती और तीनों बच्चों का उत्तरदायित्व भी उसी पर था। बसन्ती उसे हर वक्त डराती रहती कि वह तेल छिड़कर अपने आपको जला लेगी। एक दिन जब बनवारी सुबह गली के नलके से पानी भर रहा था, पानी भरते-भरते वह थोड़ी देर के लिए चौड़ी सड़क पर टहलने लगता है। वापिस आकर देखता है कि बाल्टी गायब है बाल्टी चोरी हो जाने के डर से उसकी साँस भारी हो गई। उसे लगा उसके शरीर से खून सुतकर बाहर निकाल लिया गया है। वह घबरा जाता है और सोचता है क्या करें? "भाग जा, बनवारी लाल, कहीं भाग जा, नहीं तो समझ ले कि आज तुम्हारी खैर नहीं।" इस प्रकार कहानी में पति-पत्नी का आपसी संघर्ष चलता रहता है और आख़िर यह संघर्ष बिखराव में बदल जाता है।

आज के भौतिकवादी युग में परिवारों में विघटन हो रहा है। 'छुटकारा' कहानी में नायक विजय पुरानी परम्पराओं से पल्ला झाड़ना चाहता है। उसे परिवार के बाकि सदस्य, माँ-बहनें

सभी एक बोझ नज़र आते हैं। वह इन्हें अपनी खुशियों के रास्ते में बाधक मानता है। वह किसी के साथ संबंध नहीं रखना चाहता और न ही उसके मन में किसी के प्रति प्यार की भावना है, "संबंध तो प्यार के होते हैं माँ और अगर प्यार न हो तो ज़रूरतों के। तुम जानती हो कि तुम्हारी तीनों बेटियों को लेकर मेरे मन में दोनों ही बातें नहीं हैं।"

जब माँ उसे उसकी भांजी की शादी की बात बताती है और कहती है कि अब खर्चा सिर पर आ गया है। इस पर वह माँ को कहता है कि – इस 'मार्डन' ज़माने में इस प्रकार के पाखंडी और फिजूल के शोषण करवाने के चक्कर में कौन पड़े। ये तो सब पुराने ज़माने की बातें हैं। "बस ये ही वे रीति-रिवाज हैं जिन्होंने हमारे समाज को अपाहिज बना रखा है। पहले दहेज के लिए किसी से क़र्ज़ लो, फिर साल भर आते रहने वाले त्यौहारों के लिए कहीं से जुगाड़ जुड़ाओ, इसके बाद लड़की के बेटे-बेटियों की औलादें और फिर उनकी औलादें-हूँ, कितना पाखण्डवाद है इन सबमें और इस पाखण्ड की चक्की में पिस रही हैं ये माँ जैसी अनगिनत भोली-भोली औरतें। दूसरों का क्या है? किसी को घर में रुपया-पैसा आने में कोई तकलीफ होती है?" इस तरह विजय इन सबसे छुटकारा पाना चाहता है। परिवार के सदस्यों में परस्पर त्याग और दु:ख-सुख बाँटने की भावना, माता-पिता का आदर आदि का होना आवश्यक है। इसके अभाव में परिवारों में विघटन ही होता है।

राकेश वत्स जी ने अपनी कहानियों में आतंकवाद और हिंसा की घटनाओं का भी चित्रण किया है। उनकी 'कर्फ्यू' कहानी जो पंजाब के तीन-चार वर्षों के घटनाक्रम की दुखद परिणति को एक व्यक्ति के माध्यम से उजागर करती है। यह कहानी कर्फ्यू के आतंकवादी और अत्याचारपूर्ण माहौल को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है और यह दिखाती है कि ऐसे माहौल में हरमिंदर सिंह जैसा व्यक्ति कैसे अपने बीवी और बच्चों के खो जाने या बेमौत मारे जाने की चिन्ता से व्यथित होता हुआ अन्त में पुलिस वालों की क्रूरता और विवेकहीनता का शिकार हो जाता है। 'कर्फ्यू' कहानी में जो हालात हैं ऐसा नहीं है कि उनका सामना करने की ताकत किसी नवयुवक में नहीं है, बल्कि इस प्रकार के समाज के विरोधियों का सामना करने के लिए आज का नवयुवक जान पर खेलकर भी इन समाज विरोधी ताकतों का सामना करने को तैयार है। "हरामादो कमीनों! अंधेरे में छुपकर रोशनी जलाते हो। बाहर आकर देखो धरती नरक बन गई है। औरत से मर्द जुदा है, बच्चों से बाप जुदा हैं, खाना न मिलने से भूखे और पानी न मिलने से प्यासे मर रहे हैं सब लोग। तुम रोशनी जलाते हो दुनिया की आँखों में धूल झोंकते हो। बाहर निकलो और देखो, 1947 फिर वापस आ रहा है। हम उसे नहीं आने देंगे, नहीं आने देंगे, अपनी जान पर खेलकर भी..."

इसी श्रृंखला में 'लुटेरे' कहानी भी पंजाब समस्या से सम्बन्द्ध कथ्य पर आधारित है। इस कहानी में आतंकवाद के नाम पर लूट-पाट को दर्शाया गया है। इस वातावरण में ईमानदार और सही व्यक्ति को यातना सहनी पड़ती है और लुटेरे-हत्यारे साफ बच जाते हैं। कहानी का नायक गुरमेल नामक व्यक्ति जब आतंकवादियों की गोली के शिकार हुए लोगों को उठाने में लगा हुआ था तो उसी समय पुलिस वहाँ पहुँच जाती है। वे उस निर्दोष व्यक्ति को भी उन्हीं लुटेरों आतंकवादियों के गिरोह का मेंबर मानते हैं। यही नहीं वे पुलिस वाले गुरमेल को भी जबरदस्ती यह मनवाने का प्रयास कर रहे थे कि वह स्वयं कबूल कर ले कि वह भी आतंकवादी है।

राकेश वत्स जी ने इन कहानियों के माध्यम से प्रतिदिन हो रही लूट और मारकाट की भीतरी राजनीति का बख़ूबी चित्रण किया है।

धर्म के नाम पर लोग आज भी अंधविश्वासी बन रहे हैं। लोगों का धर्म में अन्धविश्वास ही उनके धन और समय का दुरुपयोग कर रहा है। 'अमावस्या' कहानी में भी अंधविश्वास की समस्या को चित्रित किया गया है। कहानी की नायिका अमावस्या का अन्तिम श्राद्ध को आहुति देने के लिए अपनी शादी की अन्तिम निशानी एक छोटे से गहने को गिरवी रख देती है ताकि अमावस्या के लिए कुछ चीज़ों का जुगाड़ बन जाए। वह सामर्थ्य ना होने पर भी इस दिन पंडित को न्यौते पर बुलाने के लिए काफी सामान जुटाती है। लेकिन अमावस्या के दिन तो पंडितों का भी अकाल पड़ जाता है कोई मिलता ही नहीं। ब्राह्मणों के न मिलने से बच्चे भी दु:खी हैं, क्योंकि उन्हें भी खाना तभी मिलेगा जब पंडित जी जीमकर चले जाएँगे, लेकिन बच्चों का तो भूख से बुरा हाल था खाना माँगते हैं और उन्हें फटकार पड़ती है, "चुप करता है कि नहीं। इस कमीने को पितरों के रोश का रत्तीभर भी फिकर नहीं। लगा है गधे की तरह रेंगने। एक दिन ज़रा देर से दमामा भर लेगा तो क्या जान निकल जाएगी? ख़बरदार जो आवाज़ निकाली। जब तक पंडित जी खाकर नहीं चले जाते, यही बैठा रह चुपचाप।"

'अमावस्या' कहानी निम्नमध्यवर्गीय परिवारों पर लिखी गई कहानी है। जो आर्थिक तंगी में दबे-पिसे लोगों की जड़ धर्मभावना पर आघात करती है। कहानी में दीनदयाल आर्थिक तंगी का जीवन गुज़ार रहा है; खाने के लिए भोजन की व्यवस्था भी वो सही समय पर नहीं कर पाते। लेकिन अंधविश्वास के कारण वो श्राद्ध आदि में पंडित को जीमाने के लिए अपने ब्याह की अन्तिम निशानी भी बेच डालते हैं। लेकिन सारा खाना वह पंडित हजम कर जाता है और परिवार के सदस्य खाली पानी से गुज़ारा करते हैं। जब पत्नी खाना न रहने की बात करती है और अठन्नी पति के हाथ पर रखकर उसे बाज़ार से कुछ खाने के लिए लाने को कहती है तो वह कहता है, "अरे नहीं, आज अमावस्या का बरत ही सही। कौन-सा आज काम पर गए हैं जो भूख लगेगी। छाती पर हथेली फिरायी और फिर इशारा करके कहा - एक गिलास पानी पिलाओ।"

अत: कहा जा सकता है कि राकेश वत्स ने अपनी कहानियों में यथार्थ को नवीन दिशाओं एवं सामाजिक सन्दर्भों को सही परिप्रेक्ष्य में खोजने का प्रयास किया है। उन्होंने अपने पात्रों के माध्यम से जीवन की वास्तविकता को प्रकट किया है।

000

(शोध आलेख)

21वीं सदी के कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध का यौनिक संदर्भ

शोध लेखक : प्रियंका श्रीवास्तव (शोधार्थी), लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी, फगवाड़ा, पंजाब
शोध निर्देशिका- डॉ. रीता सिंह असिस्टेंट प्रोफेसर, लवली प्रोफेशनल यूनिवर्सिटी

प्रियंका श्रीवास्तव
आनंद भवन, राजबारी पारा
जलपाईगुड़ी, पश्चिम बंगाल
पिन-735101
मोबाइल- 8927595844,
ईमेल- priyanka.42000541@lpu.in

शोध सार – हमारे समाज में हमेशा से स्त्री की यौनिकता को नियंत्रित करने के प्रयास होते रहे हैं। कभी धर्म ग्रंथ की दुहाई देकर परंपरा और नैतिकता के तकाज़ें पर, तो कभी स्त्री-देह के संदर्भ में रहस्य व डर पैदा करके। यही कारण है कि कृष्णा सोबती के यहाँ 'मित्रो' अपनी दैहिक ज़रूरत को महसूस करते हुए अपने देह में मछली-सी तड़प को स्वर तो देती है, पर सोबती अंतत: उसे घर की दहलीज़ पर वापस ले आती हैं, लेकिन बाद की स्त्रियों ने अपनी इस यौनिक ज़रूरत को न केवल पहचाना, बल्कि इसकी पूर्ति के लिए 70-80 के दशक में मृदुला गर्ग की नायिकाएँ आगे भी आई और आज 21वीं सदी में यौनिक शुचिता के सारे ढकोसले को धता बता कर इसकी तृप्ति के लिए प्राकृतिक के साथ कृत्रिम उपाय करने को भी स्त्रियाँ अग्रसर हैं। ऐसे में वैवाहिक संबंध में खुलापन, विवाहेत्तर संबंध, सहजीवन, जिगोलो से लेकर आत्मरति तक के प्रसंग कथा-साहित्य में गीताश्री, अल्पना मिश्र, जयश्री राय, महुआ माजी, सुश्री शरद सिंह, विभा रानी, वंदना राग, अलका सिन्हा, यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' के कथा साहित्य में विषय बने हैं, जिसके माध्यम से 21वीं सदी के कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध के यौनिक संदर्भ का विश्लेषण इस शोध आलेख का अभीष्ट है।

बीज शब्द – यौनिकता, परंपरा, नैतिकता, यौन-शुचिता, सामंती जकड़बंधियाँ, जिगोलो, आत्मरति, प्रतिरोध

मूल आलेख - प्रतिरोध अपनी स्थिति को बेहतर की दिशा में ले जाने के लिए किया जाने वाला एक ज़रूरी पहल है। स्त्री विमर्श के अंतर्गत स्त्री स्वतंत्रता की बात करें, तो स्त्री जीवन को सदियों से घर, परिवार, समाज की दुहाई देकर बाँधा जाता रहा है और इन सभी मामले में सबसे अधिक उसे बाँधा गया है, तो यौनिक अभिव्यक्ति को लेकर। इसी कारण स्त्री विमर्श की जब बात होती है और उसके अंतर्गत स्त्री स्वाधीनता की दिशा में देह संबंधी शुचिता की जो जकड़बंदी है, उससे मुक्ति ज़रूरी हो जाती है। राजेंद्र यादव लिखते भी हैं- "स्त्री-व्यक्तित्व को जिस एकमात्र जगह पर सबसे अधिक कुचला, तोड़ा और समाप्त किया गया है, वह है सेक्स। स्त्री को मर्यादा या नियंत्रण में रखने की जितनी भी तरकीबें और तरतीबें हैं, वे सब सेक्स को लेकर ही हैं। बचपन से ही उसकी इस प्रवृति को समाप्त करने के तरीके ईजाद किए जाते हैं। ...स्त्री-सेक्स वह विस्फोटक तत्व है, जिसे शास्त्र और शस्त्र सभी से नियंत्रित रखना है। फिर क्यों स्त्री-मुक्ति की मुहिम मुख्य रूप से इसी नैतिकता के विरोध से नहीं शुरू होनी चाहिए?....मुक्ति का असली मुद्दा सेक्स-मुक्ति है...."1 यौनिक संदर्भ केवल काम संबंध से ही जुड़ा मामला नहीं है, बल्कि देह के साथ मन की माँग स्त्री विमर्श का वादी सरोकार रहा है और स्त्रीवादी नारा भी 'मेरी देह के साथ मेरी मर्ज़ी' जैसे पदबंध से जुड़ा है। देह के साथ अर्थात् 'काम' के साथ 'प्रेम' का मामला इससे जुड़ गया है। मैनेजर पांडेय का मानना है कि सामंती जकड़बंदियों से मुक्ति का एकमात्र उपाय प्रेम की स्वाधीनता में है- "स्वतंत्रता की पहली कसौटी है प्रेम की स्वतंत्रता। सामंती सामाजिक व्यवस्थाओं में सबसे अधिक दमन प्रेम की भावना का किया जाता है। असल में प्रेम का जो संघर्ष है, वह इन सामंती-पूँजीवादी सामाजिक व्यवस्थाओं के विरुद्ध स्वतंत्र चेतना का संघर्ष है।"2 और स्त्री संदर्भ में यौनिक स्वतंत्रता प्रेम व काम पर उनकी मर्जी, उनका हस्तक्षेप, स्त्री प्रतिरोध का एक ज़रूरी आयाम बन गया। 21वीं सदी के हिन्दी कथा साहित्य में स्त्री-प्रतिरोध के यौनिक संदर्भ की अभिव्यक्ति गीताश्री की 'ताप', 'गोरिल्ला प्यार', अल्पना मिश्र की 'कथा के गैरज़रूरी प्रदेश में' जयश्री राय की 'औरत जो नदी है', 'देह के पार', यादवेंद्र शर्मा की 'पिछला दरवाज़ा', शरद सिंह की 'कस्बाई सिमोन', विभा रानी 'महुआ मदन रस टपके रे' अलका सिंह की 'जी-मेल एक्सप्रेस' जैसी रचनाओं में हुई

है। जिसे आधार बना वैवाहिक जीवन, विवाहेत्तर संबंध, सहजीवन, जिगोल व सेल्फ-सेक्स के मामले को सामने रख, स्त्री-प्रतिरोध के यौनिक संदर्भ को अभिव्यक्ति दी गई है।

1. वैवाहिक जीवन में स्त्री का यौनिक प्रतिरोध -

वैवाहिक जीवन में प्रेम रहित काम संबंध स्त्री संदर्भ में अपने चलन में हिन्दी कथा साहित्य में विषय रहा है और स्त्री द्वारा पत्नी की भूमिका में इसका निर्वहन भी बख़ूबी होते रहा है। 21वीं सदी के कथा साहित्य में वैवाहिक जीवन में अपनी यौनिक अभिव्यक्ति को स्त्रियाँ महत्त्व दे रही हैं, लेकिन उसमें प्रेम रहित दैहिक निकटता का प्रतिरोधी स्वर मजबूत हुआ है। अल्पना मिश्र की कहानी 'कथा के गैरज़रूरी प्रदेश में' अरुंधति अपने यौनिकता को महत्त्व देती है। अल्पना मिश्र अरुंधति के संदर्भ में लिखती हैं- "देह की भयानक इच्छा क्यों जागती है उनमें भी। इच्छा होती है कोई प्यार से उन्हें देखे। आँखें, आँखों से मिलकर ठहर जाएँ। कोई, जो धीरे से छुए, धीरे-से उनकी नाक पर अपने होंठ रख दे, उनकी गर्दन, उनके कंधे, उनकी पीठ, उनकी देह के एक-एक रोम-छिद्र पर....किसी की गर्म साँस सिहरा जाए। कोई जो देर तक, बहुत देर तक उनके साथ हो...जाने कैसी है देह के भीतर उगी प्रेम की यह पागल इच्छा। "3 अर्थात् अपनी यौनिकता को महत्त्व दे रही है, लेकिन पति के प्रेम रहित दैहिक आचरण को देखते हुए प्रतिरोधी हो सोचती है-"मानो दो समानांतर रेखाएँ हों, जो पास आने की कोशिश में बगल से गुज़र जाती हैं, जिससे जुड़कर भी देह जुड़ नहीं पाती। ....जगत् के छूते ही उसके मन के सारे तार टूट जाते हैं, सारी इच्छाएँ मर जाती हैं। .... बस यह आदमी नहीं। 4 यादवेंद्र शर्मा चंद्र की कहानी 'पिछला दरवाज़ा' में पत्नी अपनी यौनिकता को जीना चाहती है, पर प्रेम के साथ- "मैं जो बचपन से एक ऐसे पुरुष की कल्पना करती आई हूँ कि जो पुरुष मेरे जीवन में आएगा, वह मेरे अंतस की कलियाँ और फूलों को अपनी भावनाओं से स्पर्श करेगा।"5 और भावना रहित पति के दैहिक आचरण को देख प्रतिरोधी हो उठती है-"यह आदमी मेरा पति नहीं, एक गिद्ध है। "6 गीताश्री की कहानी 'ताप' में पत्नी, पति के प्रेम रहित दैहिक निकटता के प्रतिरोध में अपने स्वर को मजबूत करती हुई अपनी बेटी से कहती है-"मैं थक गई हूँ... सारी ज़िंदगी एक ही काम करते-करते.... मुझसे ड्यूटी नहीं निभाई जाती। "7 इस प्रकार 21वीं सदी की नायिकाएँ वैवाहिक जीवन में अपनी यौनिक इच्छा की अभिव्यक्ति भी कर रही है और प्रेम रहित दैहिकता के विरोध में भी खड़ी है। अपनी यौनिकता को वैवाहिक जीवन में मानवीय धरातल पर जीने के लिए संकल्पित है।

2. विवाहेतर संबंध में यौनिक प्रतिरोध –

विवाहेतर संबंध अपने आप में स्वेच्छा से प्रेम और काम को जीने का मामला है और आज कानूनी प्रावधान के तहत 'एडल्ट्री' को अपराध की श्रेणी से भी बाहर कर दिया गया है। ऐसे में प्रेम के साथ ही यौनिकता को जीने व यौनिकता के साथ प्रेम को जीने के मामले को लेकर विवाहेतर संबंध की और स्त्री का बढ़ना अपने आप में प्रतिरोध का प्रतिमान है। 21वीं सदी के कथा साहित्य में महुआ माजी की 'चंद्रबिंदु', कमल किशोर की कहानी 'सखी सहेली', मधु कांकरिया की कहानी 'बीतते हुए' जैसी रचनाएँ इस दिशा में उल्लेखनीय हैं। विपिन चौधरी की कहानी 'साँप' में कथानायिका कनक के सामने रजनी अपनी यौनिकता को महत्त्व देते हुए कहती है-"मैं तो कई बार धीरेन से कहती भी आई हूँ कि मैं अपने पति से सेटिस्फाइड नहीं हुई, तो तुम्हारे पास आ जाऊँगी।"8 अर्थात् यौनिक असंतुष्टि को लेकर जीने की दिशा में अब स्त्रियाँ ठहरी हुई नहीं है, उसका विकल्प चुन रही है। रूढ़ नैतिकता का प्रतिरोध रच रही हैं। महुआ माजी की चर्चित कहानी 'चंद्रबिंदु' में वैवाहिक जीवन में पति से अतृप्त अनुकृति विवाहेतर की ओर प्रस्थान करती है। कथानायिका कहती है-"मुझे आपका स्पर्श चाहिए तन-मन दोनों का स्पर्श... आत्मीयता और दीवानगी भरा स्पर्श! पाना चाहती हूँ मैं आपको एक बार! पूरी तरह से...देह से गुज़रकर मन में। "9 'सखी सहेली' की शीला विवाह में रहते हुए समलैंगिकता की ओर बढ़ती है, तो अपने काम पूर्ति के लिए। पति के सामने अपनी काम की इच्छा को रखने पर उपेक्षा सहनी पड़ती है। पति कहता है- "बासी रोटी! अरे, दस दिन आदमी छप्पन भोग भी खा ले, तो ग्यारहवें दिन उसको देखकर उबकाई आने लगती है। ग्यारह साल हो गए हमारी शादी को। तेरे साथ नहीं सो सकता मैं। समझी तू।"10 ऐसे में अपनी यौनिकता की पूर्ति के लिए विवाहेत्तर की ओर बढ़ती है। प्रेम रहित वैवाहिक जीवन के विरोध में 'बीतते हुए' की मणिदीपा है, जो कहती है- "मैं और मेरे पति.... जैसे दो ध्रुव.."11 प्रेम युक्त, काम को महत्त्व देते हुए अपना दर्शन बनाती है और प्रेमी इंद्रजीत की ओर बढ़ती है। इस प्रकार विवाहेतर संबंध में यौनिक इच्छा को अपनी मर्जी से जीकर नायिकाएँ अपना प्रतिरोध रचती है।

3. सहजीवन में यौनिक प्रतिरोध –

स्त्री के यौनिक प्रतिरोध का एक मामला सहजीवन से जुड़ा है। जिसमें विवाह का बंधन नहीं, विवाहेतर का अपराध बोध नहीं, बल्कि स्वतंत्र रूप में प्रेम-काम को जीने का मामला है। 'गोरिल्ला प्यार', 'महुआ मदन रस टपके रे', 'कस्बाई सिमोन', 'औरत जो नदी है' जैसी रचना में इसकी अभिव्यक्ति हुई है। 'महुआ मदन रस टपके रे' की महुआ यौनिक ज़रूरत को पूरा करने के लिए विवाह जैसे रूढ़िवादी बंधन को स्वीकारने से इंकार करती है और कहती है-"मेरी समझ में नहीं आता कि इस नॉर्मल और नेचुरल नीड को पूरा करने के लिए शादी क्यों की जाए? नो मोरल... वोरल...बुलशिट, आई डोंट बिलीव..।12 पर यौनिकता को महत्त्व देती है और इसलिए मदन के साथ लिव-इन में पूर्ण यौनिक सुख को प्राप्त करती है। साफ कहती है- "यस! आई लाईक पॉर्न!... जब मैं मार्क्स, धूमिल, गोरख पांडे, राजेंद्र यादव....को पढ़ती हूँ, निशांत, अंकुर, चक दे इंडिया, थ्री इडियट्स देखती हूँ, एट द सेम टाइम, मेरी इच्छा होती है पॉर्न पढ़ने की, ब्लू फिल्म देखने की। ग़लत क्या है इसमें?13 गीताश्री की 'गोरिल्ला प्यार'

की अर्पिता भी विवाह को बंधन मानती है, पर अपने यौनिक संतुष्टि को महत्त्व देती है। इंद्र के साथ लिव-इन में रहती है और इसे 'समथिंग थ्रीलिंग' मानती हैं। 'कस्बाई सिमोन' में सुगंधा लिव-इन के बारे में सोचती है-"इसमें मुझे अपनी स्वतंत्रता दिखाई दी, मैं जब चाहे तब मुक्त हो सकती थी।"14 'औरत जो नदी है' में दामिनी भी सहजीवन को चुनती है, तो विवाह का विरोध पर 'काम' को जीने की अपनी इच्छा के तहत। इस प्रकार सहजीवन को चुन ये नायिकाएँ वैवाहिक जीवन की सामंती जकड़बंदियों के विरोध में अपने प्रतिरोध को रचती हुई अपनी कामुकता को स्वर दे रही है।

4. जिगोलो व आत्मरति यौनिक प्रतिरोध का नया संदर्भ - स्त्री-प्रतिरोध के यौनिक संदर्भ में जो नया मामला 21वीं सदी के कथा साहित्य में विशेषकर नज़र आ रहा है, वह 'जिगोलो' और 'सेल्फ सेक्स' को लेकर है। अशफ़ाक़ अहमद लिखते हैं- " शारीरिक ज़रूरतों के मारे सिर्फ मर्द ही नहीं होते, बल्कि औरतें भी होती है, दोनों की परिस्थितियों में फर्क भी हो सकता है और भी समान भी हो सकती हैं, लेकिन यह तय है कि अब अपनी इच्छाओं का दमन करके वे सक्षम औरतें घुट-घुट कर जीना नहीं चाहतीं और उन्हें खरीदकर वह खुशी हासिल कर लेने की कला सीख ली है।"15 जयश्री राय की कहानी 'देह के पार', अलका सिन्हा का उपन्यास ' जी- मेल एक्सप्रेस' में पुरुष खरीदकर अपनी यौनिक तृप्ति का मामला है। जी-मेल एक्सप्रेस में धमेजा कहता है-"इंसान के शरीर को भूख भी लगती है और प्यास भी, ...भूख तो भूख है, इसमें पुरुष भूख और स्त्री भूख का क्या मतलब है। यह तो हो सकता है कि पुरुष की भूख जहाँ चार रोटी खाकर मिटती है। वहीं स्त्री की भूख दो रोटी से मिट जाती है, मगर भूख तो दोनों को लगती है।"16 और इस भूख की पूर्ति के लिए सक्षम महिला द्वारा पुरुष खरीदकर पूर्ति हो रही है, क्योंकि इसमें विवाहेतर का खतरा नहीं, ना ही कमिटमेंट का डर है और यौनिकता को जीने का भरपूर अवसर है।

आत्मरति द्वारा भी यौनिक तृप्ति का मामला 21वीं सदी के साहित्य में अल्पना मिश्र की कहानी 'कथा के गैरज़रूरी प्रदेश में', वंदना राग की 'छाया युद्ध' जैसी रचनाओं में हुई है।

'कथा के गैर ज़रूरी प्रदेश में' अरुंधती अपने अंदर उठती कामुक इच्छा को लेकर सोचती है- "अगर इस ज़रूरत को झपट लेने की बलबती, आकांक्षा पैर फैलाने लगे, तो सबसे पहले उसी की नज़र में गिर जाएँगी, जिसके प्रति देह का आकर्षण और प्यार हिलोरें उठ रही हैं। सारी शिक्षा-दीक्षा, संस्कार सब व्यर्थ चल जाएँगे। मिलेगा दुत्कार।"17 परंतु परंपरा, नैतिकता, शिक्षा के नाम पर इच्छा को दबा नहीं लेती, बल्कि सोलो-सेक्स करती है। लेखिका लिखती है- "जाने कब उसने अपना ब्लाउज उतारा, जाने कब अपने को प्यार करते अपने में डूब गई - गला, कंधा, पेट, जाँघे...जाने किस आवेग में अपने हाथों अपने को ज़ोर से भींच लिया। .... सोलो सेक्स।"18 'छाया युद्ध' में शायना भी पति की उपेक्षा के कारण बाथरूम में आईने के सामने जिस प्रकार खड़ी होती है, लेखिका वहाँ सोलो सेक्स का संकेत देती है। प्रियंका ओम की कहानी 'विष्णु ही शिव है' में भी आत्मरति का प्रसंग है। इस प्रकार 21वीं सदी का साहित्य बतलाता है कि अपनी यौनिक इच्छा की अभिव्यक्ति स्त्री अपने हाथ में ले रही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 21वीं सदी के कथा साहित्य में स्त्री अपनी यौनिक इच्छा को परंपरा, नैतिकता, मूल्य के नाम पर दबाकर नहीं रख रही, बल्कि नैतिकता के पुराने मापदंड से निकलकर वैवाहिक हो, विवाहेतर हो, सह-जीवन, जिगोलो, आत्मरति का मामला, इसकी पूर्ति को ज़रूरी मान रही है और इसके लिए आगे बढ़ रही है, इस प्रकार यौनिकता पर पितृसत्तात्मक नियंत्रण के प्रतिरोध में आज़ादी का उत्सव मना रही है। स्त्री-प्रतिरोध का यौनिक संदर्भ अपने आप में नैतिकता व मूल्य निर्मित रूढ़िग्रस्त समाज, जो स्त्री को बाँधने में ही अपना पुरुषार्थ समझता है, उस जकड़बंदियों के विरोध की दिशा में ज़रूरी प्रतिरोध है।

000

संदर्भ-

1. यादव, राजेन्द्र. आदमी की निगाह में औरत, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2006, पृष्ठ- 43-44, 2. पांडेय, मैनेजर. "जिस समाज में स्त्री की अस्मिता नहीं, वहाँ प्रेम कैसे होगा?", आशय पत्रिका, वर्ष 4, अंक-5-6, (संयुकतांक) सितंबर 2005-2006, पृष्ठ 20, 3. मिश्र, अल्पना. 'कथा के गैरज़रूरी प्रदेश में" स्वप्न में वसंत, राकेश बिहारी (संपादक), शिल्पायन प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ-38, 4. वही, 38, 5. चंद्र, यादवेन्द्र शर्मा. "पिछला दरवाज़ा", वाह! किन्नी, वाह, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2009, पृष्ठ-126, 6 वही, 122, 7. गीताश्री, "ताप", प्रार्थना के बाहर और अन्य कहानियाँ, वाणी प्रकाशन, 2013 पृष्ठ-91, 8. चौधरी, विपिन, साँप, कामुकता का उत्सव, सम्पादन जयंती रंगनाथन, वाणी प्रकाशन, 2020, पृष्ठ-147-148, 9. माजी, महुआ. 'चन्द्रबिन्दु" स्वप्न में वसंत, राकेश बिहारी (संपादक), शिल्पायन प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ-63, 10. कुमार, कमल. "सखी-सहेली", कामुकता का उत्सव, सम्पादन जयंती रंगनाथन, वाणी प्रकाशन, 2020, पृष्ठ-117, 11. कांकरिया, मधु. "बीतते हुए", बीतते हुए कहानी संग्रह, राजकमल प्रकाशन, दूसरा संस्करण 2017. पृष्ठ-75, 12. रानी, विभा. 'महुआ मदन रस टपके रे' स्वप्न में वसंत, राकेश बिहारी(संपादक), शिल्पायन प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ-177, 13. वही, 176, 14. सिंह, सुश्री शरद, कस्बाई सिमोन, सामयिक पेपरबैक, संस्करण 2017, पृष्ठ-31, 15. अहमद, अशफाक. जूनियर जिगोलो, ग्रडियस पब्लिशिंग हाउस, प्रथम संस्कार 2020. भूमिका-1, 16. सिन्हा, अलका. जी-मेल एक्सप्रेस, किताबघर प्रकाशन, संस्करण 2018. पृष्ठ-139, 17. मिश्र, अल्पना."कथा के गैरज़रूरी प्रदेश में" स्वप्न में वसंत, राकेश बिहारी (संपादक), शिल्पायन प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2014, पृष्ठ-39, 18. वही, 39

(शोध आलेख)

पद्मा शर्मा की कहानियों में सामाजिक सरोकार

शोध लेखक : कृष्ण कुमार थापक
शोधार्थी
रविंद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय
शोध निर्देशक : डॉ संगीता पाठक
प्रोफेसर
रविंद्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय

शोध-सार : सुप्रसिद्ध कथाकार पद्मा शर्मा के साहित्य में सामाजिक सरोकारों का चित्रण हुआ है। उन्होंने अपनी कहानियों में जीवन के अनुभव को सहज और ख़ास ढंग से उकेरा है तथा समाज में व्याप्त समस्याओं को लेखनी का आधार बनाया है। पद्मा शर्मा की कहानियाँ सघन व्यापकता समेटे हुए राजनैतिक, आर्थिक और नैतिक मूल्यों को उनके बहुपक्षीय बिंदुओं की विडम्बना से उपजी द्वंद्वात्मकता के तनाव को प्रकट करती है। उनकी कहानियाँ जीवन के यथार्थ को बड़ी गहराई से रूपायित करती हैं और जीवन की विसंगतियों का समग्र अवलोकन करते हुए हृदय विदारक चित्रण करती हैं। पद्मा शर्मा की कहानियाँ शोषण, उत्पीड़न, दमन एवं सामाजिक, आर्थिक विसंगतियों के ख़िलाफ़ सार्थक विरोध करते हुए चेतना से पूर्ण कहानियों की सर्जना करती है और समाज के बदलते परिदृश्य के साथ समाज में निहित सामाजिक सरोकार यथार्थ रूप में उनकी कहानियों में अभिव्यक्त हुए है। नवीन कथ्य एवं शिल्प उनकी कहानियों की अन्यतम विशेषता है। इनकी कहानियाँ भाव वस्तु एवं कला को एक नया आयाम देती है।

बीज शब्द : पद्मा शर्मा, सामाजिक सरोकार, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, पुनर्विवाह, संयुक्त परिवार, आर्थिक संसाधन, कुपोषण, वेश्यावृत्ति।

मूल आलेख : पद्मा शर्मा ने कहानियों में राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, लालफीताशाही का घिनौना रूप, निम्नवर्गीय, दलित शोषित व उनका आर्थिक संघर्ष प्रमाणिकता के साथ प्रस्तुत किया है तथा उनकी कहानियों में एक ऐसे समाज का यथार्थ चित्रण मिलता है जिन्हें प्राय: अन्य कहानीकारों ने अनदेखा कर दिया है।

वर्तमान में शासन और प्रशासन द्वारा व्यापक स्तर पर भुखमरी और ग़रीबी मिटाने से संबंधित कई योजनाओं पर पानी की तरह पैसा बहाया जा रहा है। इसके बावजूद भी इनसे लाभान्वित होने वालों की संख्या बहुत कम है। भारत में एक तिहाई से ज़्यादा बच्चे अभी भी कुपोषण का शिकार हो रहे हैं। मगर फिर भी इस पर सबसे कम ध्यान दिया गया है इसी गम्भीर समस्या की ओर ध्यानाकर्षण करने के लिए पद्मा शर्मा ने 'मजमा' कहानी लिखी है। जिसमें बताया है कि सरकारी इंतजाम केवल दिखावे वर्कर हैं। जबकि ज़मीनी हकीकत इन से कोसों दूर है कमलेश सोचता है कि ""साबुन से ही कुपोषण का सफाया होगा..... और.... हाथ धोने के बाद वह खाएँगे क्या? और जब खाएँगे ही नहीं तो शौचालय का क्या महत्त्व?.... आँगनबाड़ी में ही भोजन नहीं मिल रहा तो सामुदायिक केंद्र में देखभाल कैसे होगी?..... इन जगहों पर काम करने वाले ईमानदारी से काम नहीं करते। कहीं भूख है तो कहीं खाने की बर्बादी है।"1

हमारे भारत देश में जब से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का आगमन हुआ है तब से ही भारतीय महिलाओं को कामकाजी बना दिया है और महिलाएँ भारत के वर्तमान सामाजिक, आर्थिक परिदृश्य को दृढ़ करने में अहम भूमिका अदा करती हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को व्यवसाय की प्रगति के लिए ऐसी लड़कियाँ चाहिए जो दिखने में सुंदर और विदेशी भाषाओं को बोल सकें। क्योंकि बहुराष्ट्रीय कंपनियों के मालिकों का सूचना है कि वे अपनी सुंदरता और मधुर वाणी से ग्राहक को लुभा सकें जिससे ग्राहक आकर्षित होकर अधिक से अधिक उनकी वस्तुओं का क्रय करें। पद्मा शर्मा की कहानी 'विषकन्या' में स्त्री देह के बाज़ारीकरण को प्रस्तुत किया गया है। "स्त्री के मानवीय सौंदर्य की सहज अनदेखी हो रही है। उसे सिर्फ देह तक सीमित कर दिया गया

कृष्ण कुमार थापक
वार्ड क्रमांक 08, पुराना थाना रोड
गोहद
जिला भिंड मप्र 477116
मोबाइल- 85170-24249
ईमेल- krishnathapak1988@gmail.com

है। स्त्री की देह का बाज़ार द्वारा यह उपनिवेशीकरण है। इस उपनिवेश में बाज़ार कुछ और नहीं मानता। मीडिया से हर एक बात प्रक्षेपित किए जा रहे संदेश का मूल है कि देह ही सर्वोपरि है। विज्ञापनों में भी यही बात साफतौर पर देखी जा सकती है कि उनमें मानवीय संबंधों का खुलेआम बाज़ारीकरण हो रहा है।"2

पद्मा शर्मा ने अपनी कहानी 'मॉल' में आर्थिक अर्जन में संलिप्त स्त्रियाँ पुरुषों के साथ-साथ कंधे से कंधा मिलाते नज़र आती हैं। महिलाएँ रोज़गार की तलाश में जब घर की चहारदीवारी से बाहर निकलती हैं, तो उन्हें नौकरी करते समय कई तरह की चुनौतियाँ और समस्याओं का सामना करना पड़ता है। वर्तमान में हम कितने भी प्रचार प्रसार कर ले लेकिन स्वयं के स्वाभिमान के लिए सब कुछ त्याग देना चाहिए लेकिन जब बात परिवार के भरण-पोषण से जुड़े आर्थिक संसाधन और घर की परिस्थितियों की आती है तब स्वाभिमान को भूलकर स्त्री अपने व्यवसाय पर पुनः लौट जाती है क्योंकि नारी को सहनशीलता की मूर्ति माना जाता है। "बस में भी उसके मन में संघर्ष चलता रहा..... इन लोगों ने स्त्री का चेहरा, चाल और चरित्र तीनों बदल दिये। स्त्री की छवि को विकृत कर दिया है। चीज़ों को बेचने के लिए स्त्री की "सैक्सुअलिटी" का इस्तेमाल किया जा रहा है। क्या स्त्री का काम सिर्फ पुरुषों को आकर्षित करना है। क्या महिलाएँ सिर्फ मौज-मस्ती का साधन है? बाज़ारवाद की योजनानुरूप बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने स्त्री की निजता को बेपर्दा कर दिया है।"3

वर्तमान में भारत फिर विश्व गुरु बनने की ओर अग्रसर है, लेकिन आज भी समाज में बेटियों की खरीद-फरोख्त होती है कभी मजदूरी कराने के लिए, तो कभी वेश्यावृत्ति के लिए आज सबसे अधिक बेटियाँ विवाह के लिए खरीदी बेची जाती है। वर्तमान में हम देखते हैं कि लड़कियों को उनके माँ-बाप द्वारा लड़कियों के तस्करों को बेचा जाता है क्योंकि उनके परिवार की आर्थिक स्थिति ठीक ना होने के कारण अपनी बेटियों को बेचने के लिए मुख्य प्रेरणा वित्तीय मुआवजा प्राप्त करना और दहेज रूपी प्रथा से बचना है। पद्मा शर्मा ने इन्हीं समस्याओं की ओर ध्यानाकर्षण करने के लिए 'रेत का घरौंदा' कहानी लिखी है। जिसमें बताया गया है कि रामरतन के दुकान के अतिरिक्त आय के अन्य साधन थे "वह लड़के वालों से रुपये लेकर लड़की वालों के साथ विवाह संबंध बनवाता था। इस प्रक्रिया में लड़के बड़ी उम्र के कुँवारे लड़के और लड़कियाँ कम उम्र की होती थी। लड़की के घरवालों को रुपये दिलवाता था और बीच में स्वयं भी रुपये खाता था।"4

पद्मा शर्मा की कहानी 'परिवर्तन' में हिन्दू-मुस्लिम एकता और सद्भाव भी देखने को मिलता है। जब हिन्दू मुस्लिम दंगा हो रहा था तब अमीना की हिन्दू पड़ोसन प्रतिभा उसके पुत्र को आश्रय प्रदान करती हैं। "अमीना ने जब उसे देखा तो उसकी करुण आँखें दया की भीख माँगने लगी जैसे वह कह रही हो –'दी अब आप ही इसे सँभालो। ' बदहवासी की स्थिति में प्रतिभा ने उसी को उठा लिया और सिर हिला कर कहाँ- "हाँ यह मेरे पास सुरक्षित रहेगा तुम निश्चिंत रहो।"5

आज के समय में समाज में पनप रही ऊँच-नीच, अमीरी-ग़रीबी की विचारधारा के कुत्सित मानसिकता भी आज चिंतन का विषय है। "अचानक सक्सेना जी के पिताजी उन लोगों के पास आ गए जब उन्हें पता चला कि उनके बेटा-बहू एक कामवाली का बच्चा गोद ले रहे हैं तो उन्होंने मना कर दिया।"6

श्रमिकों का शोषण प्राचीन समय से होता आ रहा है, उन्हें उम्मीद थी की शायद देश की स्वतंत्रता के बाद उन्हें शोषण से आज़ादी मिलेगी। लेकिन आज भी मजदूरों की स्थिति दयनीय बनी हुई है। ऐसी स्थिति में श्रमिकों के लिए सरकार के पास ऐसी कोई नीति होनी चाहिए, जो मजदूरों के हितों का ध्यान रखें। पद्मा शर्मा की कहानी 'छोटी मछली' में ठेकेदारों, पूँजीपतियों, महाजनों, दलालों आदि के द्वारा किए जाने वाले श्रमिकों के शोषण को बयाँ करती है। उनकी कहानी में बताया गया है कि आज के समय में अधिकांश कार्य ठेकेदारों द्वारा ही करवाया जाता है जिनमें अधिकतर पूँजीपति, ठेकेदार, दलाल आदि श्रमिकों का शोषण करते हैं तथा उनकी कहानी में बताया है कि बड़े-बड़े पूँजीपति के नुमाइंदे छोटे-छोटे नौका पार करने वाले वालों से हफ्ता वसूलते हैं और बेचारे मजदूर कठोर परिश्रम करने के बाद भी अपने हिस्से की कमाई में से भी हिस्सा देने को मजबूर हैं। मुनेंद्र ने कहा कि "फिर तो बड़ा मुश्किल होता होगा? तुम लोगों का तो खून पी रहे हैं ठेकेदार। "उसके माथे पर चिंता की रेखाएँ उभर आई। वह बोला, "साहब क्या करें, चल रही है रोज़ी रोटी किस तरह। मर जाएँगे साहब यही सब करते-करते एक दिन।"7

पद्मा शर्मा की कहानी 'इलेक्शन' में निर्वाचन आयोग की योजना पर प्रश्न चिह्न खड़ा कर चुनावी टीम की पीड़ा व्यक्त हुई है। कहानी का पात्र राघव मन ही मन सोचता है कि "पिछले चुनावों की तरह तीनों गाँव को मिलाकर चुनाव करा दिए जाते तो उन्हें क्या फर्क पड़ जाता, और सिर्फ एक तिहाई कर्मचारी ही यह कष्ट उठाता। इन नेताओं और बड़े-बड़े अधिकारियों को ऐसे माहौल में रात गुज़ारना पड़े तब उन्हें दाल-रोटी का भाव समझ में आए।"8

पद्मा शर्मा की कहानी 'लोकतंत्र के पहरुए' वर्तमान राजनीतिक परिदृश्य को बेनकाब करती नज़र आती हैं तथा ऐसी महिलाएँ चुनाव लड़ रही है। जो साक्षर भी नहीं है, वह योग्य भी नहीं है ऐसे समय में एक प्रश्न चिन्ह खड़ा होता है। कि क्या ऐसे ही लोगों के हाथों में देश की ज़िम्मेदारी सौंप दी जाए? उनकी कहानी में आज के समय में राजनीति में प्रयुक्त किये जाने वाले सभी दाँव-पेच बताए गए हैं कि राजनीति में कैसे चेहरा, चरित्र और चाल यह तीनों रूप पल-पल परिवर्तन दिखाते हुए हर तरह के चेहरे सामने लाए जाते हैं। आज के समय में महिला कितनी सुरक्षित है कि पार्टी का टिकट पाने के लिए पैसा भी देना पड़ता है और अपने चरित्र से भी हाथ धोना पड़ता है। "जगना का मन का काँपा, उसने गौर से देखा कि चार दिन की व्यस्तता के निशान पत्नी के चेहरे पर उभर रहे थे। वह उसे सावधानी से पकड़ कर आहिस्ता से अंदर

लाया, और खटिया पर बिठा दिया। उसे समझते देर नहीं लगी कि राजनीति ने उससे क्या छीन लिया है? वह गुस्से में थरथराने लगा, आँखें लाल हो गई, नथुने फूलने लगे। उसने सवालिया निगाहों से पत्नी को देखा। ज़मीन ताकती पत्नी ने ब्लाउज के भीतर खुड़सा पार्टी का टिकट निकाला और उसकी तरफ बढ़ाते हुए सहमी आवाज़ में कहा, "काम हो गया!" और वह बेहोशी के आगोश में लुढ़क गई।"9

आज के समय में जो बोतलबंद पानी के कारखाने लगा लिए जाते हैं वह किसी झील, नदी आदि के तट पर ही लगा लिए जाते हैं। तथा उसके परिणाम की कोई चिंता नहीं करता है। यदि समय रहते जल का संरक्षण नहीं किया गया तो बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ नदी का संपूर्ण रूप से शोषण कर लेंगी। जिससे भविष्य में अपरिवर्तनीय प्रतिकूल परिस्थितियों का सृजन होगा वह प्रकृति का ख्याल ना रखकर धन उपार्जन में लगी रहती हैं। इसी समस्या की ओर इंगित करने के लिए पद्मा शर्मा ने 'जलसमाधि' कहानी लिखी है। जिसमें बताया गया है कि आज के समय में लोग विचार करते नहीं हैं कि किस चीज़ की क्या आवश्यकता है और वर्तमान में जो कंक्रीट के जंगल, पक्की सड़कें और मल्टीयाँ बना दी गई हैं जिससे बरसात के समय जल को घर में अवशोषित नहीं कर पाती है और धीरे-धीरे जल का स्तर दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है लेकिन जब भविष्य में परिणाम सामने आएगा तब तक हाथ से बहुत कुछ निकल चुका होगा। परेश कहता है कि "पानी के अभाव में गाँव के गाँव खाली हो रहे हैं, लोग वहाँ से पलायन कर रहे हैं जब आपको और आपकी फसल को पानी नहीं मिलेगा तो जीवन जी पाएँगे क्या? रही बात महेंद्र की तो उसको इस डील पक्की करवाने के बीस लाख रुपए कंपनी दे रही है इतना ही नहीं आप सब को झाँसा देकर खेतों को औने-पौने दामों में खरीदा जाएगा पानी के इस स्रोत की अंतिम बूँद तक चूस लेंगे ये व्यवसायिक लोग।"10

पानी की विभीषिका पर महज लोग तभी क्यों वार्तालाप करते हैं जब गर्मियों का मौसम आ जाता है और पानी की विकट समस्या उत्पन्न हो जाती है। इसी समस्या की ओर ध्यानाकर्षण करने के लिए पद्मा शर्मा ने 'कुकुरमुत्ता' कहानी लिखी है। जिसमें बताया है कि वर्तमान में हमें ग्रीष्म ऋतु में सभी गली-मोहल्लों में लोग पानी के लिए कतार में खड़े नज़र आते हैं तथा पानी की विकट समस्या को लेकर किसी ने सच ही कहा है कि पहले पेट्रोल को लेकर होने वाले युद्ध अब भविष्य में पानी की किल्लत को लेकर होंगे उनके यह वक्तव्य आज सच होते नज़र आ रहे हैं कहानी का पात्र जगराम मन में विचार करता है कि यदि यही स्थिति बनी रही तो "युद्ध की विभीषिका अधिक दूर नहीं थी। वैसे भी अपने देश में कृष्णा और गोदावरी नदी के पानी को लेकर दक्षिण भारत के कई प्रदेश लड़ रहे थे, गँगा के पानी को लेकर भारत और बांग्लादेश में विवाद जारी था, जो कभी भी विस्फोट के साथ युद्ध में बदल सकता था।"11

पद्मा शर्मा की 'अंतिम विदाई' कहानी में सास वैधव्य झेल रही अपनी विधवा बहू रश्मि का कन्यादान कर अपने परिवार के हित के लिए सामाजिक नियमों को तोड़कर नया विधान प्रस्तुत करती है और उनकी कहानी में सामाजिक रूढ़ियों को मिटाने एवं पुनर्विवाह के संकेत दिए हैं। कहानी की पात्र चाची विनम्रतापूर्वक ऊँची आवाज़ में कहती है कि "फेरे तो पड़ेंगे। फिर ऐसे ही तो पति-पत्नी बनेंगे। वचन हरेंगे तभी तो शादी का महत्त्व समझेंगे। जब लड़के के फेरे हो सकते हैं तो लड़की के फेरे क्यों नहीं हो सकते?"उ न्होंने कुछ देर तक पल्ले की ओट से सबके चेहरे तके फिर बोली-"मैं ज़्यादा तो नहीं पढ़ी लेकिन शास्त्र रचे किसने हैं हम तुमने ही ना। फिर उसमें फेरबदल भी तो कर सकते हैं।" 12

पद्मा शर्मा की कहानी 'दाधी, अक्षत और दूर्वा' में संयुक्त परिवार को आधार बनाया है क्योंकि आज के समय में लोग एकल परिवार के अधिक पक्षधर हैं। भौतिकतावादी युग में धन लोलुपता के कारण के कारण व्यक्ति संबंधों के प्रति उदासीन होता जा रहा है। वर्तमान में बहू-बेटों के लिए सुख सुविधा सर्वोपरि है। परिवार विघटन की कगार पर है यद्यपि रामरतन जैसे घर के मुखिया परिवार को जोड़ने के लिए समर्पण और त्याग करते हैं और अपनी पत्नी सविता को समझाते हुए कहते हैं कि "रुपये बच्चों से बढ़कर थोड़े ही हैं। रुपया तो हाथ का मैल है। बच्चे सुखी रहे इसी में हमें संतुष्टि है। जहाँ तक राधिका का सवाल है, उसकी किस्मत होगी तो अपने आप सब इंतजाम हो जाएगा। कम रुपये रहेंगे तो छोटी नौकरी वाला लड़का देख लेंगे।"13

निष्कर्ष : निसंदेह पद्मा शर्मा जीवन के धरातल से जुड़ी हुई साहित्यकार है उन्होंने विभिन्न सरोकारों को एक गाँठ में जिल्द बंद कर अपनी सम्पूर्ण जटिलता में कृति के प्रति प्रतिबद्धता दिखाई है उनकी कहानियाँ में सामाजिक पहलुओं का इतना मनोहरी चित्रण किया गया है कि वह मानव मन की संवेदना को स्पष्ट करते हुए मस्तिष्क को चिंतन के लिए विवश कर देती हैं। उनकी कहानियों में समाज के जीवन मूल्य को सजाने, नैतिकता का विकास करने तथा संस्कृति का संरक्षण करने में भली-भाँति सक्षम साबित हो रही है तथा उन्होंने अपनी कहानियों में शहरी एवं ग्रामीण जीवन में व्याप्त धार्मिक रूढ़ियों एवं कर्मकांडो का चित्रण कर मनुष्य समुदाय को शैक्षिक रूप से जागृत करने की ओर प्रेरित किया है साथ ही निम्न एवं उच्च वर्ग के बीच व्याप्त आर्थिक विषमताओं को भी उजागर करते हुए वर्ग संघर्ष को भी बड़े मनोहर ढंग से प्रस्तुत किया है।

000

संदर्भ-

1 पद्मा शर्मा, इज़्ज़त के रहबर, बोधि प्रकाशन (2022) पृ. सं.- 82, 2 वही, पृ. सं.- 15, 3 वही, पृ. सं.- 44, 4 पद्मा शर्मा, रेत का घरौंदा, नवचेतन प्रकाशन (2004) पृ. सं. - 101, 5 वही, पृ. सं. - 98, 6 वही, पृ. सं.- 72, 7 पद्मा शर्मा, जलसमाधि एवं अन्य कहानियाँ, शिल्पायन प्रकाशन (2012) पृ. सं.- 102, 8 वही, पृ. सं.- 91, 9 वही, पृ. सं.- 29, 10 वही, पृ. सं.- 15, 11 वही, पृ. सं.-62, 12 वही पृ. सं.- 86-87, 13 वही, पृ. सं.- 50

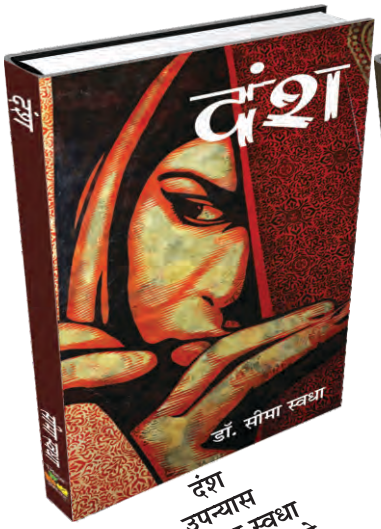

दंश
उपन्यास
डॉ. सीमा स्वधा
मूल्य : 225 रुपये

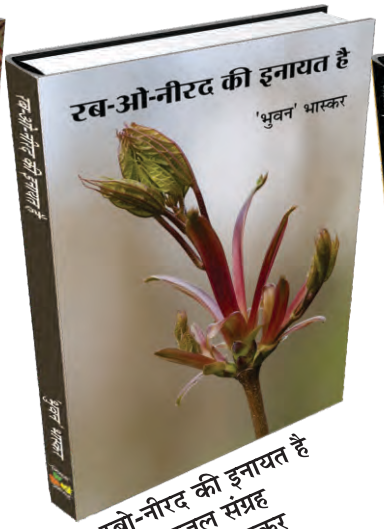

रबो-नीरद की इनायत है
ग़ज़ल संग्रह
भुवन भास्कर
मूल्य : 200 रुपये

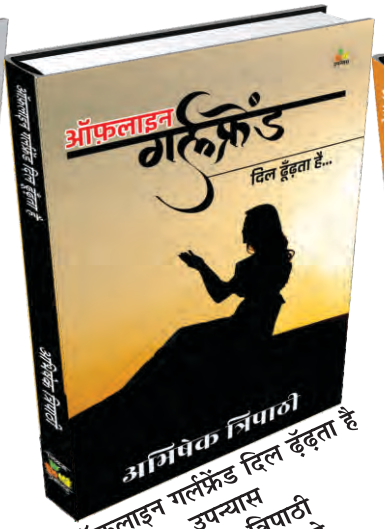

ऑफ़लाइन गर्लफ्रेंड दिल ढूँढ़ता है
उपन्यास
अभिषेक त्रिपाठी
मूल्य : 160 रुपये

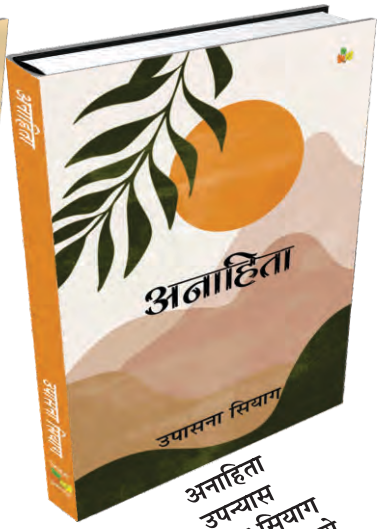

अनाहिता
उपन्यास
उपासना सियाग
मूल्य : 225 रुपये

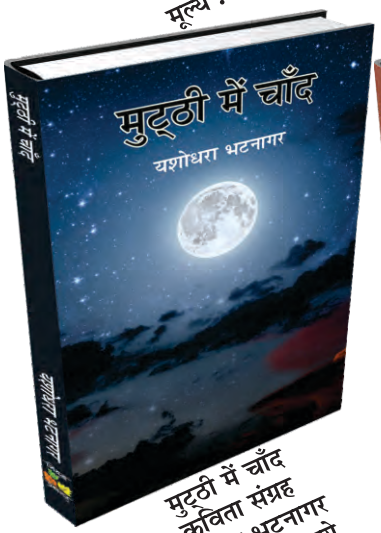

मुट्ठी में चाँद
कविता संग्रह
यशोधरा भटनागर
मूल्य : 200 रुपये

किताबों के आलोक में सुधा ओम
ढींगरा - शोध
रेनू यादव
मूल्य : 175 रुपये

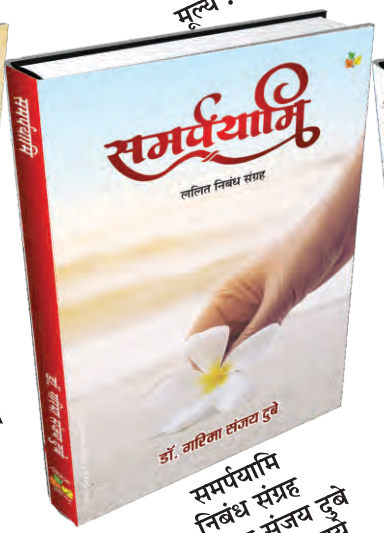

समर्पयामि
निबंध संग्रह
डॉ. गरिम संजय दुबे
मूल्य : 175 रुपये

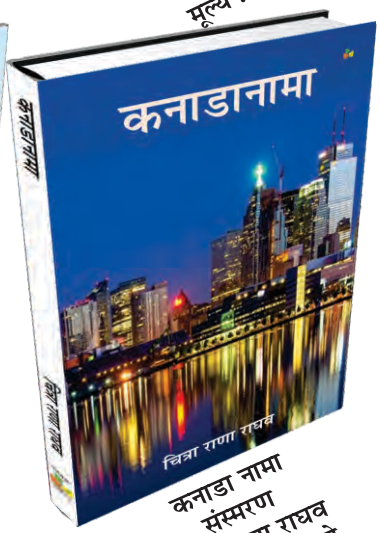

कनाडा नामा
संस्मरण
चित्रा राणा राघव
मूल्य : 225 रुपये

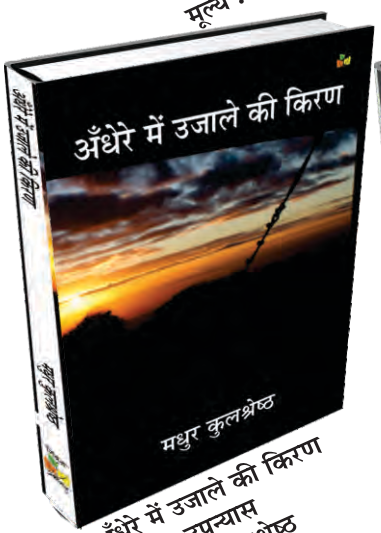

अँधेरे में उजाले की किरण
उपन्यास
मधुर कुलश्रेष्ठ
मूल्य : 300 रुपये

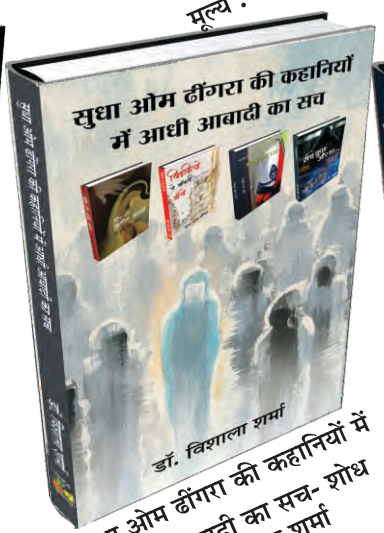

सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में
आधी आबादी का सच- शोध
डॉ. विशाला शर्मा
मूल्य : 150 रुपये

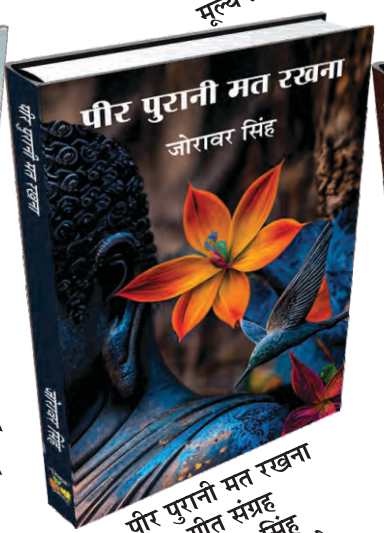

पीर पुरानी मत रखना
गीत संग्रह
जोरावर सिंह
मूल्य : 125 रुपये

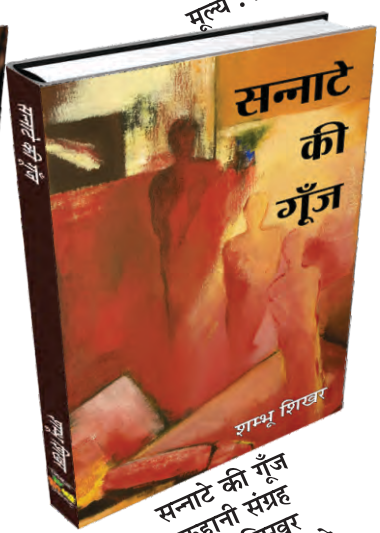

सन्नाटे की गूँज
कहानी संग्रह
शम्भू शिखर
मूल्य : 200 रुपये

शिवना प्रकाशन

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in

amazon
http://www.amazon.in

flipkart.com
http://www.flipkart.com

Mobile - +91-9806162184, +91-6265665580
+91-8819806162
https://twitter.com/shivnac
https://www.facebook.com/shivna.prakashan
https://www.youtube.com/c/ShivnaCreations
Email- shivna.prakashan@gmail.com

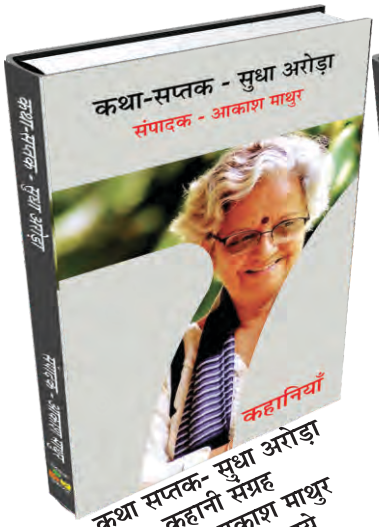

कथा सप्तक- सुधा अरोड़ा
कहानी संग्रह
संपादन- आकाश माथुर
मूल्य : 175 रुपये

कथा सप्तक- मनीषा कुलश्रेष्ठ
कहानी संग्रह
संपादन- आकाश माथुर
मूल्य : 175 रुपये

कथा सप्तक- उषाकिरण खान
कहानी संग्रह
संपादन- आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

कथा सप्तक- सुधा ओम ढींगरा
कहानी संग्रह
संपादन- आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

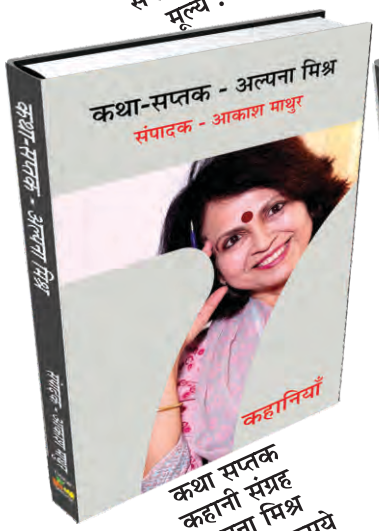

कथा सप्तक
कहानी संग्रह
अल्पना मिश्र
मूल्य : 200 रुपये

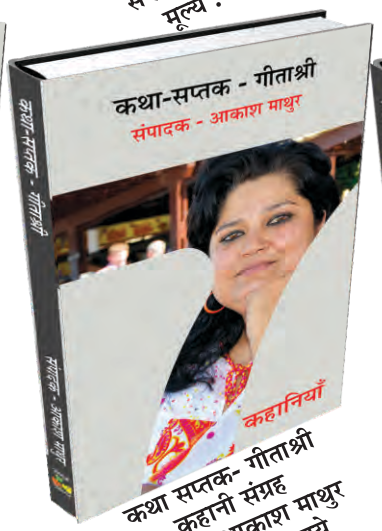

कथा सप्तक- गीताश्री
कहानी संग्रह
संपादन- आकाश माथुर
मूल्य : 175 रुपये

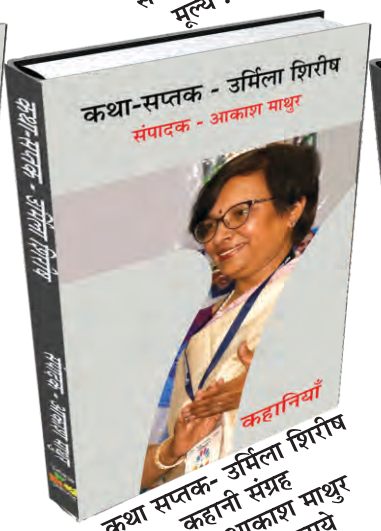

कथा सप्तक- उर्मिला शिरीष
कहानी संग्रह
संपादन- आकाश माथुर
मूल्य : 200 रुपये

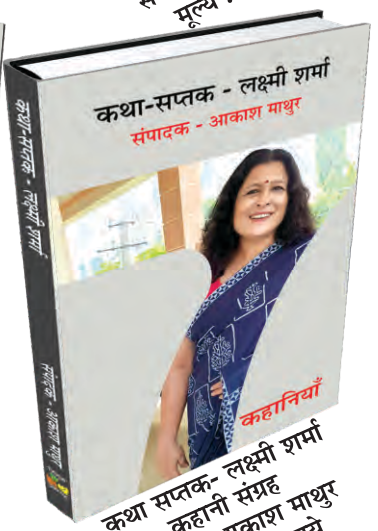

कथा सप्तक- लक्ष्मी शर्मा
कहानी संग्रह
संपादन- आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

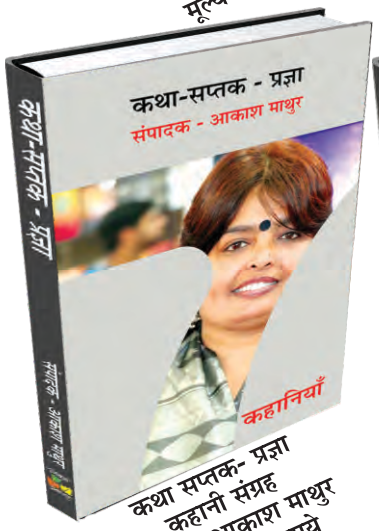

कथा सप्तक- प्रज्ञा
कहानी संग्रह
संपादन- आकाश माथुर
मूल्य : 175 रुपये

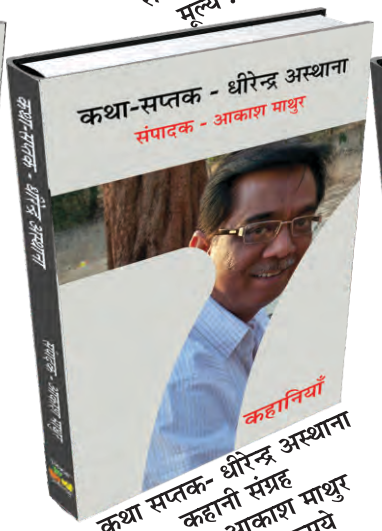

कथा सप्तक- धीरेन्द्र अस्थाना
कहानी संग्रह
संपादन- आकाश माथुर
मूल्य : 175 रुपये

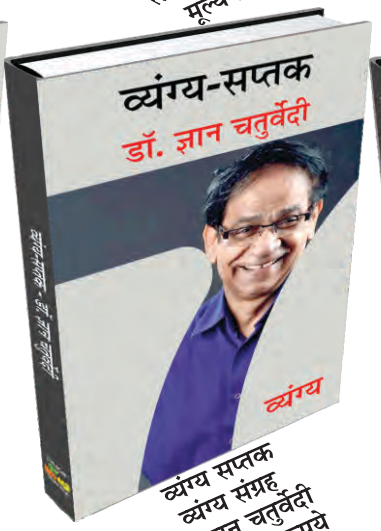

व्यंग्य सप्तक
व्यंग्य संग्रह
डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी
मूल्य : 150 रुपये

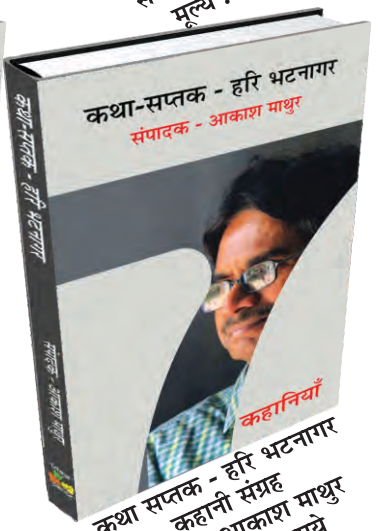

कथा सप्तक - हरि भटनागर
कहानी संग्रह
संपादन - आकाश माथुर
मूल्य : 150 रुपये

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।